महंत घासीदास स्मारक संग्रहालय की पुनर्गठित शिलालेख-वीथी का दृश्य

महंत घासीदास स्मारक संग्रहालय

पुरातत्त्व उपविभाग में संगृहीत वस्तुओं का सूचीपत्र

भाग ६

उत्कीर्ण-लेख

बालचन्द्र जैन
एम० ए० साहित्यशास्त्री
सहायक संग्रहाध्यक्ष

रायपुर
१९६१ ईस्वी : १८८३ शक

निवेदन

भारतीय इतिहास की आधार-सामग्री में उत्कीर्ण लेखों का महत्वपूर्ण स्थान है। क्योंकि इन लेखों में प्राचीन भारत की राजनीतिक हलचल और घटनाओं के विवरण के अतिरिक्त तत्कालीन समाज व्यवस्था, अर्थव्यवस्था, प्रशासन, धर्म और सभ्यता के बारे में बहुत सी सूचनाएं मिलती हैं। रायपुर के महंत घासीदास स्मारक संग्रहालय में छत्तीसगढ़ के विभिन्न स्थानों में प्राप्त हुए प्राचीन लेखों-दानपत्रों और प्रशस्तियों-का अच्छा संग्रह है। ये लेख काष्ठ, शिलापट्ट या ताम्रपत्रों पर उत्कीर्ण किये हुए हैं। इन लेखों में से एक लेख प्राकृत भाषा में है, शेष सभी संस्कृत में। लिपि की दृष्टि से भी उनमें भिन्नता है। कुछ लेख ब्राह्मी लिपि में लिखे हुए हैं, कुछ पेटिकाशीर्षक अक्षरों में, कुछ कुटिलाक्षरों में और शेष स्पष्टाक्षरों में। इन सब लेखों के संग्रह के रूप में यह ग्रन्थ प्रस्तुत किया जा रहा है जो संग्रहालय में संगृहीत पुरातत्व सामग्री के विवरणात्मक सूचीपत्रों की माला का छठा भाग है।

इस संग्रह में शरभपुरीय, पाण्डु, सोम, त्रिपुरी के कलचुरि, रत्नपुर के कलचुरि, रायपुर के कलचुरि और कांकेर के सोमवंशी नरेशों के उत्कीर्ण लेख तथा अन्य फुटकर लेख सम्मिलित हैं। इन लेखों का परिचयात्मक विवरण, मूलपाठ और हिन्दी अनुवाद दिया गया है। केवल चार लेखों को छोड़कर-जो अत्यन्त घिसे हुए हैं-बाकी सभी लेखों के चित्रफलक अन्त में दे दिये गये हैं। पुस्तक के आदि भाग छत्तीसगढ़ के प्राचीन राजनीतिक इतिहास, प्रशासन, धार्मिक स्थिति, समाज व्यवस्था, आर्थिक स्थिति और साहित्य का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। अन्त भाग में चार परिशिष्ट हैं जिनमें अन्य महत्वपूर्ण उत्कीर्ण लेखों का मूलपाठ और अनुवाद, क्षेत्रीय इतिहास से संबंधित उत्कीर्ण लेखों की संक्षिप्त सूची, सिक्कों के दफीनों की सूची और वंशावलियां दी गई हैं। इस प्रकार पुस्तक को सर्वोपयोगी बनाने का प्रयत्न किया गया है।

इस पुस्तक के प्रकाशन खर्च के लिये वैज्ञानिक अनुसंधान और सांस्कृतिक कार्य मंत्रालय, भारत शासन ने वित्तीय सहायता दी है। स्वनामधन्य डाक्टर वासुदेवशरण जी अग्रवाल, मध्यप्रदेश के पुरातत्व तथा संग्रहालय विभाग के उपसंचालक डाक्टर हरिहर त्रिवेदी और दुर्ग के शासकीय महाविद्यालय के प्राचार्य डाक्टर सन्तलाल कटारे के सामयिक सुझाव और प्रोत्साहन से इसका निर्माण हुआ है। स्थानीय दूधाधारी श्री वैष्णव संस्कृत महाविद्यालय के प्राध्यापक श्री रामनिहाल शर्मा से प्रशस्तियों के अनुवाद कार्य में तथा मेरे कार्यालय के श्री गोपालराव गनोदवाले और श्री प्रभाकरराव दोनगांवकर से प्रेस कापी तैयार करने में मुझे सहायता मिली है, तदर्थ मैं उनका कृतज्ञ हूं। चित्रफलकों के छायाचित्र तयार करने में रायपुर के विरदी स्टूडियो के श्री दिलीप विरदी ने काफी श्रम किया है, वे धन्यवादार्ह हैं।

ग्रन्थ की सुन्दर और सुरुचिपूर्ण छपाई का श्रेय सिंघई मौजीलाल एण्ड सन्स जबलपुर के श्री अमृतलाल परवार को है जिनके उत्साह और लगन के फलस्वरूप कम समय में भी इस ग्रन्थ का इतने अच्छे रूप में निर्माण संभव हुआ है।

अन्त में पूर्व सूरियों की कृतज्ञता का ज्ञापन करते हुए मैं वाचकों से प्रार्थना करता हूं कि वे इसमें हुई भूलों के लिए मुझे क्षमा करने की कृपा करेंगे।

फरवरी १९६०
फाल्गुन १८८२

बालचन्द्र जैन
सहायक संग्रहाध्यक्ष

विषय सूची

पृष्ठ

परिचय

मूलपाठ और अनुवाद

परिशिष्ट

फलकों का विवरण

संक्षेप

आ० स० इं० ए० रि०	आर्कलाजिकल सर्वे आफ इंडिया, एनुअल रिपोर्ट्स।
आ० स० रि०	आर्कलाजिकल सर्वे रिपोर्ट्स।
इं० आ०	इंडियन आर्कलाजी।
इं० ए०	इंडियन एण्टिक्वरी।
इं० हि० क्वा०	इंडियन हिस्टारिकल क्वारटरली।
एन० आ० भं० ओ० रि० इं०	एनल्स आफ भांडारकर ओरियण्टल रिसर्च इंस्टीच्यूट।
एपि० इं०	एपिग्राफिआ इण्डिका।
ए० रि०	एशियाटिक रिसर्चेज।
ए० रि० इं० एपि०	एनुअल रिपोर्ट आन इण्डियन एपिग्राफी
क० नृ०	कलचुरि नृपति आणि त्यांचा काल।
का० इं० इं०	कार्पस इंस्क्रिप्शनं इंडिकेरं।
क्वा० एं० इं०	क्वाइन्स आफ एंश्येण्ट इण्डिया।
ज० आं० हि० रि० सो०	जरनल आफ आंध्र हिस्टारिकल रिसर्च सोसायटी।
ज० इं० हि०	जरनल आफ इण्डियन हिस्ट्री।
ज० ए० सो० बं०	जरनल आफ एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल।
ज० न्यू० सो० इं०	जरनल आफ न्यूमिस्मेटिक सोसाइटी आफ इण्डिया।
ज० बा० ब्रां० रा० सो०	जरनल आफ बाम्बे ब्रांच आफ रायल सोसायटी।
ज० बि० रि० सो०	जरनल आफ बिहार रिसर्च सोसायटी।
ज० रा० ए० सो०	जरनल आफ रायल एशियाटिक सोसायटी।
न्यू० नो० मो०	न्यूमिस्मेटिक नोट्स एण्ड मोनोग्राफ्स।
न्यू० स०	न्यूमिस्मेटिक सप्लीमेण्ट।
प्रो० इं० हि० कां०	प्रोसीडिंग्ज आफ इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस।
प्रो० ए० सो० बं०	प्रोसीडिंग्ज आफ एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल।
प्रो० रि० आ० स० इं० वे० स०	प्रोग्रेस रिपोर्ट आफ आर्कलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया, वेस्टर्न सर्किल।
ब्रि० म्यू० कॅ० ए० इं०	कॅटलाग आफ क्वाइन्स इन दि ब्रिटिश म्यूजियम, एंश्येण्ट इण्डिया।
वा० नृ०	वाकाटक नृपति आणि त्यांचा काल।
हीरालाल :	इंस्क्रिप्शन्स इन सी० पी० एण्ड बरार, द्वितीय संस्करण।

मूल पाठ में प्रयुक्त संकेत

[ ] चौकोर कोष्ठक में दिये गये अक्षर अस्पष्ट हैं।

[*] चौकोर कोष्ठक में तारकांकित अक्षर मूल में नहीं हैं किन्तु सुझाये गये हैं।

( ) अशुद्ध अक्षरों का शुद्ध रूप दिखाया गया है।

शुद्धाशुद्धि पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
चार	१०	पेटिका का	पेटिका
पांच	१३	में है	में पड़ता है
पांच	३१	विष्ण	विष्णु
नौ	२८	धनुविद्या में ही प्रवीण	धनुविद्या में प्रवीण
पन्द्रह	२७	कृष्ण न	कृष्ण ने
उन्नीस	२८	द्व्यश्रय काव्य	द्व्याश्रय काव्य
इक्कीस	२०	परमामाहेश्वर	परममाहेश्वर
चौबीस	नीचे की पंक्ति	वज्रूज्जक	वज्जूक
छब्बीस	६	रूद्रशिव	रुद्रशिव
सत्ताईस	२६	विघ्नाबाएं	विघ्नबाधाएं
तीस	२६	तेलग	तेलुगु
१	१७	लक्ष्मीधर	लक्ष्मीप्रसाद
३	पदटिप्पणी	लक्ष्मीधर	लक्ष्मीप्रसाद
८	पदटिप्पणी ३	भश्रतस्वामि	भश्रुतस्वामि
२८	५	अलेक्जेण्डर	अलेकजेण्डर
३१	२४	कृष्ण	कृष्णे
३९	१६	जध्यत्येष	जेध्यत्येष
५२	पदटिप्पणी १	ताम्र	ताम्र
५३	२८	निर्वजित	विर्वजित
५७	पदटिप्पणी ५	भवद्धिः	भवद्भिः
६६	१५	कोंकल	कोकल्ल
६६	१५	कर्कोण	कोंकण
६७	२१	कोमीमंडल	कोमोमंडल
६७	२३	चतुष्टिका	चतुष्किका
७८	६	अत्युतप्रीति	अच्युतप्रीति
८१	२५	कुलचरि	कलचुरि
८२	२६	करुणार्जितर:।येनपुभाय:	करुणार्जितपुण्यभार:।येन

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८५	नीचे की पंक्ति	राजलक्ष्मी	गजलक्ष्मी
९३	२४	गोठदव	गोठ्दा
९७	१३	कंकड़	कंकण
१०६	१०	पभूव	बभूव
१११	१०	मंडम	मंडप
११६	७	रीतिक्रीडा	रतिक्रीडा
१५४	२६	वासुदेप	वासुदेव
१५७	२३	शिवदुगं	शिवदेव

परिचय

मध्यप्रदेश का दक्षिण-पूर्वीय भाग जिसे छत्तीसगढ़ कहा जाता है, प्राचीन काल में दक्षिण कोसल कहलाता था और उसमें न केवल वर्तमान रायपुर, दुर्ग, बस्तर, बिलासपुर, सिरगुजा और रायगढ़ जिलों का क्षेत्र अपितु उड़ीसा के सम्बलपुर जिले का भी बहुत सा भू-भाग सम्मिलित था। यह प्रदेश मैकल, रामगढ़ और सिहावा की पहाड़ियो से घिरा हुआ तथा महानदी (प्राचीन नाम चित्रोत्पला) और उसकी सहायक शिवनाथ, मांड, खारून, जोंक और हसदो नदियों के जल से सिञ्चित है। इन नदियों के तट पर विभिन्न सभ्यताओं का उदय और विकास हुआ जिनके अवशेष बिखरे होने पर भी छत्तीसगढ़ के प्राचीन गौरव की झांकी प्रस्तुत करने में समर्थ है।

रायगढ़ जिले में कबरा पहाड़ और सिंघनपुर की गुफाओं में मानव सभ्यता के उस प्रारम्भिक युग के चिह्न सुरक्षित हैं जब प्रागैतिहासिक मानव पर्वत-गह्वरों में निवास करता था और पत्थर के औजारों का उपयोग करता था। इस आदिम युग में भाषा का धनी होते हुए भी मानव लिपि का आविष्कार न कर पाया था। किन्तु इसके विपरीत उसे कला से प्रेम था जिसके ज्वलन्त प्रमाण उपर्युक्त गुहाश्रयों में चित्रित किये गये तरह तरह के चित्र हैं। रायगढ़ से लगभग १६ किलोमीटर दूर स्थित कबरा पहाड़ की तमाम चित्रकारी लाल और काले रंग में की हुई है जिसमें आखेट सम्बन्धी चित्रों की प्रधानता है। इसके अलावा वहां छिपकली, घड़ियाल, सांभर और अन्य पशुओं के साथ पंक्तिबद्ध मनुष्यों के भी चित्र पाये गये हैं। सिंघनपुर के गुफाचित्र रायगढ़ से १६ किलोमीटर की दूरी पर कबरा पहाड़ से ठीक विपरीत दिशा में हैं। इन चित्रों में जो मानव आकृतियां हैं, वे कहीं तो सीधी और डंडेनुमा हैं और कहीं सीढ़ीनुमा। या यों कह सकते कि आदिम मनुष्य आड़ी सीधी लकीरें खींचकर ही अपनी और अपने सजातीयों की आकृतियां बना लिया करता था।

पाषाणयुग के बाद ताम्रयुग (कहीं कांस्ययुग) आया और उसके बाद लौह-युग। ताम्र-युग में पत्थर के स्थान पर तांबे के औजार बनाये जाने लगे थे। ये औजार हमारे देश में इतनी अधिक संख्या में प्राप्त होते हैं कि मानना पड़ता है कि एक युग ऐसा भी था जब सभी तरह के औजार तांबे के बनते थे क्योंकि उस समय तक लोहे की खोज नहीं हो सकी थी। जबलपुर के निकट के एक स्थान से ईस्वी सन् १८६६ में एक ऐसी कुल्हाड़ी प्राप्त हुई थी जो एक भाग टिन और सात भाग तांबे के मेल से बनाई हुई थी। उसी प्रकार बालाघाट जिले के गुंगेरिया नामक गांव के निकट तांबे के बने औजारों का एक बड़ा संग्रह ईस्वी सन् १८७० में अनायास ही प्राप्त हो गया था। घटना इस प्रकार बताई जाती है। गांव के दो लड़के ढोर

चराने गये हुये थे। उन्होंने एक स्थान में देखा कि भूमि में लोहे जैसी कोई वस्तु गड़ी हुई है। लड़कों ने उसे ऊपर खींचा तो वह एक औजार निकला। जब और मिट्टी हटाई तो अन्य कई औजार निकल आये। इसके बाद वहां ढंग से खुदाई करने पर तांबे के ४२४ औजार तथा चांदी के १०२ हलके आभूषण प्राप्त हुये। तांबे के औजारों में कुछ चपटे सब्बल के आकार के हैं, कुछ विभिन्न प्रकार की बेंट या बिना बेंट वाली कुल्हाड़ियां हैं और एक प्रकार की कुल्हाड़ी ऐसी है कि उसका आकार फरसी जैसा है।

वैदिक युग में छत्तीसगढ़ की क्या स्थिति थी इस संबंध में कोई सूचना नहीं मिलती। ऋग्वेद में न तो कहीं नर्मदा का नाम मिलता है और न विंध्याचल पर्वत का। इससे अनुमान किया जाता है कि ऋग्वेद कालीन आर्य यहां तक नहीं पहुंच सके थे। किन्तु उत्तर वैदिक युग में उन्हें इस क्षेत्र की जानकारी अवश्य हो चली थी क्योंकि यहां के घने जंगलों में निवास करने वाली अनेक अनार्य जातियों का उल्लेख तत्कालीन ब्राह्मण ग्रन्थों में मिलता है। रामायणी कथा से भी विदित होता है कि अयोध्या (उत्तर-कोसल) के राजा दशरथ की बड़ी रानी (दक्षिण) कोसल की थी जिससे उन्हें कौशल्या कहा जाता था। अनुश्रुति के अनुसार ऋषि वाल्मीकि का आश्रम रायपुर जिले में तुरतुरिया नामक स्थान में था जहां श्रीराम के दोनों बेटों –लव और कुश– का जन्म हुआ था। ऐसी भी किंवदन्ती है कि अर्जुन के बेटे बभ्रुवाहन की राजधानी भी इसी प्रदेश में थी।

मौर्य--सातवाहन काल

पुराणों में दक्षिण कोसल के कुछेक राजाओं का नामोल्लेख मिलता है किन्तु केवल उस विवरण के आधार पर यहां के राजनैतिक इतिहास की कड़ियां जोड़ सकना संभव नहीं है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि छत्तीसगढ़ का प्रांत नन्दों और मौर्यों के विस्तृत साम्राज्य के अन्तर्गत था। सुख्यात चीनी यात्री ह्यूनत्सांग ने अपने यात्रा विवरण में लिखा है कि मौर्य राजा अशोक ने दक्षिण कौसल की राजधानी में स्तूप तथा अन्य इमारतों का निर्माण कराया था। चीनी यात्री के उपर्युक्त कथन में कोई अतिशयोक्ति नहीं दीखती क्योंकि अशोक का एक लघु धर्मलेख जबलपुर के निकट रूपनाथ में आज भी विद्यमान है।[1] और अशोक के समय के लगभग के ही दो भित्तिलेख सिरगुजा जिले में लक्ष्मणपुर के निकट रामगढ़ की सीताबेंगा और जोगीमारा नामक गुफाओं में पाये गये हैं।[2] इन गुफा-लेखों का विषय न तो धार्मिक है और न राजनैतिक किंतु वे किसी सुतनुका नामक देवदासी और उसके प्रेमी कलाकार देवदत्त से संबंधित हैं। आश्चर्य की बात है कि भारत की सबसे प्राचीन नाट्यशाला भी इसी स्थान पर बनी हुई है। इन पुरातत्वीय प्रमाणों के अलावा नन्द-मौर्य काल के चांदी के सिक्के रायपुर जिले में तारापुर में[3] तथा बिलासपुर जिले में अकलतरा[4] के आसपास बहुत पाये जाते हैं। इन सिक्कों में से ठठारी में प्राप्त सिक्के महत्वपूर्ण रूप्यमापक सिक्के हैं।[5]

मौर्य साम्राज्य के छिन्न होते ही भारतवर्ष के विभिन्न भागों में चार मुख्य राजवंशों

का प्रताप बढ़ा। मगध का आधिपत्य मौर्यों के उत्तराधिकारी शुंगों को प्राप्त हो गया, कलिंग में चेदिवंश का उदय हुआ, दक्षिणापथ में सातवाहन समृद्ध हुये और पश्चिमोत्तर प्रदेशों में यवनों के पैर जमने लगे। पुष्यमित्र शुंग के राज्यकाल में पाटलिपुत्र तक यवनों के हमले हुये किन्तु वे वहां से भगा दिये गये। इन यवनों के मिलिन्द या मेनाण्डर नामक राजा के तांबे के सिक्के बालाघाट जिले में प्राप्त हुये हैं।[3] ऐसा माना जाता है कि प्राचीन कालीन तांबे के सिक्के अक्सर उन्हीं स्थानों में पाये जाते हैं जहां कभी उनका वास्तव में चलन रहा हो। किन्तु मिलिन्द के उपर्युक्त तांबे के सिक्कों ने इतिहास के विद्यार्थियों के सम्मुख एक समस्या उपस्थित कर दी है क्योंकि ऐसा कोई अन्य प्रमाण आज तक उपलब्ध नहीं हुआ है जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि इस प्रदेश में यवनों के राज्य का विस्तार था। सातवाहन वंश के नृपति अपने को दक्षिणापथपति कहते थे। उनकी राजधानी प्रतिष्ठान (वर्तमान पैठन) में थी। सिमुक सातवाहनों का प्रथम राजा था। उसके वंश में अनेक प्रतापी नरेश हुये जिन्होंने अपने साम्राज्य का विस्तार किया। प्रथम शातकर्णि के राज्यकाल में सातवाहनों का विस्तार डाहल प्रदेश तक हो गया था और त्रिपुरी उनके अधिकार में था। उस शातकर्णि और गौतमी-पुत्र शातकर्णि के बीच में होने वाले राजाओं में से एक आपीलक था। उसका तांबे का सिक्का रायगढ़ के पास प्राप्त हुआ है।[4] दक्षिण कोसल में सातवाहनों के राज्य का पता ह्वनत्सांग के यात्रा विवरण से भी चलता है। उसने लिखा है कि प्रसिद्ध बौद्ध दार्शनिक नागार्जुन दक्षिण कोसल की राजधानी के निकट के एक विहार में निवास करता था और उसके समय में कोसल का राजा कोई सातवाहन वंशीय था। चीनी यात्री के इस कथन की पुष्टि बिलासपुर जिले में सक्ती के निकट गुंजी (ऋषभतीर्थ) में प्राप्त शिलालेख से भी होती है जिसमें सातवाहन राजा कुमारवरदत्त का उल्लेख है।[5] सातवाहन काल में निर्मित पाषाण प्रतिमाएं बिलासपुर जिले में प्राप्त हुई हैं। इसी समय का एक काष्ठस्तंभ लेख रायपुर संग्रहालय के संग्रह में है जो बिलास-पुर जिले के किरारी नामक स्थान में प्राप्त हुआ था (आगे लेख क्रमांक १)। यह लेख अपने ढंग का एक ही लेख है और इसमें तत्कालीन शासकीय कर्मचारियों के पदनामों का उल्लेख है। सातवाहन काल में भारत का विदेशों से और विशेषकर रोम से व्यापार बढ़ चला था इसलिये विदेशी सिक्के भी इस देश में आने लगे थे। रोम के सोने के सिक्के बिलासपुर जिले में अक्सर प्राप्त हो जाते हैं[6] जो बताते हैं कि बिलासपुर जिले का क्षेत्र उन दिनों पर्याप्त समृद्ध था। उसी प्रकार कुषाण राजाओं के तांबे के सिक्के भी बिलासपुर जिले में मिलते रहते हैं।[7] उनके आधार पर यह अनुमान करना पड़ता है कि कुषाणों के साम्राज्य का छत्तीसगढ़ तक विस्तार रहा है भले ही वह अल्पकालीन हो।

वाकाटक-गुप्त काल

ईस्वी सन् की तीसरी शताब्दी में जब सातवाहनों की शक्ति क्षीण हो गई तो वाका-टकों ने अपना राज्य स्थापित किया। इनका पहला राजा विन्ध्यशक्ति हुआ जो कुछ विद्वानों के

मतानुसार बुंदेलखंड से आया था। वहां से अपने राज्य का विस्तार करते हुए वाकाटक लोग नागपुर के निकट के प्रदेश में पहुंचे और वहां उन्होंने अपनी राजधानी स्थापित की। विन्ध्य-शक्ति के बाद उसका बेटा प्रथम प्रवरसेन राजा हुआ। उसके समय में वाकाटकों का साम्राज्य बुन्देलखंड से लेकर आंध्र प्रदेश तक विस्तृत हो गया। प्रथम प्रवरसेन के बाद वाकाटक राज्य के अनेक टुकडे हो गये जिनमें से केवल दो ही के बारे में अभी तक ज्ञात हो सका है। डाक्टर वासुदेव विष्णु मिराशी का अनुमान है कि प्रथम प्रवरसेन का तीसरा बेटा दक्षिण कोसल पर राज्य करता था[11] किन्तु इस तर्क में कोई तथ्य नहीं दिखता; बल्कि बस्तर के नल वंश के विदर्भ पर भी राज्य करने के प्रमाण अधिक स्वस्थ हैं। डाक्टर मिराशी का दूसरा तर्क है कि वाकाटकों ने पेटिका शीर्षक अक्षरों वाली लिपि का दक्षिण कोसल में चलन किया था, वह भी असंगत दिखाई पड़ता है क्योंकि पेटिका का शीर्षक अक्षरों वाली ब्राह्मी लिपि न केवल विदर्भ और दक्षिण कोसल में ही प्रचलित थी अपितु मालवा में स्थित उदयगिरि के गुफालेखों में भी पाई गई हैं। उसी प्रकार मिराशी जी का यह विचार ठीक नहीं जान पड़ता कि दक्षिण कोसल का गुप्त कालीन राजा महेन्द्र अपने समकालीन व्याघ्रराज के साथ वाकाटकों की अधीनता मानता था और उन्हें करभार देता था।[12] समुद्रगुप्त की इलाहाबाद प्रशस्ति से यह स्पष्ट है कि उस गुप्त वंशी सम्राट् ने इन दोनों राजाओं को स्वतंत्र राजाओं के रूप में ही पराजित किया था न कि किसी अन्य के अधीनस्थ माण्डलिक के रूप में। लेकिन यह सत्य है कि पश्चात्कालीन वाकाटक राजाओं के राज्यकाल में कोसल प्रदेश पर आक्रमण हुए जिनका प्रभाव स्थायी कभी नहीं रहा।

मगध के गुप्तवंश का प्रभाव छत्तीसगढ़ पर उस समय से पड़ा जब उपर्युक्त समुद्रगुप्त ने आर्यावर्त के राजाओं को जीतकर दक्षिणापथ की विजय-यात्रा की। समुद्रगुप्त की दक्षिणापथ यात्रा के समय छत्तीसगढ़ में महेन्द्र नामक एक राजा राज्य करता था जिसके वंश आदि के बारे में कोई सूचना उपलब्ध नहीं है। समुद्रगुप्त से हुए युद्ध में महेन्द्र परास्त हुआ[13] किन्तु विजेता ने उसका राज्य उसे वापिस कर दिया था। उसी प्रकार बस्तर और सिहावा के जंगली प्रदेश (जिसे महाकान्तार कहते थे) के अधिपति व्याघ्रराज ने भी समुद्रगुप्त के सम्मुख अपनी पराजय स्वीकार कर ली थी[14]। तब से गुप्तों का प्रभाव दक्षिण कोसल पर क्रमशः बढ़ता ही गया और यहां के शासकीय कार्यों में गुप्त संवत् का प्रयोग होने लगा।

राजर्षितुल्य कुल

रायपुर जिले के आरंग नामक स्थान में प्राप्त एक ताम्रपत्रलेख से विदित होता है कि ईस्वी सन् की पांचवी शताब्दी के लगभग दक्षिण कोसल में राजर्षि-तुल्यकुल नामक कोई राजवंश राज्य करता था।[15] यह ताम्रपत्रलेख गुप्त संवत् १८२ या २८२ में महाराज (द्वितीय) भीमसेन द्वारा सुवर्ण नदी (संभवतः वर्तमान सोन) से दिया गया था और इसमें (द्वितीय) भीमसेन द्वारा हरिस्वामी और बपस्वामी को दोण्डा में स्थित भटपल्लिका नामक ग्राम दान में

दिये जाने का उल्लेख है। ताम्रपत्र लेख से संलग्न राजमुद्रा पर सिंह की आकृति बनी है। यद्यपि लेख में (द्वितीय) भीमसेन और उससे पहले की पांच पीढ़ियों के राजाओं के नामों का उल्लेख है किन्तु इन सभी राजाओं के बारे में अन्यत्र कोई सूचना नहीं मिलती जिससे इस वंश के सम्बन्ध में कोई विशेष जानकारी आजतक नहीं हो सकी है। इस ताम्रपत्र लेख के अनुसार राजर्षितुल्य कुल में सबसे पहले शूरा नामक राजा हुआ, फिर उसका बेटा दयित, फिर विभीषण, तत्पश्चात् (प्रथम) भीमसेन, उसके बाद (द्वितीय) दयितवर्मा और अंत में (द्वितीय) भीमसेन जो गुप्त संवत् १८२ या २८२ में राज्य करता था। इस ताम्रपत्रलेख को सबसे पहले स्वर्गीय डा० हीरालाल ने एपिग्राफिया इण्डिका, जिल्द नौ (पृष्ठ ३४२ इत्यादि) में प्रकाशित किया था और उन्होंने इसमें दी गई तिथि को गुप्त संवत् २८२ बांचा था। किन्तु बाद में महामहोपाध्याय मिराशी ने डाक्टर हीरालाल के पाठ पर शंका कर उसे गुप्त संवत् १८२ बांचा। डाक्टर मिराशीके इस संशोधनको अनेक विद्वानों ने उपयुक्त नहीं माना है। यदि गुप्त संवत् पड़ता १८२ वाला पाठ सही है तो राजर्षितुल्य कुल के उदय का समय ईस्वी सन् की चौथी शताब्दी में है और यदि २८२ संवत् को ठीक माना जाता है तो पांचवीं शती में। इस प्रकार ईस्वी सन् की चौथी या पांचवीं शती में शूरा का वंश दक्षिण कोसल में उदित हो चुका था जो पांचवी या छठी शती तक राज्य करता रहा।

नल वंश

नल वंश के राजाओं और उनके राज्य विस्तार के सम्बन्ध में पूरी जानकारी अभी तक नहीं हो सकी है। उसका एक कारण यह है कि इस वंश के उत्कीर्ण लेख कम मिले हैं और दूसरे राजवंशों के लेखों में इनके सम्बन्ध में जो भी सूचनाएं मिलती हैं वे अत्यन्त संक्षिप्त और भ्रामक हैं। कुल मिलाकर चार उत्कीर्ण लेखों और थोड़े से सोने के सिक्कों के आधार पर ही हम नल वंश की क्रमानुगतिता का किंचित अनुमान कर पाते हैं। उपर्युक्त चार उत्कीर्ण लेखों में से दो लेख उड़ीसा राज्य की सीमा में मिले हैं [१४] और एक-एक क्रमशः अमरावती [१५] तथा रायपुर जिले में। [१६] बस्तर जिले में नलों के सोने के सिक्के प्राप्त हुए हैं। [१७] उत्कीर्ण लेखों से नलों के सर्व प्रथम राजा का नाम भवदत्तवर्मा ज्ञात होता है। उसके राज्य में नागपुर और बरार तक का क्षेत्र सम्मिलित था जो उसने संभवतः वहां के वाकाटक राजाओं को परास्त कर प्राप्त किया था। जब वाकाटकों ने पुनः शक्ति प्राप्त कर ली तो नागविदर्भ प्रदेश नलों के हाथसे निकल गया किन्तु बस्तर समेत कोसल के अपने मूल क्षेत्र पर वे बराबर राज्य करते रहे। नल वंश के दूसरे राजा का नाम अर्थपति भट्टारक मिलता है जो भवदत्त का बेटा जान पड़ता है। किन्तु यह संबंध कहीं भी स्पष्ट नहीं है। तीसरा राजा स्कन्दवर्मा था जो या तो भवदत्त का बेटा था अथवा नाती किन्तु वह महान शक्तिशाली था। उसने अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके अपना गया हुआ राज्य पुनः प्राप्त कर लिया था और पोड़ागढ़ (उड़ीसा) में भगवान विष्णु का पादमूल (मंदिर) निर्मित कराया था। नल वंश का चौथा लेख रायपुर जिले में राजिम में प्राप्त हुआ है किन्तु

वह बहुत पीछे का है। इस शिलालेख में (जो राजीवलोचन मंदिर की दीवाल में जड़ा हुआ है) पृथ्वीराज के बेटे विरूपाक्ष के उत्तराधिकारी विलासतुंग द्वारा अपने स्वर्गीय पुत्र के पुण्य की वृद्धि के लिए विष्णु के मंदिर का निर्माण कराने का उल्लेख है। यद्यपि विलासतुंग और उसके इन पूर्वजों का पहले के नल राजाओं से सम्बन्धित होने का कोई सीधा प्रमाण नहीं मिलता फिर भी इस शिलालेख में वंश का प्रारम्भ नल राजा से होने के उल्लेख के आधार पर विलासतुंग और उसके पूर्वजों को भी नल वंश का माना जाता है। इस प्रकार यह ज्ञात होता है कि नल वंश के राजा छत्तीसगढ़ और बस्तर के भूभाग पर काफी समय तक राज्य करते रहे। कब तक राज्य करते रहे, इस सम्बन्ध में निश्चय पूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। संभव है कि आगे वर्णनीय पाण्डुवंश ने उन्हें हराकर उनका राज्य अपने आधीन कर लिया हो।

शरभपुरीय वंश

ईस्वी सन् की पांचवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में अथवा छठी शताब्दी के प्रथम चरण में दक्षिण कोसल में एक तीसरे प्रमुख राजवंश का उदय हुआ जिसकी राजधानी शरभपुर में थी। शरभपुर कहां था और कौन सा स्थान उसका वर्तमान खण्डहर बना हुआ है, यह अभी तक निश्चित नहीं हो पाया है। इस संबंध में विभिन्न विद्वानों के जो अनुमान हैं वे आगे पृष्ठ ११-१२ पर गिनाये गये हैं। शरभपुरीय वंश के सभी नरेश भागवत धर्म को मानते थे। उनके दानपत्रों की राजमुद्रा पर गजलक्ष्मी की खड़ी प्रतिमा मिलती है। उनकी उपराजधानी श्रीपुर (वर्तमान सिरपुर, रायपुर जिला) में स्थापित थी। यद्यपि हाल ही में प्राप्त हुये एक ताम्रपत्र-लेख मे उनके वंश का नाम 'अमरार्यकुल' होने का संकेत है[19] किन्तु उन्हें अधिकतर शरभपुरीय ही कहा जाता है।

शरभपुरीय राजवंश का संस्थापक शरभ नामक राजा था जिसके नाम पर संभवतः राजधानी का नाम शरभपुर पड़ा। गुप्त संवत् १९१ (ईस्वी ५१०) के एक लेख में शरभराज को गोपराज का नाना कहा गया है जो गुप्त वंशी राजा भानुगुप्त का सामन्त था और एरन के युद्ध में मारा गया था।[20] किन्तु यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि शरभपुरीय राजा शरभ और गोपराज के नाना शरभराज दोनों एक ही व्यक्ति थे अथवा भिन्न भिन्न। शरभ का बेटा नरेन्द्र था। उसके दो ताम्रपत्रलेख प्राप्त हुये हैं एक पिपरदुला में और दूसरा कुरुद में (लेख क्रमांक ३)। पिपरदुला में प्राप्त ताम्रपत्र शरभपुर से नरेन्द्र के राज्य के तीसरे वर्ष में दिया गया था[21]। उसमें राहुदेव नामक भोगपति द्वारा वाजसनेय शाखा के आत्रेय गोत्रीय स्वामिण्ण को नन्दपुर भोग में स्थित शर्करापद्र नामक ग्राम दान में देने और महाराज नरेन्द्र द्वारा उसे अनुमोदित करने की सूचना मिलती है। कुरुद में प्राप्त ताम्रपत्रलेख नरेन्द्र द्वारा अपने राज्य के चौबीसवें वर्ष में तिलकेश्वर शिविर से दिया था। उसमें चुल्लाडसीमा भोग में स्थित केशवक नामक ग्राम के दान का उल्लेख है। वह ग्राम पहले परमभट्टारक द्वारा धारिणी गोत्र के भाश्रुत-स्वामी नामक ब्राह्मण को तालपत्र पर लिखकर दान में दिया गया था किन्तु वह आग में जल

गया। तब महाराज नरेन्द्र ने भाव्युतस्वामी के बेटे शंखस्वामी के नाम पर ताम्रपत्र पर लिखकर उसे अनुमोदित किया था। इस प्रकार दोनों ही ताम्रपत्रलेखों में राजा नरेन्द्र द्वारा अन्य व्यक्तियों द्वारा दिये गये दान के अनुमोदन की ही सूचना मिलती है; नरेन्द्र के स्वयं के दान से संबंधित कोई उत्कीर्ण लेख अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है। परोक्ष रूप से इस नरेन्द्र का उल्लेख मेकल के पाण्डुवंशी राजा भरतबल के ताम्रपत्रलेख में भी हुआ जान पड़ता है जिसमें बताया गया है कि भरतबल की रानी लोकप्रकाशा कोसल की राजकुमारी थी[11]। अधिक संभावना यही दिखती है कि लोकप्रकाशा नरेन्द्र की बहिन थी क्योंकि वह उस समय कोसल प्रदेश पर राज्य करता था। नरेन्द्र का राज्यकाल छठी शती ईस्वी के प्रथम चरण के लगभग कूता जाता है।

नरेन्द्र के उत्तराधिकारी के बारे में कोई सूचना नहीं मिलती लेकिन उसके बाद प्रसन्नमात्र नामक एक राजा हुआ जो कुल का प्रतापी नरेश जान पड़ता है क्योंकि वंश के प्रायः सभी पश्चात्वर्ती लेखों में उससे ही वंशवृक्ष प्रारंभ किया गया है। प्रसन्नमात्र ने अपने नाम के सोने के सिक्के चलाये थे[12] और निडिला नदी के तट पर प्रसन्नपुर नामक नगर बसाया था।[13] उसके सिक्के न केवल छत्तीसगढ़ में अपितु पूर्व में कटक जिले में और पश्चिम में चांदा जिले में भी मिले हैं[14] जिससे ज्ञात होता है कि प्रसन्नमात्र के राज्य का विस्तार चांदा से कटक तक था।

अभी तक यह माना जाता रहा है कि प्रसन्नमात्र के दो बेटे थे, जयराज और मानमात्र। किन्तु नई खोज के अनुसार जयराज और मानमात्र ये एक ही व्यक्ति के दो नाम जान पड़ते हैं। क्योंकि (१) मानमात्र का अलग से कोई लेख नहीं मिलता, (२) जयराज के ताम्रपत्रलेखों से संलग्न राजमुद्राओं में उसे प्रसन्नमात्र का बेटा कहा गया है, (३) उसी प्रकार सुदेवराज और प्रवरराज की मुद्राओं पर उन्हें मानमात्र का बेटा और प्रसन्नमात्र का नाती बताया है तथा, (४) व्याघ्रराज के मल्लार में प्राप्त हुये ताम्रपत्रलेख में प्रवर को जय का बेटा कहा है। इस प्रकार मानमात्र और जय (जयराज और महाजयराज) अभिन्न व्यक्ति जान पड़ते हैं। इसके अतिरिक्त कौआताल में मिले एक अन्य ताम्रपत्रलेख में मानमात्र का तीसरा नाम दुर्गराज मिलता है।[15] इस दुर्गराज-मानमात्र – जयराज के कुल तीन ताम्रपत्रलेख अब तक प्राप्त हो चुके हैं। उनमें से एक आरंग में (आगे लेख क्रमांक ४) और दो मल्लार में प्राप्त हुये हैं।[16] ये तीनों ही दानपत्र शरभपुर से दिये गये थे। उनमें से आरंग का दानपत्र और उसी प्रकार मल्लार का एक दानपत्र राज्य के पांचवें वर्ष में तथा मल्लार का दूसरा दानपत्र राज्य के नौवें वर्ष में उत्कीर्ण किया गया था।

जयराज के तीन बेटे हुये सुदेवराज, प्रवरराज और व्याघ्रराज। उनमें से ज्येष्ठ पुत्र सुदेवराज शरभपुर के राजसिंहासन का उत्तराधिकारी हुआ। उसके छह् ताम्रपत्रलेख अब तक प्राप्त हो चुके हैं जिनमें से दो रायपुर संग्रहालय के संग्रह में हैं। रायपुर में प्राप्त हुये सुदेवराज के लेख में उसके राज्य के दसवें वर्ष का उल्लेख है।[17] इससे उसके कम से कम दस वर्ष तक राज्य करने

की सूचना मिलती है। सुदेवराज ने शरभपुर और श्रीपुर दोनों ही स्थानों से दानपत्र दिये थे जिससे जान पड़ता है कि शरभपुर और श्रीपुर इन दोनों ही स्थानोंमें उसकी राजधानियां थीं। श्रीपुर राज्य की स्थापना उसके मझले भाई प्रवरराज ने की थी जो अधिक महत्त्वाकांक्षी होने के कारण शरभपुर छोड़कर इस ओर चला आया था। प्रवरराज के ताम्रपत्रलेखों की मुद्राओं पर जो लेख है उससे इसकी पुष्टि होती है क्योंकि उसमें बताया गया है कि प्रवरराज ने अपनी भुजाओं से ही अपना राज्य उपार्जित किया था। प्रवरराज के केवल दो ताम्रपत्रलेख अब तक प्राप्त हो सके हैं। इसमें से एक ठाकुरदिया में मिला था[१९] और दूसरा मल्लार में।[२०] दोनों ही लेख उसके राज्यकाल के तीसरे वर्ष के हैं। इससे अनुमान किया जाता है कि प्रवरराज का राज्य अल्पकालीन रहा है क्योंकि संभवतः वह अल्पायु था। उसकी मृत्यु के पश्चात् श्रीपुर का राज्य उसके बड़े भाई सुदेवराज को प्राप्त हो गया। सुदेवराज ने अपने राज्य के सातवें वर्ष में श्रीपुर से एक दानपत्र दिया था जबकि उसका एक और दानपत्र उसी वर्ष शरभपुर में उत्कीर्ण किया गया था। सुदेवराज और प्रवरराज का छोटा भाई व्याघ्रराज प्रसन्नपुर में रहता था। उसे स्वतंत्र राजा के अधिकार नहीं थे बल्कि वह प्रवरराज का सामन्त था। उसने राज्य संवत् ४ में ताम्रशासन द्वारा आंगिरस गोत्र के ऋग्वेदी ब्राह्मण दुर्गस्वामी के बेटे दीक्षित अग्नि-चन्द्र स्वामी को पूर्वराष्ट्र में स्थित कुन्तुरपद्र नामक ग्राम दान में दिया था। यह ताम्रपत्रलेख मल्लार में प्राप्त हुआ है और कीलकाक्षरों में उत्कीर्ण है। इस लेख में वंश का नाम अमरार्यकुल बताया गया है।[२१]

इस प्रकार छठी शती ईस्वी के मध्य में अथवा तृतीय चरण में शरभपुरीय वंश के सुदेवराज, प्रवरराज और व्याघ्रराज छत्तीसगढ़ में राज्य कर रहे थे। प्रवरराज की मृत्यु के पश्चात् सुदेवराज समूचे राज्य का स्वामी हुआ। उसके समय में पाण्डु वंशियों ने दक्षिण कोसल की विजय कर शरभपुरीय राजवंश को समाप्त किया और श्रीपुर (वर्तमान सिरपुर, रायपुर जिला) को अपनी राजधानी बनाया।

पाण्डु कुल

पाण्डु कुल के नरेश सोमवंशी थे किन्तु पश्चात्कालीन सोमवंशियों से भिन्नता दिखाने के लिये यहां पाण्डु वंशियों के नाम से उनका विवरण दिया जाता है। इस वंश का पहला राजा उदयन था। उसका बेटा इन्द्रबल हुआ। भांदक में प्राप्त भवदेव रणकेसरी के शिलालेख (आगे क्रमांक ८) से विदित होता है कि इन्द्रबल के चार बेटे थे। उनमें से चौथा भवदेव रणकेसरी अपने भाई नन्न के सामन्त के रूप में चांदा जिले में राज्य करता था। भवदेव चिन्तादुर्ग भी कहलाता था। उसने सूर्यघोष नामक किसी राजा के द्वारा पूर्वकाल में निर्मित कराये गये बुद्ध मंदिर का जीर्णोद्धार कराया था। इन्द्रबल का तीसरा बेटा ईशानदेव था। उसका उल्लेख खरोद (बिलासपुर जिला) के लखनेश्वर मंदिर में जड़े शिलालेख में मिलता है।[२२] इस प्रकार पांडु वंशियों के राज्य का दूर तक विस्तार सिद्ध होता है।

शरभपुरीय राजा सुदेवराज के एक लेख में महासामन्त इन्द्रबल को उसका सर्वाधिकाराधिकृत या प्रधान मंत्री बताया गया है।[11] किन्तु यह कहना कठिन है कि यह इन्द्रबल पाण्डु वंशी इन्द्रबल ही था या और कोई अन्य। आश्चर्य की बात नहीं कि पाण्डु वंशी इन्द्रबल प्रारंभ में शरभपुरीयों के अधीन राजकर्मचारी रहा हो और बाद में मौका मिलने पर स्वयं राजा बन बैठा हो। यह भी संभव है कि उसने स्वयं तो नहीं किन्तु उसके बेटे नन्न ने शरभपुरीयों को पराजित कर दक्षिण कोसल का आधिपत्य प्राप्त किया हो। नन्नराज के राज्य का विस्तार पश्चिम में चांदा जिले तक था यह ऊपर बताया जा चुका है किन्तु पाण्डु वंश की स्थिति को सुदृढ़ करने का यश नन्न के बेटे महाशिव तीवरदेव को प्राप्त हुआ। यह तीवरदेव परम वैष्णव था। उसने कोसल और उत्कल तथा अन्य मण्डलों का आधिपत्य अपनी भुजाओं के पराक्रम से उपार्जित किया था और कोसलाधिपति की उपाधि धारण की थी। तीवरदेव के राज्यकाल के विषय में विद्वानों में मतभेद है किन्तु विष्णुकुण्डी नरेश प्रथम माधववर्मा के समकालीन होने के कारण उसका समय छठी शती ईस्वी के तीसरे चरण में निश्चित किया जा सकता है। तीवरदेव के तीन ताम्रपत्रलेख प्राप्त हुये हैं जो क्रमशः राजिम,[12] बलोदा[13] और बोंडा[14] नामक स्थानों में मिले हैं। इन ताम्रपत्रों से संलग्न मुद्रा पर गरुड़ की प्रतिमा बनी है।

महाशिव तीवरदेव का बेटा महानन्नराज उसके बाद उत्तराधिकारी हुआ। वह भी परमवैष्णव और सकल कोसल मण्डल का अधिपति था। उसका केवल एक ही ताम्रपत्रलेख अब तक प्राप्त हुआ है जिसमें उसके द्वारा अष्टद्वार विषय में स्थित कोन्तिणीक ग्राम के दान किये जाने का उल्लेख है।[15] तीवरदेव के सभी लेखों के समान इस नन्न का यह ताम्रपत्र भी राजधानी श्रीपुर से दिया गया था। ऐसा जान पड़ता है कि तीवरदेव के बेटे नन्न का राज्य अल्पकालीन था। संभवतः वह निस्संतान था। इसलिये उसके बाद उसका चाचा चंद्रगुप्त दक्षिण कोसल के राजसिंहासन पर बैठा। चंद्रगुप्त का बेटा हर्षगुप्त हुआ। हर्षगुप्त ने मगध के मौखरी राजा सूर्यवर्मा की बेटी वासटा से विवाह किया। हर्षगुप्त वैष्णव धर्म का पालन करता था। उसके स्वर्गवासी होने पर उसकी विधवा रानी ने उसकी स्मृति को चिरस्थायी बनाये रखने के लिये हरि (विष्णु) के एक उत्तुंग मंदिर का निर्माण कराया था।[16] हर्षगुप्त और वासटा के बेटे महाशिवगुप्त बालार्जुन के राज्यकाल में निर्मित वह मंदिर सिरपुर में आज भी विद्यमान है और प्राचीन भारतीय वास्तुकला का बेजोड़ नमूना है।

महाशिवगुप्त ईस्वी सन् ५९५ के लगभग सिंहासनारूढ़ हुआ था और लगभग ६० वर्ष तक राज्य करता रहा। छोटी अवस्था में ही धनुर्विद्या में हो प्रवीण हो जाने के कारण वह बालार्जुन कहलाने लगा था। स्वयं परममाहेश्वर होने के कारण शिवगुप्त की राजमुद्रा पर बैठे हुये नन्दी की प्रतिमा पाई जाती है किन्तु उसकी धर्मसहिष्णुता उच्च कोटि की थी। उसकी छत्रच्छाया में श्रीपुर तथा साम्राज्य के अन्य अनेक स्थानों में न केवल शैव अपितु वैष्णव, बौद्ध, और जैन धर्मस्थानों का निर्माण हुआ। मल्लार में प्राप्त ताम्रपत्रलेख (आगे क्रमांक १०) से विदित

विदित होता है कि उसने तरडंशक भोग में स्थित कैलासपुर नामक ग्राम तरडंशक की विहारिका में रहने वाले बौद्ध भिक्षुकों के संघ को दान में दिया था। महाशिवगुप्त के समय में राजधानी श्रीपुर की कीर्ति दूर दूर तक फैल चुकी थी और वहां बौद्ध यात्रियों का आना जाना लगा रहता था। इस स्थान की खुदाई में अनेक बौद्ध विहार, विशाल प्रतिमाएं और शिलालेख प्राप्त हुये हैं जो तत्कालीन धार्मिक एवं सामाजिक व्यवस्था पर प्रकाश डालते है। महाशिवगुप्त के चार ताम्रपत्र लेख अब तक प्राप्त हो चुके हैं जो बारदुला," लोधिया," मल्लार" तथा बोंडा" नामक स्थानों में मिले हैं। इनसे उसके राज्य का विस्तार रायपुर, बिलासपुर और रायगढ़ जिलों में होने की सूचना मिलती है। इसके समय के प्रायः सभी शिलालेख सिरपुर में ही उपलब्ध हुये हैं, जो संख्या में इतने अधिक हैं कि जान पड़ता है कि वह लगातार निर्माण कार्य कराता रहता था। महाशिवगुप्त बालार्जुन के राज्यकाल को यदि छत्तीसगढ़ का स्वर्णयुग कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

बालार्जुन के उत्तराधिकारी के बारे में अभी तक कुछ भी ज्ञात नहीं हो सका है। यह भी अज्ञात है कि उसके बाद पाण्डुवंशियों ने कब तक छत्तीसगढ़ में राज्य किया और कब उनका राज्य समाप्त हुआ। किन्तु ऐसा अनुमान किया जाता है कि चालुक्य राजा द्वितीय पुलकेशी ने कोसल के राज्य को क्षति पहुंचाई थी। यह भी संभव है कि पश्चात्कालीन नल राजाओं ने इस वंश को समाप्त किया हो क्योंकि राजिम में नल वंशी विलासतुंग के लेख में उसके कई पूर्वजों के नाम मिलते हैं।

मेकल के पाण्डव

अमरकंटक के आसपास के क्षेत्र को प्राचीन काल में मेकल कहा जाता था। दक्षिण कोसल के पड़ोसी होने के कारण इस प्रदेश का उल्लेख अक्सर कोसल के साथ ही किया जाता रहा है। पांचवीं शती ईस्वी में वहां पाण्डु वंशियों की एक शाखा राज्य करती थी किन्तु उस शाखा का दक्षिण कोसल के पाण्डु वंशियों से कोई सीधा संबंध था या नहीं, यह कहा नहीं जा सकता। केवल इतना मात्र ज्ञात हो सका है उस शाखा के राजा भरतबल ने कोसल की राजकुमारी लोकप्रकाशा से विवाह किया था। कुछ विद्वानों का मत था कि लोकप्रकाशा ने कोसल के पाण्डु वंश में जन्म लिया था किन्तु वह असंगत जान पड़ता है क्योंकि एक तो भरतबल के राज्यकाल तक कोसल के पाण्डुवंशियों का इस प्रदेश पर अधिपत्य स्थापित नहीं हुआ था, दूसरे दोनों ही प्रदेशों के पाण्डुवंशी सगोत्रीय भी हो सकते हैं जिनमें परस्पर वैवाहिक संबंध स्थापित होना संभव नहीं दिखता। अन्य विद्वानों का कहना है कि लोकप्रकाशा शूरा के वंश में हुई थी किन्तु इसका भी कोई प्रमाण नहीं है। अधिकतर संभावना इस बात की है कि कोसलकुमारी लोकप्रकाशा का जन्म शरभपुरीय राजघराने में हुआ था और वह शरभ की बेटी तथा नरेन्द्र की बहिन थी। उसके पति भरतबल के बम्हनी में प्राप्त ताम्रपत्रलेख में " प्रच्छन्न रूप से महाराज नरेन्द्र का गुणगान किया गया है। उसी ताम्रपत्रलेख में लोकप्रकाशा को अमरजकुलजा कहा गया है जब कि

शरभपुरीय वंश के व्याघ्रराज के लेख में उक्त वंश का नाम श्रमरार्यकुल मिलता है।

भरतबल का अपर नाम इन्द्र था। वह महाराज की पदवी से विभूषित था। उसकी माता का नाम इन्द्रभट्टारिका और पिता का नाम नागबल था। नागबल की भी उपाधि महाराज की थी किन्तु उसके पिता वत्सराज के नाम के साथ यह उपाधि नहीं मिलती। उसी प्रकार वत्सराज के पिता जयबल के नाम का उल्लेख भी किसी राजपदवी के बिना किया गया है। इससे विदित होता है कि जयबल और वत्सराज साधारण सामन्त थे और मगध के गुप्त वंश के आधीन थे। बाद में गुप्त वंश की शक्ति क्षीण हो चुकने पर नागबल और भरतबल स्वतंत्र राजा बन बैठे। भरतबल के बाद मेकल के पाण्डु वंश का क्या हुआ, इस विषयक कोई भी सूचना उपलब्ध नहीं है।

त्रिकलिंगाधिपति सोमवंशी नरेश

ऊपर बताया जा चुका है कि कोसल का पाण्डुकुल सोमवंश भी कहलाता था। किन्तु पश्चात्वर्ती काल में एक ऐसे राजवंश की स्थापना हुई जो सोमवंशी होते हुये भी अपने को पाण्डु-कुल का नहीं बताता था। इस वंश के राजाओं की उपाधि त्रिकलिंगाधिपति की थी अर्थात वे स्वयं को कोसल, कलिंग और उत्कल, इन तीन कलिंगों का स्वामी मानते थे। इनकी राजमुद्राओं पर पाण्डुवंशियों के विपरीत किन्तु शरभपुरीयों के समान गजलक्ष्मी की प्रतिमा पाई जाती है। यद्यपि इनके प्रथम राजा का नाम शिवगुप्त था फिर भी यह ज्ञात नहीं हो सका है कि इनका पूर्ववर्ती पाण्डुवंशियों से कोई संबंध था अथवा नहीं।

सोम वंशियों के प्रथम राजा शिवगुप्त का कोई लेख अब तक प्राप्त नहीं हुआ है किन्तु उसके बेटे महाभवगुप्त के लेख में उसे परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर की उपाधि से विभूषित बताया गया है। ऐसा जान पड़ता है कि शिवगुप्त के समय में त्रिपुरी के कलचुरि राजा मुग्धतुंग ने कोसल पर आक्रमण करके शिवगुप्त से पाली (बिलासपुर जिले में स्थित) छीन ली थी।[25] शिवगुप्त के बाद उसका बेटा जनमेजय महाभवगुप्त (प्रथम) सिंहासन पर बैठा। उसका दूसरा नाम धर्मकंदर्प था। अपने लगभग पैंतीस वर्ष के राज्य काल में उसने अनेक ताम्रपत्रशासन दिये थे जिनसे उसकी राजधानी का नाम सुवर्णपुर जान पड़ता है। यह सुवर्णपुर उड़ीसा राज्य में है। किन्तु इस संग्रहालय के संग्रह में उसका जो ताम्रपत्रलेख है वह सुवर्णपुर से नहीं बल्कि मुरसीमा से दिया गया था। उस लेख से विदित होता है कि महाभवगुप्त ने अपने राज्य के आठवें वर्ष में कशलोडा विषय में स्थित सतल्लमा नामक ग्राम ब्राह्मण धृतिकर के बेटे श्री सान्धकर को दान में दिया था जो पुरुषमण्डप से ओड्र देश में मुरुजुंग ग्राम में जाकर बस गये थे। उसी लेख से यह भी विदित होता है कि महाभवगुप्त के महासान्धिविग्रहिक के पद पर राणक श्री मल्लादत्त नियुक्त थे। महाभवगुप्त कोसल का अधिपति होने का दावा करता था किन्तु उसके समय में त्रिपुरी के कलचुरि राजा ने कोसल पर आक्रमण करके उसे वहां से खदेड़

दिया था। ऐसी स्थिति में महाभवगुप्त के कोसलाधिपति हो सकने में कितनी सचाई है इसका निर्णय करना कठिन है।

महाभवगुप्त (प्रथम) का उत्तराधिकारी उसका बेटा महाशिवगुप्त हुआ जो ययाति भी कहलाता था। उसका राज्यकाल ९५० से १००० ईस्वी तक माना गया है। उसके प्रारंभिक दानपत्र विनीतपुर से जारी हुये थे किन्तु चौबीसवें और अट्ठाईसवें राज्यवर्ष के दानपत्र ययातिनगर से दिये गये थे। हो सकता है कि राज्य के पिछले भाग में ययाति ने अपने नाम पर ययातिनगर बसा कर वहां अपनी राजधानी स्थापित की हो। किन्तु कुछ विद्वानों का विचार है कि उसने नये नगर की रचना नहीं की थी बल्कि विनीतपुर को ही ययातिनगर नाम दे दिया था। इसके दानपत्रों में दक्षिण कोसल के ग्रामों के दान का उल्लेख मिलता है। केवल इतना ही नहीं बल्कि इसने कोसल देश के सन्धिविग्रही नामक एक पदाधिकारी की नियुक्ति की थी। इससे अनुमान किया जाता है कि इस प्रथम ययाति के अधिकार में कोसल देश का भूभाग अवश्य था और कोसल के स्वामित्व के लिये कलचुरियों और सोमवंशियों में होड़ लगी हुई थी।

ययाति महाशिवगुप्त के बाद उसका बेटा भीमरथ द्वितीय महाभवगुप्त के नाम से ग्यारहवीं शती ईस्वी के प्रारंभ में उसका उत्तराधिकारी बना। उसका राज्यकाल ईस्वी १००० से १०१५ माना जाता है। उसकी राजधानी ययातिनगर में थी। उसके माण्डलिक राणक श्री पुञ्ज का एक ताम्रपत्रलेख रायपुर संग्रहालय के संग्रह में है जो इस द्वितीय महाभवगुप्त के राज्य के तेरहवें वर्ष में उत्कीर्ण किया गया था। वामण्डापाटि शिविर से दिये गये इस दानपत्र में बताया गया है कि राणक पुञ्ज ने गिडाण्डा मण्डल में स्थित लोइसरा नामक ग्राम जनार्दन ब्राह्मण को दान में दिया था। यह ब्राह्मण हस्तिपद से आये कौण्डिन्य गोत्रीय और मित्रावरुण प्रवरयुक्त कण्व शाखा के ब्राह्मण नारायण का बेटा था। राणक पुञ्ज पंद्रह गांवों का अधिपति था और उसने पंच महाशब्द प्राप्त कर लिये थे। वह मठर वंश का था। पुञ्ज की मुद्रा पर हंस की आकृति बनी हुई है। द्वितीय महाभवगुप्त के बाद उसका बेटा धर्मरथ राजसिंहासन पर बैठा। वह (द्वितीय) महाशिवगुप्त कहलाता था। उसका राज्यकाल अल्प ही रहा और ईस्वी सन् १०२० के लगभग वह निस्संतान मरा। इसलिये उसके बाद उसका भाई नहुष राजा बना किन्तु उसके समय में राज्य की स्थिति कमजोर होती गई। संभवतः कलचुरि सेना के लगातार आक्रमण से सोमवंशी शिथिल हो चुके थे और उनके हाथ से कोसल तथा उत्कल के प्रदेश क्रमशः निकलते जा रहे थे। वैसी स्थिति में ययाति-चण्डीहर ने (जो महाशिवगुप्त (तृतीय) भी कहलाता था) राज्यशासन को सम्हाल कर कोसल और उत्कल के प्रदेशों को आक्रान्ताओं से मुक्त किया। वंश के उत्कीर्ण लेखों में चंडीहर को बड़ा प्रतापी राजा कहा गया है। चण्डीहर के बाद उद्योत-केसरी ईस्वी सन् १०५५ में सोमवंशियों का राजा हुआ। वह महाभवगुप्त (चतुर्थ) कहलाता था। उसने लगभग पच्चीस वर्ष राज्य किया। उसका न केवल कलचुरियों के साथ युद्ध हुआ बल्कि बंगाल के पालों से भी उसने लोहा लिया। इसके पश्चात् ही सोमवंशियों के हाथ से

कोसल सदा के लिये निकल गया क्योंकि उस समय तक त्रिपुरी के कलचुरि वंश की एक लहुरी शाखा छत्तीसगढ़ में स्थापित हो चुकी थी जिसकी राजधानी तुम्माण में थी।

कलचुरि राजवंश

मध्यप्रदेश के प्राचीन इतिहास में कलचुरि राजवंश का स्थान सबसे महत्वपूर्ण है। माहिष्मती, त्रिपुरी और रत्नपुर के कलचुरि राजाओं के समय में इस प्रदेश ने बहुत ही अच्छे दिन देखे हैं। उनके समय में कला और विद्या की उन्नति हुई तथा उत्तर और दक्षिण भारत में परस्पर न केवल राजनयिक अपितु सामाजिक संबंध भी स्थापित हुये।

कलचुरि वंश के प्राचीन लेखों में उनका नाम कटच्चुरि मिलता है, किन्हीं अन्य लेखों में उन्हें कलत्सुरि, कलचुति और कालचुर्य भी कहा गया है। इन शब्दों का अर्थ क्या है, यह न जान पाने के कारण स्वर्गीय देवदत्त भांडारकर जैसे कई विद्वानों ने कलचुरियों को विदेशी जाति कहना प्रारंभ कर दिया था लेकिन यह ठीक नहीं जान पड़ता। त्रिपुरी के कलचुरि अपने को चन्द्रवंशी कहते थे और रत्नपुर के कलचुरियों की वंशपरंपरा सूर्य से प्रारंभ होती है। दोनों ही प्रकार से उनका संबंध कृतवीर्य के पुत्र हैहय सहस्रार्जुन से जुड़ता है। इस राजवंश की सर्व प्रथम राजधानी माहिष्मती में थी। वहां राज्य करते हुये ये लोग ईस्वी छठी शती में समृद्ध और शक्तिशाली हो चुके थे। उन्होंने गुजरात, महाराष्ट्र और मालवा के प्रदेशों पर अधिकार प्राप्त करके कोंकण तक अपने प्रभुत्व का प्रसार किया था। ईस्वी सन् ५५० से ५७५ तक राज्य करने वाले कलचुरि राजा कृष्णराज के चांदी के सिक्के बहुत मिलते हैं।[¹³] उसके बाद उसके बेटे शंकरगण ने ईस्वी ५७५ से ६०० तक राज्य किया। उसका कलचुरि संवत् ३४७ याने ५९५ ईस्वी का एक दानपत्र नासिक जिले में अभोना में प्राप्त हुआ है जो उज्जयिनी से दिया गया था।[¹⁴] शंकरगण के बाद बुद्धराज ने राज्य किया। उसे वातापी (वर्तमान बदामी) के चालुक्य वंशी मंगलेश से युद्ध करना पड़ा था जिसमें उसकी हार हुई किन्तु पुलकेशी और मंगलेश की आपसी लड़ाई से बुद्धराज को लाभ हुआ और वह बीच में कुछ समय के लिये फिर शक्तिशाली हो गया। इस बीच उसने ईस्वी सन् ६१० में वैदिशनगर (विदिशा) से एक दानपत्र दिया।[¹⁵] अंत में ईस्वी सन् ६२० के लगभग उसके राज्य का एक बड़ा भूभाग पुलकेशी द्वारा छीन लिया गया। तत्पश्चात् कलचुरि वंश क्रमशः क्षीण होता गया और उनकी राजनैतिक प्रवृत्तियां प्रायः समाप्त हो गईं।

त्रिपुरी के कलचुरि

कलचुरियों की एक शाखा माहिष्मती से त्रिपुरी चली आई। किन्तु वह कब वहां आई और क्यों आई, इस संबंध में निश्चय पूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सकता। संभव है कि चालुक्यों के साथ हुये युद्ध में पराभव हो जाने के कारण बुद्धराज के वंशज माहिष्मती छोड़कर चेदि देश की ओर भाग आये हों। किन्तु स्वर्गीय डाक्टर हीरालाल का अनुमान था कि माहिष्मती के

ईहयों में आपसी मनमुटाव हो जाने के कारण एक पक्ष ने दूसरे स्थान पर चले जाने का निश्चय किया। माहिष्मती के समान त्रिपुरी में उन्हें नर्मदा का पुण्य तट प्राप्त हुआ अतएव वे वहीं आकर बस गये। त्रिपुरी के कलचुरि राजवंश का प्रथम राजा कोकल्ल को माना जाता है किन्तु कुछ उत्कीर्ण लेखों से यह विदित होता है कि इस शाखा का संस्थापक वामराजदेव था। वामराजदेव ईस्वी सन् की सातवीं-शताब्दी के अंत में हुआ था। उसने कालिंजर की विजय की और गंगा तथा गंडक नदी पार कर उसके आसपास के प्रदेश को अपने अधीन किया। उसके बाद की दो तीन पीढ़ियों के राजाओं के संबंध में कोई सूचना नहीं मिलती। बाद में प्रथम शंकरगण हुआ। इस राजा के संबंध में भी अधिक जानकारी प्राप्त नहीं हुई है और न ही इसके उत्तराधिकारियों के संबंध में कुछ ज्ञात हो सका है। प्रथम शंकरगण के सागर में मिले उत्कीर्ण लेख में उसे परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर की उपाधि से विभूषित किया गया है। इस उत्कीर्ण लेख की लिपि के आधार पर प्रथम शंकरगण का राज्यकाल ईस्वी सन् की आठवीं शताब्दी का मध्यभाग अनुमानित किया जाता है।

कारीतलाई (जबलपुर जिला) स्थित देवी की मढ़िया में जड़े हुये एक खण्डित शिलालेख में लक्ष्मणराज के राज्यकाल का निर्देश है जो (कलचुरि) संवत् ५९३ (८४१-४२ ईस्वी) में राज्य करता था। किन्तु इस लेख से विदित होता है कि लक्ष्मणराज ने राष्ट्रकूट राजाओं की अधीनता स्वीकार कर ली थी। लक्ष्मणराज के बाद (प्रथम) कोकल्ल त्रिपुरी का राजा हुआ। उसका लक्ष्मणराज से क्या संबंध था इस बारे में कोई सूचना नहीं मिलती। कोकल्ल बहुत ही महत्वाकांक्षी और बड़ा प्रतापी राजा था। यद्यपि उसका स्वयं का कोई लेख अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है किन्तु पश्चात्कालीन कलचुरि लेखों में उसके विषय में जो विवरण मिलते हैं उनसे उसकी शक्ति और सामर्थ्य का पता चलता है। कोकल्ल ने स्वयं चंदेल वंश की राजकु–मारी नट्टादेवी से विवाह कर तथा अपनी बेटी दक्षिण के राष्ट्रकूट वंश में देकर उन राजवंशों से संबंध स्थापित किये थे। बिलहरी से एक शिलालेख में बताया गया है कि समस्त पृथ्वी को जीत लेने के बाद कोकल्ल ने अपनी विजय के दो स्तंभ खड़े किये, दक्षिण में कृष्ण और उत्तर में भोजदेव। इस कथन का यह संकेत है कि कोकल्लदेव की सहायता से इन दोनों राजाओं का शासन दृढ़ और समृद्ध हुआ। उसी प्रकार कर्ण के बनारस ताम्रपत्र लेख में भी सूचित किया गया है कि कोकल्ल ने भोज, वल्लभराज, चित्रकूट के राजा श्रीहर्ष और शंकरगण को अभय वचन दिया था। ये राजा क्रमशः गुर्जर-प्रतिहार, राष्ट्रकूट, चन्देल और सरयूपारी कलचुरि वंश के थे। कोकल्ल का राज्यकाल लगभग ८५० से ८९० ईस्वी तक माना जाता है। कोकल्ल का बेटा (द्वितीय) शंकरगण था जो मुग्धतुंग, प्रसिद्धधवल और रणविग्रह भी कहलाता था। कोकल्ल के दूसरे बेटे अर्जुन का उल्लेख राष्ट्रकूट वंश के लेखों में मिलता है जिससे विदित होता है कि उसने प्रतिहारों के विरुद्ध राष्ट्रकूटों की सहायता की थी। कोकल्ल के बाद उसका बेटा (द्वितीय) शंकरगण-मुग्धतुंग ईस्वी सन् ८९० के लगभग राजसिंहासन पर बैठा। उसने दक्षिण

कोसल की विजय यात्रा की और सोमवंशी राजाओं को हराकर उनसे पाली (बिलासपुर जिले में स्थित) छीन ली थी। वह अपने रिश्तेदार राष्ट्रकूट राजाओं की सदा सहायता करता रहा। चालुक्य वंशीय विनयादित्य के विरुद्ध हुये युद्ध में राष्ट्रकूट (द्वितीय) कृष्ण की ओर से कलचुरि सेनाओं ने युद्ध किया था किन्तु किरणपुर में हुये युद्ध में दोनों वंशों की सम्मिलित सेना चालुक्यों की सेना के सम्मुख टिक नहीं सकी जिससे कृष्ण और मुग्धतुंग दोनों का पराभव हुआ और चालुक्यों ने किरणपुर को जलाकर नष्ट कर डाला।

शंकरगण-मुग्धतुंग के दो बेटे थे, बालहर्ष और केयूरवर्ष। उसकी दोनों बेटियां-लक्ष्मी और गोविंदाम्बा-राष्ट्रकूट राजा जगत्तुंग को व्याही गई थीं। ईस्वी सन् ९१० के लगभग मुग्धतुंग की मृत्यु के अनंतर उसका जेठा बेटा बालहर्ष सिंहासन पर बैठा किन्तु उसके संबंध में अधिक जानकारी प्राप्त नहीं होती। कर्ण के बनारस ताम्रपत्रलेख में उसका नाम मिलता है किन्तु इसके विपरीत वंश के अन्य उत्कीर्ण लेखों में उसका नामनिर्देश तक नहीं किया गया है। ऐसा जान पड़ता है कि बालहर्ष का राज्य अल्पकालीन था। उसके बाद उसका छोटा भाई केयूर-वर्ष ईस्वी सन् ९१५ के लगभग राजा हुआ। केयूरवर्ष को (प्रथम) युवराजदेव भी कहा जाता था। युवराजदेव बड़ा वीर और योद्धा था। कारीतलाई के शिलालेख में बताया गया है कि उसने गौड़, कोसल, गूर्जर और दक्षिण दिशा के राजाओं को जीत लिया था। बिलहरी के शिलालेख में उसकी प्रशंसा करते हुये लिखा गया है कि युवराजदेव ने गौड़ देश की युवतियों की मनोकामना पूर्ण की, कर्णाटक की बालाओं के साथ क्रीड़ा की, लाट देश की ललनाओं के ललाट अलंकृत किये, काश्मीर की कामिनियों से क्रीड़ा की और कलिंग की स्त्रियों से मनोहर गीत सुने तथा कैलास से लेकर सेतुबंध तक और पश्चिम के समुद्र तक उसके शस्त्रों ने शत्रुओं के हृदयों में पीड़ा उत्पन्न कर दी थी। चन्देल वंश के लेखों से पता चलता है चन्देल राजा यशोवर्मा से युवराजदेव का युद्ध हुआ था जिसमें पराभव होने पर भी युवराजदेव के राज्य पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। उसी प्रकार राष्ट्रकूटों के आक्रमण से होने वाली क्षति भी अस्थायी ही रही। उस वंश के राजा तृतीय कृष्ण के आक्रमण में कलचुरि लोग बुरी तरह हार गये थे और पूरा का पूरा डाहलमण्डल कृष्ण की कृपा पर आश्रित हो गया था। यह (तृतीय) कृष्ण युवराजदेव की बेटी कन्दकदेवी का बेटा था जो कृष्ण के पिता तृतीय अमोघवर्ष को व्याही गई थी। करहाड में मिले राष्ट्रकूट लेख में स्पष्ट लिखा है कि यद्यपि वह माँ और पत्नी दोनों का ही रिश्तेदार था फिर भी सहस्रार्जुन को कृष्ण ने हराया। कृष्ण से हारने के बाद युवराजदेव चुप नहीं बैठा रहा। उसने मौका पाकर राष्ट्रकूटों को शीघ्र ही डाहलमण्डल से खदेड़ भगाया। युवराजदेव के दो मंत्रियों के नाम उत्कीर्ण लेखों में पाये जाते हैं गोल्लाक और भाकमिश्र। गोल्लाक ने बांधोगढ़ में मत्स्य, कूर्म, वराह, परशुराम और हलधर की प्रतिमाओं का निर्माण कराया था। भाकमिश्र बड़ा धर्मात्मा और विद्वान था। उसका बेटा सोमेश्वर युवराजदेव के उत्तराधिकारी लक्ष्मणराज का मंत्री था। युवराजदेव की रानी नोहला-

देवी चालुक्य वंश के अवनिवर्मा की बेटी थी। सुख्यात संस्कृत कवि और नाटककार राजशेखर युवराजदेव के आश्रय में रहते थे। वहां उन्होंने विद्धशालभञ्जिका नामक नाटक और काव्यमीमांसा नामक अलंकार ग्रन्थ लिखे। इनमें से विद्धशालभञ्जिका त्रिपुरी की राजसभा के सम्मुख खेला गया था।

युवराजदेव और उसकी रानी नोहला दोनों ही शिव के परम भक्त थे। उन्होंने मत्तमयूर मठ के प्रभावशिव नामक आचार्य को बुलाकर गुर्गी के मठ का प्रबंध सौंपा था। उसी प्रकार त्रिपुरी के निकट गोलकी मठ का निर्माण हुआ जिसके अधिष्ठाता सद्भावशंभु नामक आचार्य को तीन लाख गांव दान में दिये गये। गोलकी मठ के सम्बन्धमें विद्वानों में मतैक्य नहीं है। कुछ विद्वानों का मत है कि भेड़ाघाट में स्थित चौंसठ योगनी का मंदिर ही प्राचीन गोलकी मठ है[१०] रानी नोहला ने भी ईश्वरशिव नामक शैव आचार्य को बाहर से बुलाकर उन्हें वैद्यनाथ व नोहलेश्वर नामक मंदिरों से संलग्न मठों का अधिष्ठाता बनाया था और अनेक गांव दान में दिये थे। इस प्रकार (प्रथम) युवराजदेव केयूरवर्ष के शासनकाल में न केवल कलचुरि साम्राज्य का विस्तार हुआ अपितु साहित्य, धर्म और कला का भी समुचित विकास हुआ।

प्रथम युवराज का उत्तराधिकारी (द्वितीय) लक्ष्मणराज था जो ईस्वी सन् ९५० के लगभग राजसिंहासन पर अभिषिक्त हुआ। अपने पिता के सामान महाप्रतापी इस नरेश ने भी अनेक प्रदेशों की विजय यात्रा की। बिलहरी के एक शिलालेख से[११] विदित होता है कि उसने कोसल के अधिपति को हराकर ओड्र (उड़ीसा) की विजय यात्रा की और वहां से कालिय नाग की रत्न जड़ी सुवर्ण प्रतिमा प्राप्त की जिसे बाद में उसने सोमनाथ को अर्पित कर दिया। लक्ष्मणराज ने अपनी बेटी बोन्थादेवी का विवाह चालुक्यवंश के राजा चतुर्थ विक्रमादित्य के साथ किया जिसका बेटा द्वितीय तैलप हुआ। ऊपर बताया जा चुका है कि लक्ष्मणराज ने सोमनाथ की यात्रा कर ओड्र देश से प्राप्त की गई कालिय नाग की मूर्ति भगवान सोमनाथ के चरणों में अर्पित की थी। इसके अलावा उसने मत्तमयूर मठ से हृदयशिव नामक शैव आचार्य को आदर के साथ बुलाकर उन्हें बिलहरी के वैद्यनाथ मठ का अधिष्ठाता बनाया। उन्हीं के शिष्य अघोरशिव को नोहलेश्वर का मठ सौंपा गया। एक अन्य शैव आचार्य प्रशान्तशिव को गुर्गी के मठ का आधिपत्य प्राप्त हुआ। उन आचार्य ने उस स्थान में एक शिव मंदिर का निर्माण कर वहां उमा, हरगौरी, कार्तिकेय, गणपति और सरस्वती की प्रतिमाएं प्रतिष्ठापित कराई।[१२] लक्ष्मणराज का मंत्री सोमेश्वर वैष्णव धर्म को मानता था। उसके दो शिलालेख कारीतलाई में प्राप्त हुए हैं। उनमें से एक नागपुर के संग्रहालय में है[१३] और दूसरा रायपुर के संग्रहालय में। रायपुर के शिलालेख से विदित होता है कि सोमेश्वर ने सोमस्वामिपुर के मध्य में एक वापी का निर्माण कराया था। दूसरे शिलालेख में उसके द्वारा दैत्यसूदन के विशाल मंदिर के निर्माण कराने की सूचना मिलती है। इस मंदिर की व्यवस्था हेतु सोमेश्वर ने दीर्घशाखिका नामक ग्राम दान में दिया था।

उसी प्रकार राजा लक्ष्मणराज, रानी राहड़ा और युवराज शंकरगण ने भी अनेक ग्राम मंदिर को लगा दिये थे।

लक्ष्मणराज ने ईस्वी सन् ९७० तक राज्य किया। उसके बाद उसका बेटा (द्वितीय) शंकरगण राजा हुआ। वह परम वैष्णव था। उसके राज्य काल की घटनाओं के संबंध में विशेष सूचना नहीं मिलती। ऐसा जान पड़ता है कि उसका राज्य अल्पकालीन रहा। ईस्वी सन् ९८० के लगभग उसका छोटा भाई युवराजदेव (द्वितीय) उसका उत्तराधिकारी हुआ। यद्यपि कलचुरि उत्कीर्ण लेखों में बताया जाता है कि युवराजदेव ने अनेक राजाओं पर विजय प्राप्त की थी किन्तु अन्य राजवंशों के लेखों से जान पड़ता है कि इस राजा के समय में त्रिपुरी को बुरे दिन देखने पड़े थे और वंश का प्रभाव भी काफी घट गया था। परमारों की उदयपुर प्रशस्ति[illegible] से ज्ञात होता है कि परमार राजा वाक्पति मुंज ने युवराजदेव को हराकर तथा उसके सेनापति का वध कर त्रिपुरी पर अधिकार कर लिया था। ऐसा जान पड़ता है कि इस युद्ध में युवराजदेव (द्वितीय) ने कायरता दिखाई थी। इसलिये मुंज से त्रिपुरी के मुक्त होने के बाद भी मंत्रियों ने युवराजदेव को पुनः सिंहासन पर नहीं बैठने दिया और उसके स्थान पर उसके बेटे कोकल्लदेव (द्वितीय) को राजा बनाया। कोकल्ल ने कलचुरि राज्य को पुनः दृढ़ बनाने का प्रयत्न किया। उसने कन्नौज के प्रतिहार राजा राज्यपाल, गौड़ देश के राजा महीपाल और कुन्तल के चालुक्य वंशी नृपति पांचवें विक्रमादित्य पर विजय प्राप्त की। द्वितीय कोकल्ल के पश्चात उसका बेटा गांगेयदेव ईस्वी सन् १०१५ के लगभग त्रिपुरी के राजसिंहासन पर बैठा। यह नरेश बड़ा प्रतापी और महत्वाकांक्षी था। उसने अपने राज्य के अल्पकाल में ही कलचुरि वंश की कीर्ति को पुनः उज्वल कर उत्तर भारत के राजाओं में सम्मान का स्थान प्राप्त कर लिया था। महोबा में मिले एक चंदेल वंशी उत्कीर्ण लेख से जान पड़ता है कि गांगेयदेव अपने राज्यकाल के प्रारंभिक वर्षों में चन्देल राजा विद्याधर की प्रभुता स्वीकार करता था। किन्तु क्रमशः सामर्थ्य बढ़ाकर गांगेयदेव ने अपनी स्थिति इतनी दृढ़ कर ली कि उसने चन्देलों की अधीनता का जुआ उतार कर फेंक दिया और स्वतन्त्र राजा की हैसियत से अपने राज्य का विस्तार किया। उसने कुन्तल के चालुक्य वंशी नृपति जयसिंह के राज्य पर आक्रमण कर विजय प्राप्त की। इस युद्ध में गांगेयदेव ने परमार भोज और चोल राजेन्द्र के साथ गुट बनाकर कुन्तल पर तीन ओर से आक्रमण किया था। किन्तु परमारों और कलचुरियों की संधि अधिक समय तक न चल सकी क्योंकि परमारों के शिलालेखों और पारिजातमंजरी नामक नाटक में सूचना मिलती है कि भोज परमार ने चेदि देश के राजा पर विजय प्राप्त की थी।

गांगेयदेव ने दक्षिण कोसल के राजा कमलराज की सहायता से उत्कल के कर वंशी राजा को जीतकर पूर्व समुद्र तट पर अपना विजय स्तंभ खड़ा करवाया।[illegible] इस प्रसंग में कमलराज की प्रशंसा करते हुए छत्तीसगढ़ के कलचुरियों के उत्कीर्ण लेखों में बताया गया है कि कमल-राज ने उड़ीसा की लक्ष्मी लाकर गांगेयदेव को दे दी थी। उत्कल विजय के बीच दक्षिण कोसल

के सोमवंशी राजा महाशिवगुप्त ययाति से गांगेयदेव का युद्ध होना स्वाभाविक था। स्वयं ययाति के एक उत्कीर्ण लेख में बताया गया है कि उसने चेदि लोगों पर विजय प्राप्त करके उनके प्रदेश डाहल को नष्ट कर दिया था। किन्तु इसके विपरीत कलचुरि लेखों में सोमवंशियों के पराभव का स्पष्ट उल्लेख है। इससे अनुमान किया जाता है कि दोनों वंशों के बीच बहुत समय तक युद्ध चलता रहा और कभी एक पक्ष प्रबल हुआ तो कभी दूसरा। अंत में विजय गांगेयदेव की हुई। इस विजय के उपलक्ष्य में गांगेयदेव ने त्रिकलिंगाधिपति की उपाधि धारण की। उत्तर भारत में राज्य विस्तार करने का भी गांगेयदेव को अच्छा अवसर मिला क्योंकि गजनी के महमूद के आक्रमण के परिणाम स्वरूप कन्नौज की राजसत्ता डावांडोल हो चुकी थी और बुंदेलखंड के चन्देल भी गण्ड की मृत्यु के अनन्तर हतप्रभ हो चले थे। इसलिए ईस्वी सन् १०२७ के ठीक बाद गांगेयदेव ने गंगा–यमुना के अन्तर्वर्ती प्रदेश को जीतकर कांगड़ा तक अपने राज्य का विस्तार किया। ऐसा कहा जाता है कि उसने कीर देश (कांगड़ा) के राजा को कैद कर लिया था। गंगा यमुना का अन्तर्वर्ती प्रदेश अपने अधिकार में प्राप्त कर गांगेयदेव ने प्रयाग को अपनी दूसरी राजधानी बनाया और तत्पश्चात् काशी पर कब्जा किया। इस प्रकार विस्तृत भूभाग का स्वामित्व प्राप्त करके गांगेयदेव ने महाराजाधिराज और परमेश्वर जैसी उपाधियां धारण कीं। उसके बढ़ते हुए प्रताप और लगातार फैलती हुई कीर्ति से चंदेल राजा विजयपाल चिंतित हो उठा। दोनों वंशों के बीच युद्ध का होना अनिवार्य हो गया और उस युद्ध में गांगेयदेव को कुछ समय के लिए झुकना पड़ा किन्तु अन्ततोगत्वा कलचुरि वंश की ही विजय हुई। गांगेय ने अपने शासन के अंतिम दिनों में बंग और मगध पर चढ़ाई की और कलचुरि सेना गया तक जा पहुंची। यह सेना गांगेय के बेटे युवराज कर्णदेव के नेतृत्व में उस प्रदेश में पहुंची थी। कहा जाता है कि कलचुरि सेना ने गया के अनेक बौद्ध मठों को लूटकर भिक्षुओं और उपासकों की हत्या कर डाली थी। अन्त में अतिश दीपंकर नामक बौद्ध भिक्षु की मध्यस्थता से कलचुरि और पाल सेनाओं में संधि हो गई। कहा जाता है कि इस सुप्रसिद्ध भिक्षु ने अपनी जान हथेली पर रखकर संधि कराने के लिए उस नदी को कई बार पार किया था जिसके विपरीत तटों पर विरोधी सेनाओं का जमाव था।

ऊपर बताया जा चुका है कि गांगेयदेव ने प्रयाग को अपनी राजधानी बना लिया था। वहां वह अक्षयवट की छाया में निवास करता था। इसी स्थान पर उसकी मृत्यु हुई और उसकी एक सौ रानियां उसके साथ चितापर जलकर सती हुई। उत्कीर्ण लेखों से पता लगता है कि गांगेयदेव की मृत्यु कलचुरि संवत् ७९२ में फाल्गुन वदि २ तदनुसार २२ जनवरी १०४१ ईस्वी को हुई थी। उसके एक वर्ष बाद उसके बेटे कर्ण ने कलचुरि संवत् ७९३ में फाल्गुन मास के कृष्णपक्ष की द्वितीया को अपने पिता का प्रथम वार्षिक श्राद्ध सम्पन्न किया था। गांगेयदेव की तुलना भारतवर्ष के प्रमुख सम्राटों से की जा सकती है। उसने अपनी शक्ति और पराक्रम से कलचुरि वंश को समृद्ध बनाया था और विस्तृत साम्राज्य की स्थापना की थी। कहा जाता है कि उसने विक्रमादित्य की उपाधि भी अर्जित की थी। उसकी सामर्थ्य से प्रभावित होकर उसके

विरोधी नरेश भी उसे जितविश्व अर्थात् विश्व को जीत लेने वाला कहते थे। राजनीति में निपुण होने के साथ वह मंदिरों के निर्माता के रूप में भी प्रसिद्ध है। उसने काशी में मेरुपद्धति से एक उत्तुंग शिवालय का निर्माण कराया था। शिल्पशास्त्रों से ज्ञात होता है कि मेरु षट्कोण और बारह या सोलह मंजिलकी इमारत को कहा जाता है जिसमें चारद्वार और चार शिखर होते हैं। गांगेयदेव के राज्य की सबसे बड़ी विशेषता है उसके द्वारा सोने के सिक्कों का चलाया जाना। इन सिक्कों के सामने के भाग पर तीन पंक्तियों में गांगेयदेव का नाम और पीठ पर चार भुजा वाली लक्ष्मी की बैठी हुई प्रतिमा बनी रहती है [15]। गांगेयदेव द्वारा चलाये गये इन सिक्कों की नकल उत्तर भारत के तत्कालीन राजवंशों—जैसे चंदेल, गहड़वाल और तोमर आदि ने की थी, यहां तक कि वैसे सिक्के सुदूर काश्मीर में भी चल पड़े थे।

गांगेयदेव का उत्तराधिकारी उसका बेटा कर्ण हुआ। पिता से उत्तराधिकार में प्राप्त साम्राज्य का उसने विस्तार किया और वंग विजय की। रीवा में प्राप्त कलचुरि संवत् ८०० (१०४८–४९ ईस्वी) के शिलालेख में [16] कर्ण के प्रारंभिक शासनकाल की घटनाओं का उल्लेख किया गया है। उससे विदित होता ह कि शासन के प्रथम सात वर्षों के भीतर ही कर्ण ने पल्लव, चोल और कुन्तल देशों को जीत लिया था।

फिर कर्ण ने गुर्जर देश पर आक्रमण करके वहां के राजा भीम को पराजित किया किन्तु बाद में उससे संधि कर उसकी सहायता से मालवा के परमारों की भूमि पर आक्रमण किया। परमारों का राजा भोज कर्ण के ही समान प्रतापी था और वह कर्ण के पिता गांगेयदेव को हरा चुका था। यह बात कर्ण के मन में खटक रही थी। इसीलिए उसने गुर्जर नृपति भीम से संधि करके मालव साम्राज्य पर हमला किया। मेरुतुंग ने अपने प्रबन्धचिंतामणि ग्रन्थ में लिखा है कि कर्ण ने भीम को वचन दिया था कि मालवा विजय के पश्चात् वह प्रदेश दोनों में बराबर बराबर बांटा जायगा। किन्तु युद्ध में विजय प्राप्त करने के पश्चात् जब कर्ण ने परमारों की राजधानी धारा पर अपना अधिकार कर लिया तो वह अपने वचन से मुकर गया। इससे गुर्जर नरेश भीम क्रुद्धहो गया और उसने चेदि देश पर चढ़ाई कर दी। चतुर कर्ण ने भीम को तरह तरह के उपहार-जैसे घोड़े, हाथी और परमारों की लूट में प्राप्त हुई सुवर्ण मण्डपिका आदि-देकर सन्तुष्ट किया।

इसके बाद कर्ण ने चंदेल राजा देववर्मा को पराजित किया क्योंकि बिल्हण के विक्रमांकदेवचरित में उल्लेख मिलता है कि कर्णकालिंजरगिरिपति के लिए काल के समान था। इसके बाद वह मगध और गौड़ पहुंचा। हेमचन्द्र के द्व्याश्रयकाव्य के अनुसार गौड़ राजा ने अपनी जान और राज्य बचाने के लिये कर्ण को बहुत सा धन भेंट किया। गौड़ विजय की सूचना कलचुरि उत्कीर्ण लेखों में भी मिलती है। किन्तु उसके विपरीत संध्याकरनंदी के रामचरित में लिखा है कि गौड़ के राजा पालवंशी विग्रहपाल ने कर्ण को पराजित किया था। लेकिन अधिक

संभावना यही दिखती है कि विजयश्री कर्ण को ही प्राप्त हुई थी क्योंकि वीरभूम जिले में एक स्थान पर कर्ण के लेखयुक्त एक स्तंभ प्राप्त हुआ है जो कर्ण ने वहां की देवी को अर्पित किया था।[44] पाल वंशी राजा विग्रहपाल को जीत चुकने पर भी कर्ण ने उसे अपने विश्वास में लेने के उद्देश्य से अपनी बेटी यौवनश्री का विवाह उसके साथ कर दिया।

ईस्वी सन् १०५२ तक कर्ण का ऐश्वर्य अपने शिखर पर पहुंच चुका था। वह चारों ओर के प्रदेश जीत चुका था और तत्कालीन प्रमुख राजवंशों को या तो हराकर या उनसे संधि करके अपने साथ कर चुका था। इस प्रकार उसने चक्रवर्ती का पद प्राप्त कर लिया था। उसकी घोषणा करने के उद्देश्य से कर्ण ने कलचुरि संवत् ८०४ (१०५२-५३ ईस्वी) में अपना दूसरा राज्याभिषेक कराया।[45]

चक्रवर्ती जैसा विस्तृत साम्राज्य प्राप्त कर चुकने पर भी कर्ण जीते हुये प्रदेशों पर अधिक समय तक अपना कब्जा नहीं रख सका और एक एक कर वे भूभाग कर्ण के हाथ से निकलते गये। संयोग की बात कि परस्पर विरोधी परमारों और चालुक्यों में मित्रता हो गई जिससे लाभ उठाकर परमार राजा जयसिंह ने चालुक्य सोमेश्वर (प्रथम) – आहवमल्ल की सहायता से अपना राजसिंहासन वापस प्राप्त किया और इस प्रकार कर्ण के हाथसे मालवा निकल गया। उसी प्रकार चन्देल लोग भी स्वतंत्र हो गये जिसका श्रेय देववर्मा के भाई कीर्त्ति-वर्मा को है। कीर्त्तिवर्मा कर्ण के ही समान महान प्रतापी नरेश था। अजयगढ़ के शिलालेख में उसे कर्ण रूपी समुद्र को सोखने वाला अगस्त्य कहा गया है। कर्ण पर इस महान विजय के उपलक्ष्य में कृष्णमिश्र द्वारा रचित प्रबोधचन्द्रोदय नामक नाटक खेला गया था। इस नाटक में बताया गया है कि कीर्तिवर्मा की यह महान विजय उसके वीर सेनापति गोपाल के पराक्रम के कारण हुई थी।

कलचुरि साम्राज्य के घटते हुये प्रभाव से कर्ण बहुत चिन्तित हुआ और उसने अपने राज्यकाल के अंतिम दिनों में मालवा पर फिर से चढ़ाई की। पिछले समय मालव नरेश जयसिंह को चालुक्य आहवमल्ल से सहायता मिली थी जिसके कारण वह कर्ण से अपना राज्य वापिस प्राप्त कर सके थे। किन्तु इस समय तक आहवमल्ल का निधन हो चुका था और उसका बेटा (द्वितीय) सोमेश्वर चालुक्यों का राजा था। अपने भाई चौथे विक्रमादित्य की बढ़ती हुई महत्वाकांक्षाओं से चिन्तित सोमेश्वर ने कलचुरि कर्ण से संधि कर लेना ही उचित समझा। इन दोनों वंशों की सम्मिलित सेनाओं ने मालवा विजय की। इससे मालव देश की क्या दुर्गति हुई इसका कुछ विवरण परमारों की उदयपुर प्रशस्ति[46] तथा उनके अन्य उत्कीर्ण लेखों में मिलता है। कर्ण ने संभवतः ईस्वी सन् १०७० के लगभग मालवा पर दूसरी बार विजय प्राप्त की थी किन्तु वह विजयश्री को अधिक समय तक स्थायी नहीं रख सका। ईस्वी सन् १०७३ के लगभग उदयादित्य नामक परमार राजा ने कर्ण का पराभव किया और इस प्रकार कर्ण के

सारे प्रयत्न निष्फल हो गये। ऐसा जान पड़ता है कि इस घटना से कर्ण को बड़ी निराशा हुई और उसने अपने स्थान पर अपने पुत्र यशःकर्ण का स्वयं राज्याभिषेक किया। इस प्रकार कर्ण का राज्यकाल ईस्वी सन् १०४१ से १०७३ तक रहा। वह अपने समय का नेपोलियन कहा जाता है।

कर्ण ने परमभट्टारक, महाराजाधिराज, परमेश्वर आदि उपाधियों के साथ त्रिकलिंगाधिपति, अश्वपतिगजपतिनरपतिराजत्रयाधिपति आदि पदवियां धारण की थीं। त्रिकलिंगाधिपति की उपाधि कर्ण के, कलिंग, कोसल और उत्कल इन देशों के अधिपति होने की सूचना देती है। कन्नौज के प्रतिहार अश्वपति कहलाते थे, उसी प्रकार कलिंगके राजा गजपति तथा चालुक्य नरेश नरपति कहे जाते थे। इन तीनों देशों पर विजय प्राप्त कर उनके नरेशों को अपने आधीन कर चुकने के कारण ही कर्ण ने अश्वपतिगजपतिनरपतिराजत्रयाधिपति का विरुद प्राप्त किया था। आगे रासमाला से ज्ञात होता है कि कर्ण के दरबार में एक सौ छत्तीस नरेश उपस्थित रहते थे। भेड़ाघाट की एक प्रशस्ति से विदित होता है कि पांड्य और हूण वंशी राजाओं सहित मुरल, वंग, कुंग, कलिंग और कीर देश के नृपति भी उससे डरते थे। करनबेल की प्रशस्ति में बताया गया है कि चोड, कुंग, हूण, गौड़, गुर्जर और कीर के राजा कर्ण की सेवा करते थे।

कर्ण महान् योद्धा तो था ही, किन्तु धर्म, विद्या और कला का उदार आश्रयदाता भी था। उसने काशी में कर्णमेरु नामक उत्तुंग शिवमंदिर का और प्रयाग में कर्णतीर्थ नामक घाट का निर्माण कराया था। कर्ण ने कर्णावती नगरी बसाई थी जिसे कुछ विद्वान जबलपुर के निकट करनबेल बताते हैं और कुछ विद्वानों का मत है कि संभवतः वह काशी में गंगा के तट पर स्थित थी। अमरकंटक के मंदिर कर्ण के बनवाये कहे जाते हैं। स्वयं परममाहेश्वर होते हुये भी कर्ण ने अपने राज्य में अन्य धर्मों के विकास और प्रसार में रुकावट नहीं डाली थी क्योंकि उसकी दूसरी राजधानी काशी के निकट सारनाथ में प्राप्त हुये कलचुरि संवत् ८१० के शिलालेख में सूचना मिलती है कि उस समय सारनाथ में बौद्ध बिहार मौजूद थे। कर्ण विद्वानों का आदर करता था और उन्हें आश्रय देता था। उसके उत्कीर्ण लेखों में बताया गया है कि वह ब्राह्मणों को इतने दान देता रहता था कि ताम्रपत्रों पर उनके खोदे जाने से जो लगातार शोर होता रहता था उससे जग बहरा हो गया था। काश्मीर के सुकवि बिल्हण को सम्मान देकर कर्ण ने अपनी सभा में रखा था। कर्ण की सभा के अन्य कवियों में वल्लण, नाचिराज, कर्पूर और विद्यापति मुख्य हैं। संस्कृत के कवियों के अलावा प्राकृत के कवियों को भी कर्ण का आश्रय प्राप्त था। प्राकृतपैंगल नामक रचना में कर्ण की स्तुति संबंधी अनेक गाथाएं हैं। उसी प्रकार अपभ्रंश भाषा के काव्य करकण्डचरिउ के रचयिता कनकामर कवि ने लिखा है कि वे अपनी कविता कर्ण को सुनाकर उसका मनोरंजन करते थे।

कर्ण की रानी आवल्लदेवी हूण वंश की थी। उसके एक बेटा था यशस्कर्ण जिसे कर्ण ने स्वयं राजसिंहासन पर बैठाया था। कर्ण की दो बेटियां थी वीरश्री और यौवनश्री। वीरश्री का विवाह वंग के राजा जातवर्मा के साथ और यौवनश्री का गौड के विग्रहपाल के साथ हुआ था।

जैसा कि ऊपर बताया गया है ईस्वी सन् १०४१ से लेकर १०७३ पर्यंत बत्तीस वर्ष राज्य करने के पश्चात कर्ण को राजनीति से वैराग्य हो गया और उसने अपने पुत्र यशस्कर्ण को राजसिंहासन पर अभिषिक्त किया था। राज्यारोहण के ठीक बाद यशस्कर्ण ने आंध्र देश में द्राक्षाराम पर्यंत आक्रमण किया और वहां पहुंचकर भीमेश्वर की पूजा की। इस विजय यात्रा में उसने वेंगी के चालुक्य वंशी राजा सातवें विजयादित्य को हराया। इस में रत्नपुर की कलचुरि शाखा के प्रथम जाजल्लदेव ने यशस्कर्ण की सहायता की थी ऐसा अनुमान किया जाता है। इसके विपरीत उत्तर भारत में यशस्कर्ण का प्रभाव घटने लगा था और कन्नौज तथा उसके आसपास का प्रदेश गाहड़वाल वंश के अधिकार में आ गया था। उसी प्रकार ईस्वी सन् १०९० के पूर्व ही काशी भी कलचुरियों के हाथ से निकल गया। वहां भी गाहड़वाल वंश का आधिपत्य स्थापित हुआ। इतने प्रदेश साम्राज्य के बाहर निकल जाने से यशस्कर्ण को चिन्ता हुई कि राज्य का पुनर्विस्तार कैसे हो। तदनुसार उसने उत्तर भारत के अपने पूर्व प्रदेशों को फिर प्राप्त करने के लिये बड़े प्रयत्न किये और बिहार में चम्पारण्य तक चढ़ाई की। कहा जाता है कि उस प्रदेश को यशस्कर्ण ने बरबाद कर दिया था। किन्तु इतने के बाद भी उसके राज्य का विस्तार नहीं हो सका। दूसरे ओर, उसे परमार, चंदेल और चालुक्य राजाओं के हाथ तीन-तरफा हानि उठानी पड़ी। नागपुर की परमार प्रशस्ति से [23] ज्ञात होता है कि परमार राजा लक्ष्मदेव ने त्रिपुरी पर आक्रमणकर उसे नष्ट कर डाला था। चंदेलों के उत्कीर्ण लेखों में सल्लक्षणवर्मा द्वारा यशस्कर्ण की श्री नष्ट कर देने की बात कही है और उसी प्रकार चालुक्य वंश के छठवें विक्रमादित्य के साथ हुये युद्ध में भी यशस्कर्ण को पराजय मिली थी। इस प्रकार यशस्कर्ण के समय में कलचुरि राज्य के बहुत से प्रदेश निकल गये तथा प्रयाग और काशी भी कलचुरियों की राजधानी नहीं रही।

यशस्कर्ण का उत्तराधिकारी गयाकर्ण ईस्वी सन् ११२३ के लगभग राजसिंहासन पर बैठा। उसके समय के दो लेख मिले हैं एक तेवर में [24] और दूसरा बहुरीबंद [25] में। दोनों ही स्थान जबलपुर जिले में स्थित हैं। ऐसा जान पड़ता है चन्देल मदनवर्मा के दबाव के कारण गयाकर्ण को बघेलखण्ड का प्रदेश छोड़ देना पड़ा था। इतना ही नहीं, छत्तीसगढ़ के कलचुरि नृपति जो अब तक त्रिपुरी की मुख्य शाखा के अधीन राज्य करते थे, गयाकर्ण के समय में स्वतंत्र हो गये। इससे नाराज होकर गयाकर्ण ने तत्कालीन राजा दूसरे रत्नदेव को जीतने के लिये बड़ी भारी सेना भेजी किन्तु उलटे गयाकर्ण की ही पराजय हुई [26]। गयाकर्ण ने गुहिल वंशी राजा विजयसिंह की बेटी अल्हण देवी से विवाह किया था। वह परमार राजा उदयादित्य की बेटी श्यामलदेवी

की बेटी थी। इस वैवाहिक संबंध से परमारों और कलचुरियों के बीच बहुत काल से चले आये वैरभाव का अन्त हुआ। अल्हणदेवी पाशुपतपंथ को मानती थी। उसने भेड़ाघाट में वैद्यनाथ शिव का मंदिर बनवाकर लाट (गुजरात) देश के रुद्रराशि नामक पाशुपत आचार्य को उसका अधिष्ठाता बनाया। गयाकर्ण भी शैव था। उसके गुरु का नाम शक्तिशिव था।

गयाकर्ण के दो बेटे थे नरसिंह और जयसिंह। दोनों भाईयों में राम और लक्ष्मण जैसा प्रेम था। गयाकर्ण के पश्चात् नरसिंह राजसिंहासन पर बैठा। उसकी भेड़ाघाट प्रशस्ति में कलचुरि संवत् ९०७ पड़ा हुआ है। उसके दो अन्य लेख ईस्वी सन् ११५८ और ११५९ के हैं। नरसिंह के समय की राजनैतिक घटनाओं का विवरण नहीं मिलता। उसके गुरु कीर्तिशिव थे। नरसिंह ईस्वी सन् ११५३ से ११६३ तक राज्य करता रहा। उसके बाद उसका छोटा भाई जयसिंह त्रिपुरी का राजा हुआ। इसके राजगुरु विमलशिव नामक शैव आचार्य थे। जयसिंह के जबलपुर और कुंभी के ताम्रपत्रों में उल्लेख मिलता है कि उसके राज्याभिषेक के समाचार से ही गुर्जर, तुरुष्क और कुन्तल नृपति घबड़ा उठे थे। शिवरीनारायण के एक लेख में जयसिंह के दक्षिण कोसल पर आक्रमण करने का उल्लेख मिलता है जिसमें द्वितीय जाजल्लदेव के विरुद्ध जयसिंह की पराजय हुई थी। यह घटना ईस्वी सन् ११६५ के लगभग की है। चन्देलों के लेखों से ज्ञात होता है कि चन्देल राजा परमर्दिदेव ने भी जयसिंह को त्रस्त कर रक्खा था। जयसिंह की दो रानियां थीं केल्हणदेवी और गोसलदेवी। गोसलदेवी ने गोसलपुर नामक नगर बसाया था जो एक ग्राम के रूप में आज भी विद्यमान है।

जयसिंह का उत्तराधिकारी उसका बेटा विजयसिंह ईस्वी सन् ११८० के लगभग त्रिपुरी के सिंहासन पर बैठा। उसके समय में उसके एक सामन्त ने विद्रोह कर दिया था किन्तु मलयसिंह नामक मंत्री ने उस विद्रोह को दबा दिया। यह घटना ईस्वी सन् ११९३ के पूर्व हुई थी। ईस्वी सन् १२१० के लगभग चंदेल राजा त्रैलोक्यवर्मा ने रीवा का निकटवर्ती प्रदेश विजयसिंह से छीन लिया। उसी प्रकार यादव वंशी राजा सिंघन ने भी विजयसिंह को दबा रखा था। इस प्रकार विजयसिंह के समय में कलचुरि राज्य की स्थिति डांवाडोल हो रही थी क्यों कि सागर और दमोह जिलों वाला प्रदेश तथा उसी प्रकार बघेलखण्ड का प्रदेश चन्देलों के अधिकार में चला गया था। ऐसा जान पड़ता है कि विजयसिंह का राज्य केवल जबलपुर जिले तक ही सीमित था। वह भी पश्चात्काल में कलचुरियों के हाथ से निकल गया। विजयसिंह त्रिपुरी के कलचुरि वंश का अन्तिम राजा था। उसका राज्य कब समाप्त हुआ यह ज्ञात नहीं है। उसके बेटे महाराजकुमार अजयसिंह का उत्कीर्ण लेखों में उल्लेख मिलता है किन्तु उसे राज्य करने का अवसर मिला कि नहीं यह अज्ञात है।

रत्नपुर के कलचुरि

त्रिपुरी के कलचुरियों की एक लहुरी शाखा दक्षिण कोसल में आकर वहां राज्य करने

लगी थी। इस शाखा के उत्कीर्ण लेखों में बताया गया है कि त्रिपुरी के कोकल्ल के अठारह बेटे थे। उनमें से जेठा बेटा तो त्रिपुरी का राजा हुआ और उसने अपने भाइयों को निकटवर्ती मंडलों का अधिपति बनाया। इन छोटे भाइयों में से एक के वंश में कलिंगराज हुआ जिसने अपने पूर्वजों की भूमि को छोड़कर दक्षिण कोसल जनपद में पहुंचकर उसे अपने बाहुबल से प्राप्त किया और पूर्वजों द्वारा स्थापित तुम्माण को राजधानी बनाकर अपनी राज्यलक्ष्मी की वृद्धि की [१]। इस कलिंगराज का बेटा कमलराज हुआ जो त्रिपुरी के गांगेयदेव का समकालीन था। इस विवरण से ज्ञात होता है कि प्रस्तुत कलिंगराज और कमलराज से पूर्व भी त्रिपुरी के कलचुरि वंश ने तुम्माण में अपनी राजधानी स्थापित कर ली थी। इस कथन की पुष्टि त्रिपुरी की शाखा के उत्कीर्ण लेखों से भी होती है। बिलहरी के शिलालेख में बताया गया है कि पहले कोकल्ल के बेटे मुग्धतुंग ने पूर्व समुद्र के किनारे के देशों को जीतकर कोसल के राजा से पाली छीन ली थी [२]। यह पाली रत्नपुर के निकट ही स्थित है। ऐसा जान पड़ता है कि पाली को प्राप्त करने के बाद मुग्धतुंग ने अपने किसी वंशज को वहां नियुक्त किया होगा। इस संबंध में कोई भी प्रमाण आज तक उपलब्ध नहीं हो सका है। वह ईस्वी सन् ९०० के लगभग की घटना है जब तुम्माण को पहली बार कलचुरि वंश की राजधानी बनाया गया। किन्तु ईस्वी सन् ९५० के लगभग सोमवंशियों ने कलचुरियों को कोसल से खदेड़ दिया। इससे त्रिपुरी का राजा द्वितीय लक्ष्मणराज क्रुद्ध हो गया और सोमवंशियों को दण्ड देने के लिये उसने स्वयं बड़ी सेना लेकर कोसल और ओड्र पर चढ़ाई की [३]। कलचुरियों की असली विजय उस समय हुई जब दूसरे कोकल्ल के समय में कलिंगराज ने त्रिपुरी को छोड़कर दक्षिण कोसल की विजय की और तुम्माण को ही अपनी राजधानी बनाया जहां उसके पूर्वज पहले राज्य कर चुके थे [४]। कलिंगराज ने दक्षिण कोसल की विजय ईस्वी सन् १००० के लगभग की थी। तुम्माण में राज्य करते हुये कलिंगराज ने अपने शत्रुओं का क्षय किया और राज्यश्री को बढ़ाया। किन्तु पद्मगुप्त के नवसाहसांक चरित से ज्ञात होता है कि परमार राजा सिंधुराज ने कोसल देश पर चढ़ाई कर वहां के राजा का पराभव किया था। सिंधुराज के कोसल पर दूसरे आक्रमण की कथा भी उसी काव्य में दी गई है।

ईस्वी सन् १०२० के लगभग कलिंगराज का बेटा कमलराज तुम्माण के राजसिंहासन पर बैठा। इसके समय में त्रिपुरी के गांगेयदेव ने उड़ीसा पर आक्रमण किया जिसमें कमलराज ने न केवल उसकी सहायता की बल्कि उत्कलराज की सम्पत्ति लूटकर गांगेयदेव को समर्पित कर दी थी [५]। उत्कल के युद्ध से कमलराज को एक लाभ यह हुआ कि साहिल्ल नामक एक योद्धा उसके साथ कोसल चला आया। इस साहिल्ल ने और इसके वंशजों ने पश्चात्काल में कलचुरियों की तरफ से छत्तीसगढ़ के अनेक प्रदेश जीते थे।

ईस्वी सन् १०४५ के लगभग कमलराज का बेटा पहला रत्नराज उसका उत्तराधिकारी हुआ। उसने कोमो मंडल के अधिपति राजा वज्जूक या वज्जुवर्मा की बेटी नोनल्ला से

विवाह किया। इस संबंध के स्थापित हो जाने से छत्तीसगढ़ में कलचुरियों का प्रभाव दृढ़ हो गया।

रत्नदेव ने तुम्माण को इतना सुन्दर बना दिया था कि देखने वालों की आंखों को सुख होता था। उसने वहां बंकेश्वर और रत्नेश्वर नामक प्रमुख देवालयों के साथ अनेक मंदिरों का निर्माण कराया तथा बाग बगीचे लगवाये। तत्पश्चात् उसने अपने नाम पर रत्नपुर नामक नगर बसाया और अपनी राजधानी तुम्माण से उठाकर वहां ले गया। इस नगर का नगर-प्रधान श्रेष्ठी वश था। इस रत्नदेव के बाद उसका बेटा पहला पृथ्वीदेव रत्नपुर के राजसिंहासन पर बैठा। पृथ्वीदेव के दो उत्कीर्ण लेखों में से पहले में कलचुरि संवत् ८२१ (ईस्वी १०६९) पड़ा है जिससे विदित होता है इससे पूर्व रत्नदेव की मृत्यु हो चुकी थी। पृथ्वीदेव के इन दोनों ही ताम्रपत्रलेखों में उसे 'महामण्डलेश्वर' और 'समधिगताशेषपंचमहाशब्द' कहा गया है जिससे विदित होता है कि वह त्रिपुरी की मुख्य शाखा के एक सामन्त के रूप में कोसल में राज्य करता था। इतने पर भी उसने अपने राज्य और प्रभाव का विस्तार करके सकलकोसलाधिपति की पदवी धारण कर ली थी और कोसल के इक्कीस हजार ग्रामों का स्वामी बन गया था। पृथ्वीदेव बंकेश्वर का भक्त था और अपने राज्य को उनके प्रसाद से प्राप्त हुआ मानता था। उसने तुम्माण के बंकेश्वर मंदिर म चतुष्किका का निर्माण करके उसकी प्रतिष्ठा कराई थी और उस अवसर पर एक ग्राम का दान किया था। पृथ्वीदेव की रानी राजल्ला थी। उसके दो मंत्रियों के नाम उत्कीर्णलेखों में मिलते हैं जिनमें से एक विग्रहराज था और दूसरा सोढ़देव। पृथ्वीदेव ने तुम्माण में पृथ्वीदेवेश्वर नामक शिवमंदिर का और रत्नपुर में समुद्र के समान विशाल सरोवर का निर्माण कराया था।

ईस्वी सन् १०९५ से पहले पृथ्वीदेव का बेटा पहला जाजल्लदेव उसका उत्तराधिकारी हुआ। उसने राज्य प्राप्त करते ही अपने राज्य का विस्तार करने के उद्देश्य से वैरागर, लञ्जिका, भाणार और तलहारिमण्डल को जीता। उसके बाद बंगाल में दण्डकपुर तथा आंध्र और खिमिडी पर विजय प्राप्त की। इसके अलावा नन्दावली और कुक्कुट के राजा भी उसका शासन मानकर उसे वार्षिक कर देने लगे थे। इस विजययात्रा में उसके सेनापति जगपाल ने अद्भुत पराक्रम का कार्य किया। तत्पश्चात् जाजल्लदेव ने चक्रकोट के छिंदक नागवंशी राजा सोमेश्वर को दण्ड देने का निश्चय किया क्योंकि सोमेश्वर ने उससे पूर्व रत्नपुर पर आक्रमण करके कोसल का बहुत सा प्रदेश अपने अधिकार में कर लिया था। इसलिये जाजल्लदेव ने सोमेश्वर के राज्य पर आक्रमण कर उसकी भारी सेना को नष्ट कर उसकी राजधानी को जला डाला। जाजल्लदेव के रत्नपुर शिलालेख में बताया गया है कि इस राजा ने सोमेश्वर को उसके मंत्रियों और रानियों समेत कैद कर लिया था किन्तु बाद में उसकी माता के अनुरोध पर मुक्त कर दिया। सोमेश्वर तथा पूर्वोक्त बहुत से राजाओं को जीत लेने के कारण जाजल्ल की शक्ति और कीर्ति इतनी बढ़ गई थी कि न केवल त्रिपुरी के राजा यशःकर्ण ने अपितु कान्यकुब्ज

श्रौर जेजाभुक्ति के गाहड़वाल श्रौर चंदेल राजाश्रों ने भी उसे शूर मानकर उसके साथ मित्रता की श्रौर धन भेंट किया। जाजल्लदेव के समय में रत्नपुर राज्य भलीभांति समृद्ध हो चुका था जिसका प्रमाण जाजल्लदेव के द्वारा अपने नाम पर सोने के सिक्कों का जारी करना है। इन सिक्कों की पीठ पर गजशार्दूल का प्रतीक बना हुआ है जो जाजल्लदेव द्वारा गंग राजा को जीतने की सूचना देता है। ऐसा जान पड़ता है कि जाजल्लदेव ने अपने नाम पर जाजल्लपुर नामक एक नगर बसाया था वह वर्तमान जांजगीर हो सकता है। इस नगर में जाजल्लदेव ने मंदिर, मठ, सरोवर, श्राम्रवन श्रादि की रचना की थी। उसी प्रकार रत्नपुर के निकटवर्ती पाली के शिव मंदिर का जीर्णोद्धार भी जाजल्लदेव ने कराया था।[३४] जाजल्लदेव की रानी लाच्छल्लादेवी, गुरु रुद्रशिव, सांधिविग्रहिक विग्रहराज श्रौर मंत्री पुरुषोत्तम के नाम उत्कीर्ण लेखों में प्राप्त होते हैं।

प्रथम जाजल्लदेव के बाद उसका बेटा द्वितीय रत्नदेव कलचुरि संवत् ८७८ (ईस्वी ११२७) से पूर्व रत्नपुर का राजा हुआ। श्रतः वह त्रिपुरी की मुख्य शाखा की श्राधीनता नहीं मानता था इसलिये वहां के राजा गयाकर्ण ने उसे दबाने के लिये एक बड़ी सेना भेजी किन्तु युद्ध में त्रिपुरी के राजा की पराजय हुई। रत्नदेव ने गंग वंशी राजा श्रनंतवर्मा चोड़गंग को भी हराया जिसने कोसल के कलचुरि राज्य पर भयंकर श्राक्रमण किया था। रत्नदेव ने उसके दांत खट्टे कर दिये श्रौर श्रंत में चोडगंग को अपनी पराजय मानकर वापस लौटना पड़ा। इस प्रकार गयाकर्ण श्रौर चोडगंग के श्राक्रमणों को विफल करने के बाद रत्नदेव ने स्वयं अन्य देशों पर विजय प्राप्त करने की इच्छा से गौड़ देश पर चढ़ाई की। इस युद्ध में वल्लभराज श्रौर पुरुषोत्तमराज ने बड़ी वीरता का काम किया था श्रौर गौड़ देश के राजा को हरा दिया। वल्लभराज वैश्य जाति का होते हुये भी द्वितीय रत्नदेव के प्रमुख सामन्तों में गिना जाता था। रत्नदेव की माता लाच्छल्लादेवी उसे अपने बेटे जैसा मानती थी। वल्लभराज ने रेवन्त श्रौर शिव के मंदिरों का निर्माण कराया था श्रौर सरोवर खुदवाये थे। उसी प्रकार पुरुषोत्तम नामक सर्वाधिकारी (प्रधानमंत्री) ने भी रत्नदेव के समय में श्रनेक धार्मिक कृत्य किये श्रौर मठ, मंदिर तथा सरोवरों का निर्माण कराया।

द्वितीय रत्नदेव के दो बेटे थे, द्वितीय पृथ्वीदेव श्रौर जयसिंह। इनमें से द्वितीय पृथ्वीदेव रत्नदेव के बाद राजसिंहासन पर बैठा। उसका सबसे पहला उत्कीर्ण लेख कलचुरि संवत् ८९० (ईस्वी ११३८) का है[३५] जिससे जान पड़ता है कि वह उससे दो तीन वर्ष पूर्व श्रर्थात् सन् ११३५-३६ के लगभग रत्नदेव का उत्तराधिकारी बन चुका था क्योंकि कम से कम ईस्वी सन् ११३४ तक द्वितीय रत्नदेव के राज्य करने का उल्लेख मिलता है।[३६] द्वितीय पृथ्वीदेव ने श्रनेक राजाश्रों को अपने श्रधीन किया। उसके जगपाल नामक सेनापति के राजिम के शिलालेख में बताया गया है[३७] कि सरहरागढ़ (संभवतः श्राधुनिक सारंगढ़) श्रौर मचका सिहवा (सिहावा) के किले जगपाल ने जीत लिये थे। तत्पश्चात् भ्रमरवद्र (बस्तर का भाग), कान्तार, कुसुमभोग,

कांडा डोंगर और काकरय (कांकेर) आदि के प्रदेश भी उसने जीतकर पृथ्वीदेव के प्रभुत्व का विस्तार किया। इस प्रकार छत्तीसगढ़ का बहुत सा भाग अपने राज्य में मिला लेने के बाद पृथ्वीदेव ने चक्रकोट पर आक्रमण कर उसे नष्ट कर दिया। इससे गंग वंशी राजा अनंतवर्मा चोडगंग इतना डर गया था कि उसे समुद्र को पार कर भाग जाना ही अपनी जान बचाने का एक मात्र उपाय दिखा। इसी बीच अनंतवर्मा की मृत्यु हो गई और उसका बेटा जटेश्वर-मधुका-मार्णव गंग वंश के सिंहासन पर बैठा। द्वितीय पृथ्वीदेव ने उसके राज्य पर चढ़ाई कर जटेश्वर को कैद कर लिया। इस युद्ध में पृथ्वीदेव के सामन्त ब्रह्मदेव ने बड़ी वीरता का काम किया था। ब्रह्मदेव तलहारिमण्डल का माण्डलीक था किन्तु उससे तुष्ट होकर पृथ्वीदेव ने उसे राजधानी में बुलाकर अपना मंत्री बना लिया। पृथ्वीदेव का शासनकाल कलचुरि संवत् ९१५ से ९१९ (ईस्वी ११६३ से ११६७) के बीच कभी समाप्त हुआ क्योंकि उसका स्वयं का अंतिम उत्कीर्णलेख कलचुरि संवत् ९१५ का मिलता है[illegible] जबकि उसके उत्तराधिकारी द्वितीय जाजल्लदेव के प्रथम उत्कीर्ण लेख में कलचुरि संवत् ९१९ का उल्लेख है।[illegible] द्वितीय जाजल्लदेव के समय में त्रिपुरी के कलचुरि राजा जयसिंहदेव ने छत्तीसगढ़ पर आक्रमण किया क्योंकि वह जाजल्लदेव को अपने आधीन करना चाहता था। किन्तु नया नया राजा होते हुये भी द्वितीय जाजल्लदेव ने अपने सामन्तों की सहायता से जयसिंह का प्रयत्न विफल कर दिया। यद्यपि इस युद्ध में जाजल्लदेव के पक्ष के उल्हणदेव के प्राण गये किन्तु जयसिंह को खाली हाथ वापस लौटना पड़ा। एक उत्कीर्ण लेख से[illegible] विदित होता है कि जाजल्लदेव को पीरू नामक ग्राह ने पकड़ लिया था और ऐसा लगने लगा था कि जाजल्लदेव के प्राण बचना बहुत ही कठिन है किन्तु सौभाग्यवश वह ग्राह से मुक्त हो गया। इसकी खुशी में जाजल्लदेव ने अपने ज्योतिषी राघव और पुरोहित नामदेव को बुंदेरा नामक ग्राम दान में दिया था। जाजल्लदेव के समय में अनेक निर्माण कार्य हुये। गंगाधर के बेटे सोमराज ने मल्लार में शिवमंदिर का निर्माण कराया था जिससे संबंधित शिलालेख रायपुर संग्रहालय के संग्रह में है। पूर्वोक्त उल्हणदेव ने शिवरीनारायण में चन्द्रचूड़ महादेव का मंदिर बनवाया था।

द्वितीय जाजल्लदेव के उत्कीर्ण लेख कलचुरि संवत् ९१९ (ईस्वी ११६७-६८) के मिलते हैं। उसके पश्चात् के लेख नहीं मिलते। इससे अनुमान किया जाता है कि उसका राज्य अल्पकालीन था। खरोद के शिलालेख[illegible] में बताया गया है जब जाजल्लदेव का स्वर्गवास हुआ तो चारों ओर अंधकार छा गया और अव्यवस्था फैल गई। तब द्वितीय जाजल्ल का बड़ा भाई जगद्देव पूर्व देश से दौड़ा आया और उसने शान्ति तथा सुराज्य की स्थापना की। जगद्देव के राज्य में चोर-उचक्कों की समाप्ति हुई तथा सभी प्रकार की विघ्नबाधाएं लुप्त हो गईं; राज्य के शत्रु भी भाग खड़े हुये। बड़ा भाई होते हुये भी जगद्देव का जाजल्लदेव से पूर्व सिंहासन पर बैठना तरह तरह के अनुमानों का कारण बन गया है। किन्तु खरोद के शिलालेख के संकेत से स्पष्ट है कि उसने अपनी इच्छा से अपने अधिकार का त्याग कर द्वितीय जाजल्लदेव को सिंहासन पर

बैठने दिया था और स्वयं पूर्व में राज्य करने वाले गंग वंश को दबाने के लिये निकल पड़ा था। किन्तु ज्यों ही कलचुरि राज्य में अव्यवस्था उत्पन्न हुई उसने तुरंत वापस लौटकर शासन की बागडोर सम्हाल ली।

जगद्देव की रानी सोमल्लादेवी से उसे एक पुत्र हुआ जो तृतीय रत्नदेव कहलाता था। वह ईस्वी सन् ११७८ के लगभग राजसिंहासन पर बैठा। उसका एक शिलालेख खरोद के लखनेश्वर मंदिर की दीवाल में जड़ा हुआ है। उससे विदित होता है कि जब राज्य में अव्यवस्था फैली, लोग दुर्भिक्ष से भूखों मरने लगे, हाथियों की सेना कमजोर हो गई और राजकोष खाली हो गया तो रत्नदेव ने ब्राह्मण गंगाधर को मंत्री बनाया। गंगाधर ने अपनी योग्यता से राज्य को सुव्यवस्थित कर दिया, शत्रुओं का नाश किया तथा सभी विघ्नबाधाएं दूर कर शांति स्थापित की।[illegible] तृतीय रत्नदेव के बाद उसका बेटा प्रतापमल्ल राजसिंहासन पर बैठा। इस के दो ताम्रपत्रलेख प्राप्त हुये हैं जो कलचुरि संवत् ९६५ और ९६९ में क्रमशः दिये थे।[illegible] इसके बारे में कहा गया है कि यद्यपि वह कम अवस्था का था फिर भी शक्ति में बलि के समान था। प्रतापमल्ल के सोने के सिक्के नहीं मिलते किन्तु उसके तांबे के सिक्कों पर सिंह की आकृति तथा एक कटार बनी हुई मिलती है।

प्रतापमल्ल के बाद के कलचुरि इतिहास से संबंधित जानकारी के लिये कोई प्रामाणिक उल्लेख नहीं मिलते हैं। किन्तु पंद्रहवीं शती ईस्वी में वाहरेन्द्र नामक राजा के राज्य करने की सूचना मिलती है। उसके उत्कीर्ण लेख रतनपुर [illegible] और कोसगई [illegible] में प्राप्त हुये हैं जिनमें विक्रम संवत् १५५२ (ईस्वी १४९४-९५) और १५७० (ईस्वी १५१३) का उल्लेख है। कोसगई के शिलालेख में बताया गया है कि सिंघण राजा का बेटा डंघीर था। उसका बेटा मदनब्रह्म हुआ और उसका बेटा रामचन्द्र था। रामचन्द्र के बेटे रत्नसेन की रानी गुण्डायी देवी से वाहर का जन्म हुआ। उसी शिलालेख में बताया गया है कि राजा वाहर ने पठानों को खदेड़ कर शोण नदी तक भगा दिया था। उपर्युक्त लेख से यह भी विदित होता है कि उसने अपनी राजधानी रत्नपुर से हटाकर कोसंगा (वर्तमान कोसगई) के किले में स्थापित की थी। वाहर के मंत्री का नाम माधव था। उसके बाद के कलचुरियों के कोई उत्कीर्ण लेख नहीं मिलते किन्तु यह निश्चित है कि यह वंश ईस्वी सन् १७४० तक रत्नपुर में राज्य करता रहा है।

रायपुर के कलचुरि

चौदहवीं शताब्दी ईस्वी के अंतिम चरण में रत्नपुर की कलचुरि शाखा से एक और शाखा निकली। इस शाखा ने रायपुर को अपनी राजधानी बनाया। रायपुर की शाखा में हुये राजा ब्रह्मदेव के दो शिलालेख प्राप्त हुये हैं।[illegible] उनमें से एक विक्रम संवत् १४५८ (ईस्वी १४०२) का है और दूसरा विक्रम संवत् १४७० (ईस्वी १४१५) का। इन दोनों शिलालेखों में दी गई वंशावली से रायपुर के चार कलचुरि राजाओं के नाम ज्ञात होते हैं जैसे लक्ष्मीदेव,

सिंघण, रामचन्द्र, और ब्रह्मदेव। इन राजाओं में से प्रथम दो राजाओं के नाम रत्नपुर की वंशावली में भी मिलते हैं[10] जो वहां के राजा वाहर के पूर्वज थे। इससे जान पड़ता है कि राजा सिंघण के डंघीर और रामचन्द्र नामक दो बेटों में से डंघीर तो रत्नपुर के राजसिंहासन पर बैठा और रामचन्द्र ने रायपुर नगर बसाकर अपनी राजधानी वहां स्थापित की। ब्रह्मदेव के खलारी लेख से विदित होता है कि रामचन्द्र ने फणि (नाग) वंश के राजा भोणिंगदेव को जीता था। रामचन्द्र के समय में छत्तीसगढ़ में कवर्धा और बस्तर में अलग अलग दो नाग वंश राज्य करते थे किन्तु यह कहना कठिन है कि भोणिंगदेव इन दोनों वंशों में से किसमें हुआ था। उपर्युक्त लेख से यह भी विदित होता है कि ब्रह्मदेव की राजधानी खल्वाटिका (आधुनिक खलारी, रायपुर जिला) में थी जहां ईस्वी सन् १४१५ में देवपाल नामक मोची ने नारायण के मंदिर का निर्माण कराया था। ब्रह्मदेव के रायपुर के शिलालेख से विदित होता है कि उसके राज्यकाल में ईस्वी सन् १४०२ में रायपुर शुभस्थान में नायक हाजिराज ने हाटकेश्वर महादेव के मंदिर का निर्माण किया था। इसी लेख से ब्रह्मदेव के प्रधान ठाकुर (मंत्री) का नाम त्रिपुरारिदेव और पुरोहित का नाम महादेव जान पड़ता है। ब्रह्मदेव के बाद के राजाओं के उत्कीर्ण लेख नहीं मिलते। केवल अंतिम राजा अमरसिंहदेव का एक ताम्रपत्र लेख[11] आरंग में मिला है जिसमें नंदू ठाकुर को दी गई छूट का विवरण है। यह ताम्रपत्र विक्रम संवत् १७९२ में दिया गया था जिसके कुछ ही वर्षों बाद नागपुर के मराठों के हाथ अमरसिंह का पतन हुआ।

चक्रकोट के छिंदक नाग

ईस्वी सन् की ग्यारहवीं शती के प्रारंभ में बस्तर में नागवंशी राजाओं ने अपने राज्य की स्थापना की जो रतनपुर के कलचुरियों के प्रतिद्वन्द्वी थे। ये नागवंशी नरेश छिंदक कुल के थे और चक्रकोट के राजा कहलाते थे क्योंकि उस समय बस्तर क्षेत्र को चक्रकोट कहा जाता था जिसका बिगड़ा हुआ रूप आज का चित्रकूट है। छिंदक नाग भोगावतीपुरवरेश्वर की उपाधि धारण करते थे।

शक संवत् ९४५ (ईस्वी १०२३) के एक शिलालेख में[12] छिंदकों के प्रथम राजा नृपतिभूषण का उल्लेख मिलता है। उसके बाद धारावर्ष जगदेकभूषण ने राज्य किया जिसके समय का शक संवत् ९८३ (ईस्वी १०६०) का एक शिलालेख बारसूर में प्राप्त हुआ है। उस लेख से विदित होता है कि महाराज जगदेकभूषण के राज्यकाल में उसके महामण्डलेश्वर चन्द्रादित्य महाराज ने बारसूर में चन्द्रादित्यसमुद्र नामक तालाब खुदवाया था तथा उसके तट पर चन्द्रादित्येश्वर नामक शिव मंदिर का निर्माण कराया था जो उसने धारावर्ष से खरीदा था। चंद्रादित्य अम्मायाम का स्वामी था।[13]

धारावर्ष जगदेकभूषण के पश्चात् मधुरान्तकदेव राजा हुआ। यद्यपि वह नागवंश और छिंदक कुल का ही था किन्तु जगदेकभूषण से उसका क्या नाता था, यह विदित नहीं है। उसका

एक ताम्रपत्रलेख जगदलपुर से २३-२४ किलोमीटर दूर स्थित राजपुर ग्राम में प्राप्त हुआ था। वह लेख शक संवत ९८७ (ईस्वी १०६५) का है और उसमें भ्रमरकोट्य मंडल में स्थित राजपुर ग्राम के दान का उल्लेख है।[११३] यह भ्रमरकोट्य मंडल या तो चक्रकोट्यमंडल का दूसरा नाम हो सकता है अथवा उसी के अन्तर्गत एक विशिष्ट भूभाग। मधुरान्तकदेव भी अधिक समय तक राज्य नहीं कर सका और धारावर्ष जगदेकभूषण के बेटे प्रथम सोमेश्वर ने मधुरान्तक से अपना पैतृक राज्य प्राप्त किया। सोमेश्वर का सर्वप्रथम उल्लेख शक संवत् ९९१ (ईस्वी १०६९) के शिलालेख में मिलता है।[११४] इस सोमेश्वर का राज्यकाल लगभग तीस वर्ष का था क्योंकि उसके दो शिलालेख शक संवत १०१९ (ईस्वी १०९७) के मिले हैं। सोमेश्वर के कुरुसपाल शिलालेख से [११५] उसके बारे में महत्त्वपूर्ण सूचनाएं मिलती हैं तदनुसार उसका बेटा कन्हर था। उससे यह भी विदित होता है कि सोमेश्वर को चक्रकूट का राज्य विंध्यवासिनी देवी के प्रसाद से प्राप्त हुआ था और उसने मधुरान्तक का वध किया था। इसी लेख में सोमेश्वर की विजय यात्राओं का विवरण है। उसने वेंगी को जला डाला था, भद्रपट्टन और वज्र को जीत लिया था तथा दक्षिण कोसल के ६ लाख ९६ गांवों पर अपना अधिकार कर लिया था। इससे यह अनुमान लगाया जाता है कि सोमेश्वर ने कोसल देश के बहुत से भूभाग को प्राप्त कर लिया था। किन्तु कलचुरि राजा प्रथम जाजल्लदेव के ईस्वी सन् १११४ के एक शिलालेख [११६] से विदित होता है कि जाजल्ल ने युद्ध में सोमेश्वर को उसके मंत्रियों और रानियों समेत कैद कर बाद में उसकी माता के अनुरोध पर छोड़ दिया था।

सोमेश्वर और जाजल्ल का यह युद्ध ईस्वी सन् ११११ के पूर्व हुआ था क्योंकि सोमेश्वर की माता गुण्डमहादेवी के नारायनपाल शिलालेख से विदित होता है कि ईस्वी सन् ११११ में प्रथम सोमेश्वर का बेटा कन्हर राज्य कर रहा था।[११७]

बारसूर के शक संवत् ११३० (ईस्वी १२०८) के गंग महादेवी के एक शिलालेख में[११८] (जो अब नागपुर संग्रहालय के संग्रह में है) राजभूषण सोमेश्वर का उल्लेख है। गंग महादेवी उसकी रानी थी। इस सोमेश्वर को कुछ विद्वान् द्वितीय सोमेश्वर मानते हैं किन्तु कुछ विद्वानों का मत है कि गंग महादेवी के शिलालेख में पढ़ी हुई तिथि गलत है और वह शक संवत ११३० के स्थान पर १०३० होना चाहिये। ऐसी स्थिति में गंग महादेवी को प्रथम सोमेश्वर की रानी मानना पड़ेगा।

जतनपाल में प्राप्त शक संवत् ११४० (ईस्वी १२१८) के शिलालेख में [११९] तथा दन्तेवाड़ा के शक संवत् ११४७ (ईस्वी १२२४) के स्तंभलेख में [१२०] जगदेकभूषण महाराज नरसिंहदेव का उल्लेख है। उसी प्रकार भैरमगढ़ के एक तेलगु शिलालेख में महाराजा जगदेकभूषण को माणिक्यदेवी का भक्त बताया गया है।[१२१] संभव है कि यह माणिक्यदेवी दन्तेवाड़ा की दन्तेश्वरी देवी ही हो। जगदेकभूषण नरसिंह के समय से ही छिंदक वंश का क्रमबद्ध इतिहास नहीं मिलता। वैसे एक शिलालेख में जयसिंह नामक राजा का उल्लेख है। इसके पश्चात्

चौदहवीं शती ईस्वी (शक संवत् १२४६) के टेमरा शिलालेख में एक अन्य राजा हरिश्चन्द्र का नाम मिलता है जो चक्रकोट में राज्य करता था।[१११] यद्यपि उपर्युक्त लेख में हरिश्चन्द्र के वंश के नाम का उल्लेख नहीं किया गया है फिर भी अनुमान किया जाता है कि वह नागवंशी राजा था।

कवर्धा का नाग वंश

कवर्धा के नागवंशी राजा रत्नपुर के कलचुरि वंश का प्रभुत्व मानते थे। इन में से कुछ राजाओं के उत्कीर्ण लेखों में कलचुरि संवत् का प्रयोग किया गया है। कवर्धा के फणि (नाग) वंश का विवरण कवर्धा से लगभग १६ किलोमीटर दूर जंगल में स्थित मड़वा महल नामक मंदिर के निकट पड़े एक विशाल शिलालेख में मिलता है। यह शिलालेख विक्रम संवत् १४०६ (ईस्वी १३४९) में उत्कीर्ण किया गया था।[११२] इसमें तत्कालीन राजा रामचन्द्र द्वारा शिव मंदिर के निर्माण कराने का और उसे गांव लगा देने का उल्लेख है। इस राजा रामचन्द्र ने हैहय वंश की राजकुमारी अम्बिकादेवी से विवाह किया था जिससे उसके अर्जुन और हरिपाल नामक पुत्र हुये।

उपर्युक्त मड़वा महल शिलालेख में नागवंश की उत्पत्ति के बारे में बताया गया है कि अहिराज नागों का पहला राजा था। उसके बाद क्रमशः राजल्ल, धरणीधर, महिमदेव, सर्ववदन (शक्तिचन्द्र), गोपालदेव, नलदेव और भुवनपाल हुये। भुवनपाल के बाद उसका बेटा कीर्तिपाल राजसिंहासन पर बैठा पर उसके कोई सन्तान न होने के कारण उस के बाद उसका भाई जयत्र-पाल राजा हुआ। जयत्रपाल के बाद क्रमशः महीपाल, विषमपाल, जह्नु, जनपाल, यशोराज, कन्हडदेव और लक्ष्मीवर्मा ने राज्य किया। लक्ष्मीवर्मा के दो बेटे थे जिनमें से जेठा खड्गदेव राजसिंहासन पर बैठा और उसकी परंपरा में क्रमशः भुवनैकमल्ल, अर्जुन, भीम और भोज नामक नरेश हुये किन्तु भोज के बाद लक्ष्मीवर्मा के पुत्र चन्दन का प्रपौत्र लक्ष्मण राजा हुआ जिसका बेटा प्रशस्ति का नायक रामचन्द्र था। वह ईस्वी सन् १३४९ में राज्य करता था।

कांकेर का सोमवंश

कलचुरि राजा द्वितीय पृथ्वीदेव के समय के राजिम में प्राप्त हुये कलचुरि संवत् ८९६ के शिलालेख से विदित होता है कि उसके सेनापति जगपाल ने काकैर (वर्तमान कांकेर) का प्रदेश जीता था। तबसे कांकेर के राजा रत्नपुर के कलचुरि वंश का प्रभुत्व मानकर अपने लेखों में कलचुरि संवत् का प्रयोग करने लगे थे। कांकेर के सोमवंशी राजा पम्पराज के दो ताम्रपत्र लेख (कलचुरि संवत् ९६५ और ९६६) प्राप्त हुये हैं जिनमें उसे महामाण्डलीक कहा गया है।[११३] इनमें से एक ताम्रपत्र लेख में पम्पराज के पिता सोमराज और सोमराज के पिता वोपदेव का नामोल्लेख है। उसी प्रकार पम्पराज की रानी लक्ष्मीदेवी, राजकुमार वोपदेव, प्रधान (मंत्री) वासु तथा अन्य पदाधिकारियों का भी उसी लेख में उल्लेख है।

इसी वंश के राजा भानुदेव के राज्यकाल में शक संवत् १२४२ (ईस्वी १३२०) में उत्कीर्ण किया गया एक अन्य लेख कांकेर में प्राप्त हुआ है जो अब रायपुर संग्रहालय के संग्रह में है।[२९] इस लेख में भानुदेव से पहले की छह पीढ़ियों के राजाओं का वर्णन है। तदनुसार सबसे पहले सिंहराज हुआ, उसका बेटा व्याघ्र, उसका बेटा वोपदेव, वोपदेव का कृष्ण, कृष्ण का बेटा जैतराज और जैतराज का बेटा सोमचन्द्र था जो भानुदेव का पिता था। ऊपर बताया जा चुका है कि राजा पम्पराज सोमराज का पुत्र और वोपदेव का पौत्र था। इससे विदित होता है कि वोपदेव के समय में कांकेर के राज्य की दो शाखाएं हो गई थीं जिनमें से एक में पंपराज हुआ, किन्तु उसके बाद के राजाओं के बारे में कुछ भी सूचना नहीं मिलती। दूसरी शाखा में चार-पांच पीढ़ियों बाद भानुदेव हुआ। इस भानुदेव के समय में उसके मंत्री नायक वासुदेव ने तीन मंदिर, ोली के साथ पुरतोभद्र और दो तालाबों का निर्माण कराया था।

प्रशासन

इस संग्रहालय के संग्रह में ईस्वी सन् की दूसरी शताब्दी से लेकर ईस्वी पंद्रहवीं शताब्दी तक के उत्कीर्ण लेख संगृहीत हैं जिनके विवरण मूलपाठ और हिन्दी अनुवाद के साथ आगे दिये गये हैं। इन लेखों में तत्कालीन प्रशासन-तंत्र, धर्म, सामाजिक और आर्थिक जीवन तथा साहित्यिक प्रवृत्तियों के विषय में छुटपुट सूचनाएं मिलती हैं। उनके आधार पर छत्तीसगढ़ की प्राचीन संस्कृति और सभ्यता के संबंध में जानकारी होती है। किन्तु जैसा कि ऊपर बताया गया है, ये उत्कीर्ण लेख विभिन्न कालों के होने के कारण उन कालों की समाजव्यवस्था और प्रशासन-तंत्र आदि में परस्पर भिन्नता मिलना स्वाभाविक है।

गुप्तोत्तर कालीन राजवंशों—यथा नल, शरभपुरीय और पाण्डु वंश—के लेखों से विदित होता है कि उनके शासन काल में राज्य के कई विभाग होते थे जिन्हें राष्ट्र कहा जाता था। उदाहरण के लिये जयराज, सुदेवराज और व्याघ्रराज नामक शरभपुरीय राजाओं के ताम्रपत्र-लेखों में पूर्वराष्ट्र और मेकल के पाण्डु वंशी राजा के बम्हनी ताम्रपत्रलेख में उत्तरराष्ट्र का उल्लेख है। इन विभागों को यदि आजकल की कमिश्नरी कहा जाय तो ठीक ही होगा। प्रत्येक राष्ट्र या कमिश्नरी कई 'विषयों' में विभाजित था जो आजकल के जिले के समान होते थे। महाशिवगुप्त बालार्जुन के बारदुला ताम्रपत्रलेख में कोशीर नन्दपुर विषय का और भरतबल के बम्हनी ताम्रपत्रलेख में उत्तरराष्ट्र में स्थित पञ्चगर्त विषय का उल्लेख मिलता है। 'विषय' से छोटे 'आहार,' 'भोग' और 'भुक्ति' होते थे किन्तु इनका परस्पर संबंध क्या था यह स्पष्ट नहीं है। शरभपुरीय राजा नरेन्द्र के कुरुद से प्राप्त दानपत्र में चुल्लाडसीमा भोग का, उसी प्रकार सुदेवराज के खरियार में मिले ताम्रपत्रलेख में क्षितिमण्ड नामक आहार का और आरंग में मिले ताम्रपत्रलेख में तोसड्ड भुक्ति का उल्लेख है। 'विषय' से छोटा किन्तु 'भुक्ति' से बड़ा 'मार्ग' होता था। तीवरदेव के बलोदा ताम्रपत्रलेख से विदित होता है कि उसने सुंदरिका मार्ग में स्थित

ग्रामों का दान किया था। 'भोग' और 'भुक्ति' में नगर-उपनगर तथा बहुत से ग्राम हुआ करते थे किन्तु यह पता नहीं चलता कि उनकी ठीक संख्या क्या होती थी। संभवत: आधुनिक प्रशासन व्यवस्था के ही समान उस काल में भी यह आवश्यक न रहा होगा कि भुक्ति या भोग में स्थित ग्रामों की कोई निश्चित संख्या हो। विषय के अधिकारी को विषयपति और कभी कभी राजा भी कहा जाता था। महाशिवगुप्त बालार्जुन के समय के सेनकपाट के शिलालेख में बताया गया है कि ब्राह्मण शिवरक्षित नन्दासी नामक विषय का राजा था[155] और वह वरदा नदी (वर्तमान वर्धा) तक राज्य करता था। भोग के अधिकारी को भोगपति कहा जाता था इसकी सूचना शरभपुरीय महाराज नरेन्द्र के पिपरदुला ताम्रपत्रलेख में मिलती है जिसमें बताया गया है कि राहुदेव नामक भोगपति ने[156] नन्दपुर भोग में स्थित शर्करापद्र नामक ग्राम का दान किया था और उसकी प्रार्थना पर महाराज नरेन्द्र ने उस दान का अनुमोदन किया था। इससे यह भी विदित होता है भोगपति या विषयपति जब भी किसी ग्राम का दान करते थे, उन्हें महाराजा से उसका अनुमोदन कराना होता था।

कलचुरि काल में देश या जनपद को कई मण्डलों में बांट दिया गया था। उत्कीर्ण लेखों में उल्लेख मिलता है कि त्रिपुरी के कलचुरि राजा कोकल्ल के अठारह बेटों में से जेठा तो त्रिपुरीश हुआ और उसने अपने छोटे भाइयों को निकटवर्ती मण्डलों का मण्डलपति बनाया। उसी प्रकार छत्तीसगढ़ के लेखों में भी कोमोमण्डल, अपरमंडल, मध्यमंडल, तलहारिमंडल आदि का उल्लेख मिलता है। मण्डल का अधिपति माण्डलीक अथवा मण्डलेश्वर कहलाता था। नीतिशास्त्र के ग्रन्थों में बताया गया है कि माण्डलीक राजा के राज्य में पचास हजार ग्राम होते थे किन्तु सोमवंशी राजा द्वितीय महाभवगुप्त के माण्डलिक राणक पुञ्ज के लेख से विदित होता है कि वह केवल पंद्रह ग्रामों का अधिपति था।[157] माण्डलिक से बड़ा महामण्डलेश्वर होता था जो एक लाख ग्रामों का अधिपति होता था। महामण्डलेश्वर सामन्त राजा हुआ करते थे। प्रथम पृथ्वीदेव के अमोदा में प्राप्त हुये ताम्रपत्रलेख से विदित होता है कि उसकी स्थिति महामण्डलेश्वर की थी (और वह त्रिपुरी की कलचुरि शाखा के सामन्त के रूप में दक्षिण कोसल या छत्तीसगढ़ में राज्य करता था)। समूचे कोसल प्रदेश में कुल कितने गांव थे इस विषय में निश्चय पूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सकता किन्तु बस्तर के नागवंशी सोमेश्वर के एक शिलालेख में बताया गया है कि उसने दक्षिण कोसल के छह लाख छयानवे गांव जीत लिये थे। इस कथन में अतिशयोक्ति भले ही हो किन्तु यह सत्य है कि छत्तीसगढ़ के कलचुरियों का राज्य भारत के तत्कालीन प्रमुख राज्यों में गिना जाता था।

संग्रहालय के संग्रह के लेखों से विदित होता है कि ईस्वी सन् की प्रथम शताब्दी से लेकर पंद्रहवी शताब्दी तक (और उसके बाद भी) छत्तीसगढ़ में राजतंत्रीय शासन पद्धति चल रही थी। तदनुसार राजा प्रशासन – तंत्र का प्रमुख होता था और उसका अधिकार सर्वोपरि होता था। किन्तु उसे भी नियमों और कानूनों का पालन करते हुये लोककल्याण के कार्य करने

पड़ते थे। अत्याचारी और अन्यायी राजा को न तो प्रजा का ही और न ही शासकीय अधिकारियों का समर्थन प्राप्त हो सकता था। जिस राजा में स्मृतिसम्मत गुणों का सद्भाव नहीं होता था या जो दुर्गुणी होता था उसे सिंहासन से उतार कर उसके वंश के अन्य योग्य व्यक्ति को राजा बना दिया जाता था। राजा शासन-प्रबंध चलाने के लिये मंत्रियों तथा अन्य अधिकारियों की नियुक्ति करता था, उनका एक स्थान से दूसरे स्थान स्थानान्तरण कर सकता था और कर्तव्यविमुख होने पर दण्ड भी दे सकता था। किरारी के काष्ठ स्तंभलेख में नगररक्षी, सेनापति, प्रतिहार, गणक, गृहपति, भाण्डागारिक, हस्त्यारोह, अश्वारोह, पादमूलिक, रथिक, महानसिक, हस्तिपक, धावक, सौगंधक, गोमाण्डलिक, यानशालाध्यागारिक, पलवीथिदपालक, लेखहारक, कुलपुत्रक और महासेनानी नामक पदाधिकारियों का उल्लेख मिलता है। शरभपुरीय और पाण्डुवंशी राजाओं के उत्कीर्ण लेखों में भी अनेक उच्च पदाधिकारियों के नाम मिलते हैं। सुदेवराज के एक ताम्रपत्रलेख से पता चलता है कि महासामन्त इन्द्रबलराज ने उनके एक दान के समय दूतक का कार्य किया था।[111] सुदेवराज के ही खरियार में मिले ताम्रपत्रलेख में प्रतिहार भोगिल्ल का उल्लेख है।[112] महाशिवगुप्त बालार्जुन के मल्लार ताम्रपत्रलेख में समाहर्ता, सन्निधाता और सकरण (करणिक) नामक अधिकारियों को आदेश दिया गया है।[113] उसी प्रकार सोमवंशी महाभवगुप्त के एक ताम्रपत्रलेख में उनके महासान्धिविग्रहिक राणक श्री मल्लादत्त और दूतक महामहत्तमभट्ट श्री साधारण का नामोल्लेख है।[114] मेकल के राजा भरतबल के लेख में ग्रामकूट, द्रोणाग्रनायक, देववारिक या दौवारिक (पूर्वोक्त प्रतिहार) गण्डक, रज्जुक और राहसिक नामक राजकर्मचारियों के विषय में सूचना है[115]। प्रायः सभी ताम्रपत्रलेखों में चाट, भट, पिशुन, वेत्रिक आदि स्थानीय तथा बाहर से दौरे पर आनेवाले राजकर्मचारियों का उल्लेख मिला करता है। उत्कीर्ण लेखों से ही पता चलता है कि युद्ध करने वाली सेना के अध्यक्ष को सेनापति और आरक्षी विभाग के मुख्य कर्मचारी को दण्डनायक कहा जाता था। उनके नीचे क्रमशः भट और चाट नामक कर्मचारियों का दल रहता था। ये भट सैनिक होते थे और चाट आरक्षी विभाग के नीचे ओहदे के कर्मचारी। राज्य में व्यवस्था करने के हेतु जब चाट और भट किसी गांव के दौरे पर जाते थे तो उस गांव को इनका खर्च उठाना पड़ता था। इसलिये राजा जब कभी किसी गांव का दान करता था तो वहां चाटों और भटों का प्रवेश निषिद्ध कर देता था। ग्राम-दान करने का अधिकार केवल राजा को होता था किन्तु उसके सामन्त, पट्टरानी, युवराज तथा अन्य विशिष्ट पदाधिकारी भी गांवों का दान किया करते थे। वैसा करते समय उन्हें राजा का अनुमोदन प्राप्त कर लेना आवश्यक था। जिस ग्राम का दान किया जाता था उस ग्राम की निर्दिष्ट आय का लाभ दान ग्रहण करने वाले को होता था। जब कोई ग्राम अनेक व्यक्तियों को दान किया जाता था तो उसका कितना हिस्सा किसे मिलेगा इस बात का उल्लेख दानपत्र में कर दिया जाता था। उसी प्रकार इस बात का भी उल्लेख दानपत्रों में कर दिया जाता था कि ग्रामदान प्राप्त करने वाले ब्राह्मण को उसके बदले में कोई वार्षिक कर या उपरिकर (अतिरिक्त कर) देना होगा अथवा नहीं। दानपत्रों में इस बात का भी उल्लेख मिलता है कि भूमि ग्रहण

करने वाले को उस भूमि के अन्तर्गत जलाशय, स्थलप्रदेश, खोह और ऊसर जमीन, आम, महुये, वट तथा अन्य फल वाले वृक्षों तथा जंगलों से होने वाली आय को प्राप्त करने के अधिकार होते थे। उसी प्रकार वहां की सभी निधियां और उपनिधियां भी भूमि प्राप्त करने वाले की सम्पत्ति मानी जाती थी। कई उत्कीर्ण लेखों में यह भी बताया गया है कि गांव को दान में प्राप्त करने वाले व्यक्ति को वहां हुये दस अपराधों तक के आर्थिक दण्ड को प्राप्त करने का अधिकार था। इससे अधिक आय राजा के खजाने में जाती थी। दान में गांव प्राप्त करने वाले की मुख्य आय धान्य और हिरण्य के रूप में होती थी। अन्न की कुल पैदावार में से अन्न का जो अंश कर में दिया था उसे धान्य कहते थे। किन्तु कुछ अन्नों पर नगद कर देना पड़ता था वह हिरण्य कहलाता था। कौटिल्य से लेकर पश्चात्काल तक के सभी नीतिकारों ने राज्य के सात अंग या प्रकृतियां मानी हैं जो राज्य के लिये उसी प्रकार आवश्यक हैं जैसे मानव शरीर के लिये मस्तक, नेत्र, कर्ण, मुख, मन, हाथ, और पैर नामक अवयव। ऐसा जान पड़ता है कि कलचुरि कालीन छत्तीसगढ़ का राज्य भी राजतंत्र के सप्तांग सिद्धान्त पर आधारित था। स्वामी, अमात्य, पुर, राष्ट्र, कोश, दण्ड, और सुहृत्, इन सात प्रकृतियों वाले राज्य को मनु ने सप्तांग राज्य कहा है।[17] सप्तांग राज्य में राजा पर्जन्य के समान लोक का आधार होता है। वह धर्म के अनुसार प्रजा का पालन करता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि दक्षिण कोसल के कलचुरि नरेश धर्मपरायण थे और प्रजा के हितकार्यों में लगे रहते थे। राजकाज में अपनी सहायता करने के लिये वे सुयोग्य और गुणी मंत्रियों की नियुक्ति करते थे। राजिम और खरोद के शिलालेखों में देवराज तथा गंगाधर नाम के मंत्रियों की योग्यता का गुणगान किया गया है। गंगाधर की ही योग्यता थी कि उसने तीसरे रत्नदेव के समय में अशान्त और अव्यवस्थित राज्य को सुदृढ़ और निष्कंटक बना दिया था। सप्तांग राज्य की तीसरी प्रकृति राष्ट्र है जिसका गुण है कि राष्ट्र को अन्न, जल, वन, पशु, द्रव्य, मनुष्य और रक्षा के साधनों से संपन्न होना चाहिये। कलचुरि कालीन कोसल सभी प्रकार से सम्पन्न था और भारत के प्रमुख राज्यों में उसकी गिनती होती थी। शासन व्यवस्था को चलाने के लिये सम्पूर्ण राज्य को विभिन्न मण्डलों में बांट दिया गया था जिनमें से कोमोमंडल, ययपुर मंडल, मध्यमंडल, तलहारिमंडल, एवडिमंडल, सागत्तमंडल आदि का उल्लेख उत्कीर्ण लेखों में मिलता है। इसके अलावा कलचुरियों के करद सामन्तों की संख्या भी दिनों दिन बढ़ती जाती थी जिससे उन्हें सम्पत्ति प्राप्त होती थी। राष्ट्र के बाद पुर को राज्य का महत्त्वपूर्ण अंग गिना जाता है क्योंकि जब तक पुर में अच्छे दुर्गों का निर्माण न हो, शत्रुओं से राज्य की रक्षा नहीं की जा सकती। कलचुरि कालीन दक्षिण कोसल में तुम्माण, रत्नपुर, जाजल्लपुर, विकर्णपुर, मल्लालपत्तन, तेजल्लपुर आदि अनेक नगरों का निर्माण किया गया था जो अधिकतर नगर–दुर्ग थे। पंद्रहवीं शती के राजा वाहरेन्द्र के शिलालेख से विदित होता है कि आवश्यकता पड़ने पर उसने अपनी राजधानी रत्नपुर से उठाकर कोसंगा के किले में स्थापित की थी और वहां धनधान्य का बड़ा संग्रह किया था।[18] कोश भी राज्य का महत्त्वपूर्ण अंग है क्योंकि उसके बिना न तो राज्य की आंतरिक सुरक्षा की ही व्यवस्था की जा सकती है

और न बाहरी शत्रुओं से ही बचाव हो सकता है। अतएव कलचुरि नरेश अपना राजकोश निरंतर बढ़ाते रहने के लिये प्रयत्नशील थे। आंतरिक आय के अतिरिक्त शत्रु राज्यों की लूट आदि से भी बहुत सी आय हो जाती थी। शुक्रनीति में बताया गया है कि राज्य-कोश का आधा भाग सेना पर व्यय किया जाना चाहिये तथा सम्पूर्ण कोष का छठवां भाग आपत्तिकाल के लिये सुरक्षित रखकर शेष भाग दान, जनहित, प्रशासन-व्यय तथा राजपरिवार के कार्यों में समान रूप से खर्च करना चाहिये। कोश और सेना के समान मित्रराज्य भी सुयोग्य शासन के लिये अत्यन्त आवश्यक होते हैं जो राज्य पर आक्रमण होने की स्थिति में सहायता करते हैं। छत्तीसगढ़ के कलचुरियों के मुख्य शत्रु बस्तर के नागवंशी और उत्कल के गंग वंशी नरेश थे। इसके विपरीत चेदि, कान्यकुब्ज और जेजाकभुक्ति के नरेश उनके मित्र थे। पश्चात्काल में चेदि के कलचुरियों और कोसल के कलचुरियों के बीच वैरभाव उत्पन्न हो गया था किन्तु उसका कारण प्रतिद्वन्द्विता मात्र था।

धार्मिक स्थिति

प्रस्तुत संग्रह में संकलित उत्कीर्ण लेखों में तत्कालीन धार्मिक स्थिति के संबंध में भी बहुत सी सूचनाएं मिलती हैं। भवदेव रणकेसरी के शिलालेख से विदित होता है कि भांदक में पाण्डुवंशियों के पहुंचने से पूर्व सूर्यघोष नामक एक राजा रहता था जिसने अपने प्रिय पुत्र की स्मृति में शाक्य मुनि बुद्ध के एक मंदिर का निर्माण कराया था [illegible]। उस मंदिर का जीर्णोद्धार भव-देव रणकेसरी ने कराया था। महाशिवगुप्त बालार्जुन के मल्लार में प्राप्त हुये ताम्रपत्रलेख में बौद्ध संघ को कैलासपुर नामक एक गांव दान में देने का उल्लेख है [illegible]। इतना ही नहीं इस शिवगुप्त के समय में उसकी राजधानी श्रीपुर में अनेक बौद्ध विहारों का निर्माण हुआ था जिनके अवशेष आज भी वहां विद्यमान हैं। बौद्ध मंदिरों और विहारों तथैव तत्कालीन बौद्ध भिक्षुओं का उल्लेख करने वाले शिलालेख भी सिरपुर में प्राप्त हुये हैं। मल्लार में भी पाण्डव कालीन बौद्ध मूर्तियां मिलती हैं। यद्यपि पूर्वमध्यकाल के किसी भी उत्कीर्णलेख में जैन केन्द्रों के संबंध में कोई सूचना नहीं मिलती किन्तु मल्लार और सिरपुर जैसे तत्कालीन केन्द्रों में जैन प्रतिमाओं की प्राप्ति से सिद्ध होता है कि वह धर्म भी तत्काल में प्रचलित था।

शरभपुरीय नरेश परम भागवत थे। उनकी राजमुद्रा पर गजलक्ष्मी की प्रतिमा मिलती है। पाण्डुवंश के तीवरदेव, उसका बेटा नन्न और शिवगुप्त का पिता हर्षगुप्त, सभी वैष्णव धर्म को मानते थे। कोसलाधिपति तीवरदेव की राजमुद्रा पर गरुड का चिह्न अंकित है। हर्षगुप्त की रानी और बालार्जुन की माता वासटादेवी ने राजधानी श्रीपुर में विष्णु मंदिर का निर्माण कराया था जो आज भी विद्यमान है। इस मंदिर की परिरक्षा और सत्र आदि के प्रबंध के लिये उन्होंने पांच गांवों का दान किया था। महाशिवगुप्त बालार्जुन ने पूर्वजों के परम्परागत वैष्णव धर्म को छोड़कर शैव मत को ग्रहण किया था। उसकी राजमुद्रा पर नन्दी की प्रतिमा मिलती है किन्तु स्वयं शैव होते हुये भी वह बौद्ध तथा वैष्णव धर्मों का आदर करता था और उन्हें

आश्रय देता था। बालार्जुन के समय के सेनकपाट के शिलालेख में शिवमंदिर के निर्माण का उल्लेख है।[१८] यह शिलालेख भव और पार्वती की स्तुति से प्रारंभ होता है। उसमें आमर्दक से आये सद्य:शिवाचार्य की परंपरा के सदाशिव नामक शैव आचार्य का उल्लेख है।

कलचुरि कालीन दक्षिण कोसल में भी धर्म के विषय में पूर्ववत् विविधता रही और बौद्ध, जैन, वैष्णव तथा शैव, सभी धर्म स्वतंत्रतापूर्वक विकसित होते रहे। कलचुरियों के उत्कीर्ण लेखों में तुम्माण के वंकेश्वर मंदिर का उल्लेख मिलता है। इस मंदिर की चतुष्किका का निर्माण प्रथम पृथ्वीदेव ने कराया था। रत्नपुर में भी अनेक मंदिरों का निर्माण होने की सूचना उत्कीर्ण लेखों में मिलती है। जाजल्लदेव ने जाजल्पुर में शिवमंदिर का निर्माण कर पाली के मंदिर का जीर्णोद्धार कराया था। उसी प्रकार मल्लाल, सोण्ठिवपुर, बरेलापुर, नारायणपुर, कुमराकोट, शिवरीनारायण आदि स्थानों में विभिन्न मंदिरों और मठों के निर्मित होने की सूचना शिलालेखों में मिलती है। जांजगीर का कलचुरि कालीन वैष्णव मंदिर अधूरा होते हुये भी तत्कालीन स्थापत्य कला का अद्‌भुत नमूना है। राजिम के वैष्णव मंदिर का जीर्णोद्धार जगपाल नामक सेनापति ने कराया था। रायपुर शाखा के नरेश ब्रह्मदेव के समय में खल्वाटिका में मोची देवपाल द्वारा एक विष्णु मंदिर निर्मित हुआ था। इस प्रकार कलचुरि नरेशों के स्वयं शैव होते हुये भी वैष्णव धर्म को भी प्रोत्साहन मिलता रहता था। शिव और विष्णु के अलावा रेवन्त, गणपति और पार्वती के मंदिरों के निर्माण का भी उल्लेख लेखों में मिलता है। रत्नपुर मल्लार, आरंग और सिरपुर में मिले बौद्ध और जैन अवशेष बताते हैं कि कलचुरि काल में इन धर्मों का भी खासा प्रचार था।

समाज व्यवस्था

प्राचीन दक्षिण कोसलीय समाज में वर्णव्यवस्था को स्थान प्राप्त हो चुका था किन्तु वह इतनी कट्टर नहीं थी। राजपद प्राप्त करने के लिये यह आवश्यक नहीं था कि उस वंश को क्षत्रिय ही होना चाहिये क्योंकि लेखों से पता चलता है कि ब्राह्मण और वैश्य लोग भी महाराजा या राजा थे। कलचुरियों का एक सामन्त वल्लभराज वैश्य था, उसी प्रकार शरभपुरीयों के समकालीन विदर्भ का वाकाटक राजवंश ब्राह्मण था और सोमवंशी नरेश क्षत्रिय थे। वैवाहिक संबंध प्राय: अपनी जाति में ही होते थे किन्तु अनुलोम विवाह को बुरा नहीं माना जाता था। वाकाटकों के लेखों से विदित होता है कि उन्होंने ब्राह्मण होकर भी गुप्त वंश में वैवाहिक संबंध स्थापित किया था। त्रिपुरी के कलचुरि राजा कर्ण की रानी आवल्लदेवी हूण वंश की थी[१९]। उसे महारानी का पद प्राप्त था।

तत्कालीन भारतीय समाज में ब्राह्मणों को सम्मान का पद प्राप्त था। राजा भी उनका सम्मान करता था। ताम्रपत्रलेखों में गांव का दान देते समय उस गांव के निवासियों को सूचना भेजते समय राजा ब्राह्मणों को प्रणाम कर अपना आदेश सुनाता था। ब्राह्मणों का इतना

आदर होने का मुख्य कारण था उनका धर्ममय आचरण और ज्ञान। ताम्रपत्रलेखों से विदित होता है कि दान केवल उन्हीं ब्राह्मणों को दिया जाता था जो सुविशुद्धकुलश्रुत होते थे अर्थात् जो कुल और ज्ञान में श्रेष्ठ होते थे। महारानी वासटा के लेख में बताया गया है कि उनके द्वारा ब्राह्मणों को दिया गया दान उन ब्राह्मणों के पुत्र पौत्रादिकों को केवल उसी हालत में प्राप्त होता जब कि वे छह अंग युक्त तथा अग्निहोत्री रहते। इसके विपरीत उनके दुराचारी होने पर उस दान पर उनका अधिकार नहीं रहता।

उत्कीर्ण लेखों से विदित होता है कि प्राचीन काल में वेदों के अनुसार ही ब्राह्मणों के भेद थे न कि उनकी विभिन्न जातियां बन गई थीं। महारानी वासटा के शिलालेख में ऋग्वेदी, यजुर्वेदी और सामवेदी ब्राह्मणों का उल्लेख है। अथर्ववेदी ब्राह्मणों का उल्लेख बहुत ही कम मिलता है जिससे उनकी संख्या कम होने का अनुमान किया जाता है। वेदों के बाद शाखा और गोत्र के अनुसार ब्राह्मणों में भेद किया जाता था। शरभपुरीय प्रवरराज का मल्लार ताम्रपत्र-लेख ऋग्वेदी ब्राह्मण शुभचन्द्रस्वामी को दिया गया था। उसी प्रकार तैत्तिरीय शाखा, वाजसनेय शाखा और माध्यंदिनशाखा के ब्राह्मणों का भी दक्षिण कोसलीय उत्कीर्ण लेखों में उल्लेख मिलता है। कण्व शाखा का उल्लेख मोढ़ के सोमवंशी भवगुप्त के लेख में मिलता है। ब्राह्मणों के नामों के आगे भट्ट और पीछे स्वामी पद का प्रयोग किया जाता था। त्रिपाठी जैसे उपनाम पश्चात्काल में प्रयोग में आये थे।[15]

उत्कीर्ण लेखों से यह भी ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में ब्राह्मण केवल वेदाध्ययन या पुरोहित का ही काम नहीं करते थे किन्तु अनेक उच्च पदों पर भी नियुक्त होते थे। कलचुरि काल के पुरुषोत्तम और गंगाधर जैसे सुयोग्य मंत्री ब्राह्मण थे।

क्षत्रियों को भी समाज में आदर का स्थान प्राप्त था। अधिकतर राजवंश क्षत्रिय होते थे। इसके अलावा क्षत्रियों को प्रशासन के उच्च ओहदों पर नियुक्त किया जाता था।

वैश्य जाति के लोग व्यापार करते हुये भी प्रशासन पर प्रभाव रखते थे। वल्लभराज नामक सामन्त जन्मना वैश्य था। उसी प्रकार रत्नपुर नगर के प्रधान के पद पर श्रेष्ठी यश अधिष्ठित था।

वैश्यों के बाद कायस्थ जाति प्रभावशील थी। कायस्थ लोग विद्वान् और अनेक शास्त्रों के ज्ञाता होते थे। उनके वंश का दूसरा नाम वास्तव्य (वर्त्तमान श्रीवास्तव) भी मिलता है। छत्तीसगढ़ के कलचुरियों की अनेक प्रशस्तियों के लेखक कायस्थ विद्वान् थे। इसके बाद सूत्रधार नामक जाति का उल्लेख मिलता है जो शिल्पकला में प्रवीण होती थी। मोची या चमार जाति का उल्लेख खलारी के लेख में हुआ है।

आर्थिक स्थिति

प्राचीन काल में दक्षिण कोसल की स्थिति अच्छी थी। विभिन्न उत्कीर्ण लेखों में प्रजा

के सुखी होने के विषय में उल्लेख मिलते हैं। उसी प्रकार सिरपुर, रत्नपुर, मल्लार तथा अन्य स्थानों में प्राप्त प्राचीन इमारतों के खंडहर भी इस बात के प्रमाण हैं कि तत्कालीन छत्तीसगढ़ में प्रजा और राजा के पास इतना धन था कि विभिन्न निर्माण कार्य होते रहते थे। इसका मुख्य कारण यह था कि उस समय के जीवन में आवश्यकताएं कम थीं और जिन वस्तुओं की आवश्यकता होती थी जैसे धान्य-वस्त्र आदि, उन्हें लोग स्वयं पैदा कर लेते थे।

समस्त राज्य विभिन्न विषयों या मण्डलों में विभक्त था। राज्य की अधिकांश जनसंख्या का निवास गांवों में था किन्तु नगरों की कमी नहीं थी। नये नये नगरों का निर्माण होता ही रहता था। शरभपुरीय राजाओं ने श्रीपुर नामक नगर बसाकर उसे अपनी राजधानी बनाया था। उसी प्रकार सोमवंशी राजाओं के समय में सुवर्णपुर, विनीतपुर और ययातिपुर नामक नगरों का निर्माण हुआ। कलचुरि काल में रत्नपुर, जाजल्लपुर और रायपुर जैसे नगरों का नये सिरे से निर्माण हुआ था, इसकी सूचना उत्कीर्ण लेखों में मिलती है। इन नगरों में अनेक देवालय बने और बहुत से सरोवर खुदवाये गये तथा बाग बगीचे लगाये गये थे। वे इतने सम्पन्न थे कि उनकी तुलना कुबेर की नगरी अलका से की जाती थी। गांव भी सभी प्रकार से सम्पन्न थ क्योंकि शरभपुरीय राजाओं के लेखों में जिन ग्रामों के दान का उल्लेख हैं उन गांवों को त्रिदशपतिसदनसुखप्रतिष्ठाकर अर्थात् स्वर्ग का सुख देने वाला कहा गया है।

राजा की आय का मुख्यसाधन भूमिकर होता था। किन्तु अन्य करों से भी आमदनी होती थी। शरभपुरीय राजा प्रसन्नमात्र के सोने के सिक्के और उसी प्रकार महेन्द्रादित्य नामक राजा और नलवंशी नरेशों के सोने के सिक्कों से जान पड़ता है कि उनके राज्यकाल में कोसल देश पर्याप्त समृद्ध था। रत्नपुर के कलचुरि राजाओं ने भी सोने के सिक्के चलाये थे।

साहित्य

प्रशस्तियों और ताम्रशासनों से विदित होता है कि छत्तीसगढ़ में अनेक स्वनामधन्य कवि हो चुके हैं। बहुत से उत्कीर्ण लेखों में रचयिता कवि का नाम नहीं मिलता किन्तु उनकी रचना से अनुमान लगाया जा सकता है कि वे कितने कुशल थे। भवदेव की भांदक प्रशस्ति का रचयिता कवि भास्करभट्ट था जैसा कि प्रशस्ति के निम्न लिखित श्लोक से जान पड़ता है –

सद्वर्णजातिसुभगा विद्वन्मधुकरप्रिया ।
कृता भास्करभट्टेन प्रशस्तिः स्रगिवोज्ज्वला ।।

जैसा कि उपर्युक्त श्लोक में कहा गया है भास्करभट्ट ने इस प्रशस्ति के रचने में सद्-वर्ण और जातियों का प्रयोग किया है। मंगलाचरण में बुद्ध की स्तुति करते हुये कवि कहता है :-

अनुत्तरज्ञानचापयुक्तमैत्रीशिलामुखः ।
जयत्यजय्याज्ञानीकजयी जिनधनुर्द्धरः ।।

भवदेव रणकेसरी के गुणों का वर्णन करते हुये वह कहता है —

सद्वृत्तोपि धृतायति : गुरुरपि प्रारब्धशिक्षोद्यमो
दोषोन्मूलनतत्पर: प्रतिदिनं पूर्ण्णः कलावानपि ।
दृष्ट: काञ्चनपुञ्जपिञ्जरतनुर्वो रक्तवर्ण्णोपि सन्
निर्दग्धद्विषदिन्धनोपि नितरां दीप्तो नृणां भूतये ।।

पाण्डुवंशियों के समय के अन्य कवियों में चितातुरांक उपाधि युक्त ईशान कवि और तारदत्त के बेटे सुमंगल कवि की रचनाएं अनोखी काव्य कृतियां हैं। महारानी वासटा की प्रशस्ति की रचना ईशान कवि ने की थी। उसकी काव्यरचना के नमूने देखिये। बालार्जुन की माता महारानी वासटा का वर्णन करते हुये कवि कहता है —

तस्योरुजन्यजयिनी जननी जनानामीशस्य शैलतनयेव मयूरकेतोः ।
विस्मापनी विबुधलोकधियां बभूव श्रीवासटेति नरसिंहतनो: सटेव ।।

वासटा द्वारा निर्मित मंदिर का वर्णन कवि के शब्दों में सुनिये —

दिव्यादे : सकलस्य जन्तुनिवहस्योच्चावचैः कर्मणा
वैचित्र्यादयमङ्कितो बहुविधावस्थैर्वपुः पञ्जरैः ।
यः प्रासादबृहच्छलेन कथितः संसार एव स्फुटं
पश्यन्तस्तदिमं मनः कुरुत भो पापेषु मा भूमिपाः ।।
क्षणमथः क्षणमुत्पतितैर्नभः पवनलोलतया ध्वजपल्लवैः ।
हरणपालनयोरुचितां गती कथयति स्वयमेष महीभुजाम् ।।

दक्षिण कोसल के कलचुरि कालीन कवियों में से नारायण, अल्हण, कीर्तिधर, वत्सराज, धर्मराज, मामे, सुरगण, रत्नसिंह, कुमारपाल, त्रिभुवनपाल, देवपाणि, नृसिंह और दामोदरमिश्र जैसे कवियों के नाम उत्कीर्ण लेखों में निर्दिष्ट हैं। इन कवियों में से बहुतेक ने कलचुरि राजाओं की विभिन्न प्रशस्तियों की रचना कर के यश कमाया है। पुजारीपाली के गोपालदेव के शिलालेख में बताया गया है कि नारायण कवि ने रामाभ्युदय नामक काव्य ग्रंथ की रचना की थी किन्तु यह काव्य अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है। प्राकृत के कवियों को भी कलचुरियों की सभा में आश्रय प्राप्त था। रत्नपुर स्थित एकवीरा देवी के मंदिर में लगा हुआ शिलालेख प्राकृत भाषा में है।

कलचुरियों की शक्ति क्षीण होने के साथ ही योग्य आश्रय के अभाव में उत्तम कवियों का क्रमशः अभाव होता गया।

१ का० इं० इं०, जिल्द एक, पृष्ठ ११६ इत्यादि।
२ इं० ए०, जिल्द चौबीस, पृष्ठ १६७ इत्यादि।
३ न्यू० नो० मो०, क्रमांक ५ पृष्ठ १।

४ पूर्वोक्त ।
५ पूर्वोक्त ।
६ बालाघाट डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, पृष्ठ ६९; न्यू० नो० मो०, क्रमांक ५, पृष्ठ ७।
७ न्यू० स०, सैंतालीस, लेख क्रमांक २४४।
८ एपि० इ०, जिल्द सत्ताईस, पृष्ठ ४८ इत्यादि ।
९ न्यू० नो० मो, क्रमांक ५ पृष्ठ २३-२४।
१० पूर्वोक्त पृष्ठ ९-१०।
११ वा० नू०, पृष्ठ २५।
१२ पूर्वोक्त, पृष्ठ २७।
१३ का० ई० ई० जिल्द तीन, क्रमांक १।
१४ पूर्वोक्त।
१५ एपि० ई०, जिल्द नौ, पृष्ठ २४२ इत्यादि।
१६ पूर्वोक्त जिल्द इक्कीस, पृष्ठ १५२ इत्यादि और जिल्द अट्ठाईस, पृष्ठ १२ इत्यादि।
१७ पूर्वोक्त जिल्द उन्नीस पृष्ठ १०२ इत्यादि।
१८ पूर्वोक्त, जिल्द छब्बीस, पृष्ठ ५४ इत्यादि।
१९ ज० न्यू० सो० ई०, जिल्द एक, पृष्ठ २९ इत्यादि।
२० ज० ई० हि०, जिल्द सैंतीस, भाग तीन, दिसम्बर १९५९, पृष्ठ २६३; 'नवभारत' नागपुर, दीपावली विशेषांक १९६०।
२१ का० ई० ई०, जिल्द तीन, पृष्ठ ६१ इत्यादि।
२२ ई० हि० क्वा०, जिल्द उन्नीस, पृष्ठ १३१ इत्यादि।
२३ एपि ई०, जिल्द सत्ताईस, पृष्ठ १३२ इत्यादि।
२४ न्यू० नो० मो० क्रमांक ५ पृष्ठ १२-१३।
२५ 'नवभारत' नागपुर दीपावली विशेषांक १९६०।
२६ ज० न्यू० सो० ई०, जिल्द सोलह, पृष्ठ २१५ इत्यादि।
२७ एपि० ई०, जिल्द इकतीस, पृष्ठ ६१४ इत्यादि।
२८ अप्रकाशित।
२९ का० ई० ई०, जिल्द तीन, पृष्ठ १९७ इत्यादि।
३० एपि ई० जिल्द बाईस, पृष्ठ १५ इत्यादि।
३१ प्रस्तुत ग्रन्थ, लेख क्रमांक ७।
३२ 'नवभारत' नागपुर, दीपावली विशेषांक १९६०।
३३ प्रो० रि० आ० स० ई० वे० स० १९०४, पृष्ठ ५४।

३४ एपि० ई०, जिल्द इकतीस, पृष्ठ ३२४ इत्यादि।

३५ का० ई० ई०, जिल्द तीन, पृष्ठ २९१ इत्यादि।

३६ एपि० ई०, जिल्द सात, पृष्ठ १०६ इत्यादि।

३७ अप्रकाशित।

३८ एपि० ई०, जिल्द इकतीस, पृष्ठ २१९ इत्यादि।

३९ प्रस्तुत ग्रन्थ, लेख क्रमांक ९।

४० एपि० ई०, जिल्द सत्ताईस, पृष्ठ २८६ इत्यादि।

४१ वही, पृष्ठ ३१६ इत्यादि।

४२ प्रस्तुत ग्रन्थ, लेख क्रमांक १०।

४३ अप्रकाशित।

४४ एपि० ई०, जिल्द सत्ताईस, पृष्ठ १३२ इत्यादि।

४५ का० ई० ई०; जिल्द चार, पृष्ठ २०४ इत्यादि।

४६ न्यू नो० नो०, क्रमांक ५ पृष्ठ १३–१४।

४७ का० ई० ई०, जिल्द चार, पृष्ठ ३८ इत्यादि।

४८ पूर्वोक्त, पृष्ठ ४७ इत्यादि।

४९ त्रिपुरी के कलचुरियों के उत्कीर्ण लेखों में 'परमभट्टारकमहाराजाधिराजपरमेश्वर-परममाहेश्वरवाम-देवपादानुध्यात' ऐसे उल्लेख मिलते हैं।

५० का० ई० ई०, जिल्द चार, पृष्ठ १७४ इत्यादि।

५१ वही, पृष्ठ १७८ इत्यादि।

५२ वही, पृष्ठ २०४ इत्यादि।

५३ वही, पृष्ठ २३६ इत्यादि।

५४ वही, पृष्ठ २०४ इत्यादि।

५५ का० ई० ई०, जिल्द चार, पृष्ठ २३६ इत्यादि।

५६ प्रस्तुत ग्रन्थ, लेख क्रमांक १३।

५७ का ई० ई०, जिल्द चार, पृष्ठ २०४ इत्यादि।

५८ एपि० ई०, जिल्द चार, पृष्ठ २८७।

५९ का० ई० ई० जिल्द चार, पृष्ठ १८२–१८५।

६० ज० बि० रि० सो०, मार्च–जून १९५८।

६१ का० ई० ई०, जिल्द चार, पृष्ठ २०४ इत्यादि।

६२ वही, पृष्ठ १९८ इत्यादि।

६३ वही, पृष्ठ १८६ इत्यादि।

६४ एपि० ई०, जिल्द एक, पृष्ठ २३५।

६५ का० ई० ई० जिल्द चार, पृष्ठ २६३ इत्यादि।

६६ न्यू नो० गो०, क्रमांक ५ पृष्ठ १६।

६७ का० ई० ई०, जिल्द चार, पृष्ठ २६२ इत्यादि।

६८ वही, पृष्ठ २५० इत्यादि।

६९ वही, पृष्ठ २७८ इत्यादि। इस लेख में 'श्रीमत्कर्णप्रकाशाब्दवारखावा नवम संवत्सरे' ऐसा काल-निर्देश है।

७० एपि० ई०, जिल्द एक, पृष्ठ २३५।

७१ का० ई० ई०, जिल्द चार, पृष्ठ ३१२ इत्यादि।

७२ वही, पृष्ठ ६२६ इत्यादि।

७३ वही, पृष्ठ २७५ इत्यादि।

७४ वही, पृष्ठ २३६ इत्यादि।

७५ करकंडचरिउ (डाक्टर हीरालाल जैन द्वारा सम्पादित) पृष्ठ १०७।

७६ एपि० ई०, जिल्द दो, पृष्ठ १८६।

७७ का० ई० ई०, जिल्द चार, पृष्ठ ३०५ इत्यादि।

७८ वही, पृष्ठ ३०८ इत्यादि।

७९ वही, पृष्ठ ४४३ इत्यादि।

८० वही, पृष्ठ ३१२ इत्यादि।

८१ वही, पृष्ठ ३२१-२२१।

८२ वही, पृष्ठ ३२२-२४।

८३ वही, पृष्ठ २२४ इत्यादि।

८४ वही, पृष्ठ ६४५ इत्यादि।

८५ वही, पृष्ठ ५१८ इत्यादि।

८६ प्रथम जाजल्लदेव का रत्नपुर शिलालेख क० सं ८६६। प्रस्तुत ग्रन्थ लेख क्रमांक १५।

८७ का० ई० ई०, जिल्द चार, पृष्ठ २०४ इत्यादि।

८८ वही।

८९ प्रस्तुत ग्रन्थ लेख क्रमांक १५।

९० प्रस्तुत ग्रन्थ लेख क्रमांक १४।

९१ दक्षिण कोसल के प्राय: सभी लेखों में इसका उल्लेख मिलता है।

९२ प्रस्तुत ग्रन्थ लेख क्रमांक १४।

९३ का० ई० ई० जिल्द चार, पृष्ठ ३९८-४०१ ; प्रस्तुत ग्रन्थ लेख क्रमांक १४।

९४ प्रस्तुत ग्रन्थ लेख क्रमांक १५।

९५ वही

९६ का० इं० इं०, जिल्द चार, ४१०-१९।

९७ प्रस्तुत ग्रन्थ लेख क्रमांक १७।

९८ का० इं० इं०, जिल्द चार, पृष्ठ ६२२ इत्यादि।

९९ वही, पृष्ठ ४५० इत्यादि

१०० प्रस्तुत ग्रन्थ लेख क्रमांक २४।

१०१ प्रस्तुत ग्रन्थ लेख क्रमांक २५।

१०२ प्रस्तुत ग्रन्थ लेख क्रमांक २६।

१०३ का० इं० इं०, जिल्द चार, पृष्ठ ५३३ इत्यादि।

१०४ वही

१०५ प्रस्तुत ग्रन्थ लेख क्रमांक २७।

१०६ का० इं० इं०, जिल्द चार, पृष्ठ ५५४ इत्यादि।

१०७ प्रस्तुत ग्रन्थ, लेख क्रमांक २८ और २९।

१०८ प्रस्तुत ग्रन्थ, लेख क्रमांक ३० और ३१।

१०९ प्रस्तुत ग्रन्थ, लेख क्रमांक २८ और २९।

११० प्रस्तुत ग्रन्थ, फलक अट्ठावन।

१११ हीरालाल, क्रमांक २८५।

११२ पूर्वोक्त, क्रमांक २६९।

११३ पूर्वोक्त, क्रमांक २७८।

११४ पूर्वोक्त, क्रमांक २७५।

११५ पूर्वोक्त, क्रमांक २७३।

११६ प्रस्तुत ग्रन्थ, लेख क्रमांक १५।

११७ हीरालाल, क्रमांक २७२।

११८ पूर्वोक्त, क्रमांक २७१।

११९ पूर्वोक्त, क्रमांक २८०।

१२० पूर्वोक्त, क्रमांक २७९।

१२१ पूर्वोक्त, क्रमांक २८९।

१२२ पूर्वोक्त, क्रमांक २८२।

१२३ पूर्वोक्त, क्रमांक ३०५।

१२४ का० ई० ई०, जिल्द चार, पृष्ठ ५२६ इत्यादि।
१२५ प्रस्तुत ग्रन्थ, लेख क्रमांक २२।
१२६ एपि० ई०, जिल्द इकतीस, पृष्ठ ३१ इत्यादि।
१२७ ई० हि० क्वा०, जिल्द उन्नीस, पृष्ठ १३१ इत्यादि।
१२८ प्रस्तुत ग्रन्थ, लेख क्रमांक १२।
१२९ एपि० ई० जिल्द इकतीस, पृष्ठ ३१४ इत्यादि।
१३० प्रस्तुत ग्रन्थ, लेख क्रमांक ६।
१३१ प्रस्तुत ग्रन्थ, लेख क्रमांक १०।
१३२ प्रस्तुत ग्रन्थ, लेख क्रमांक ११।
१३३ एपि० ई०, जिल्द सत्ताईस, पृष्ठ १३२ इत्यादि।
१३४ मनुस्मृति ८-२६४।
१३५ प्रस्तुत ग्रन्थ, लेख क्रमांक २८।
१३६ प्रस्तुत ग्रन्थ, लेख क्रमांक ८।
१३७ प्रस्तुत ग्रन्थ, लेख क्रमांक १०।
१३८ एपि० ई०, जिल्द इकतीस, पृष्ठ ३१ इत्यादि।
१३९ का० ई० ई०, जिल्द चार, पृष्ठ २१०।
१४० प्रस्तुत ग्रन्थ, लेख क्रमांक २८।

उत्कीर्ण-लेख

मूलपाठ और अनुवाद

सातवाहनकालीन उत्कीर्ण लेख

१. किरारी में प्राप्त काष्ठस्तंभ-लेख

(चित्रफलक एक और दो)

यह काष्ठस्तंभ-लेख बिलासपुर जिले के किरारी नामक गांव में प्राप्त हुआ था, जो चन्द्रपुर से पश्चिम में सोलह किलोमीटर की दूरी पर बसा है। यह स्तंभलेख जितना महत्त्वपूर्ण है, उसकी उपलब्धि और दुर्दशा की कहानी उतनी ही कौतूहलभरी है। ईस्वी सन् १६३१ की बात है कि उपरोक्त किरारी गांव का हीराबांध नामक पुराना तालाब अवृष्टि के कारण सूख गया जिससे वहां के किसान अपने अपने खेतों के उपयोग के लिए उसकी खाद खोदने लगे। अचानक उन्हें यह स्तंभ प्राप्त हो गया, जिसे कीचड़ में से बाहर निकालकर उन्होंने धूप में रख छोड़ा। सैकड़ों बरसों से जल में पड़े रहने के कारण काष्ठस्तंभ तदनुकूल बन गया था ; इसलिए जब वह अचानक बदले हुये वातावरण में अप्रैल महीने की कड़ी धूप में अरक्षित डाल दिया गया तो उसके सिकुड़ने-सूखने की क्रिया में उसकी चिपलियां टूट टूट कर अलग गिर गई, और वे अपने साथ उन अक्षरों को भी लेती गई जो उनकी सतह पर उत्कीर्ण थे। उस प्रकार इस महत्त्वपूर्ण लेख क अधिकांश भाग दुर्भाग्य से विनष्ट हो गया।

सौभाग्य से उसी गांव में रहने वाले पंडित श्री लक्ष्मीप्रसाद उपाध्याय ने काष्ठ पर उत्कीर्ण अक्षरों की यथादृष्ट नकल मौके पर ही उतार ली थी। वह यादृश नकल वास्तव में इतनी तादृश रही कि स्वर्गीय डाक्टर हीरानन्द शास्त्री ने उसे प्रमाणित मानकर उसके आधार पर समूचे लेख को एपिग्राफिग्रा इण्डिका, जिल्द अठारह (पृष्ठ १५२-१५७) में सम्पादन करके प्रकाशित कराया।

पंडित लक्ष्मीधर जी की यथादृष्ट प्रति में कुल अक्षरों की संख्या ३४९ से कहीं अधिक है, जबकि अब मुश्किल से २०-२२ अक्षर ही बच रहे हैं। उपलब्धि के पश्चात् जब इस काष्ठ-स्तंभ की सूचना पुरातत्त्व विभाग को मिली तो उसके महा संचालक ने स्तंभ को पुनः पानी में डुबा कर रखने के आदेश दिये। और तब वह उस समय तक स्थानीय तालाब में डूबा रहा जब तक कि उसकी संरक्षा के हेतु उसका रासायनिक उपचार नहीं हो गया। तदनंतर वह नागपुर के केन्द्रीय संग्रहालय में पहुंचाया गया। वहां स्तंभ के ऊपरी भाग को तो काट कर-प्रदर्शन हेतु रख लिया गया और नीचे के बड़े भाग को एक तरफ डाल दिया गया। वही ऊपरी भाग अब इस संग्रहालय में प्रदर्शित है।

इस काष्ठस्तंभ की पूरी ऊंचाई १३'९" थी अर्थात् लगभग ३२० से०मी०। ऊपरी

भाग में जो केवल ११२ से० मी० बचा है, ३६ से०मी० ऊंचा कलश बना है (चित्रफलक एक)। स्तंभ बीजा साल नामक काष्ठ का बना है।

यह लेखयुक्त स्तंभ सचमुच ही अद्वितीय है, क्योंकि उत्कीर्ण-लेखयुक्त स्तंभ पत्थर के तो बहुत मिलते हैं किन्तु काष्ठ का लेखयुक्त प्राचीन स्तंभ और कहीं नहीं पाया गया है। इस प्रकार के यूपस्तंभ प्राचीन काल में भारतवर्ष में अक्सर बनाये जाते थे किन्तु डाक्टर हीरानंद शास्त्री का मत है कि प्रस्तुत काष्ठस्तंभ, यूपस्तंभ नहीं बल्कि वाजपेय जैसे किसी यज्ञ से संबंधित है, या फिर जयस्तंभ या ध्वजस्तंभ किंवा साधारण सरोवर-स्तंभ मात्र है जैसे कि छत्तीसगढ़ के तालाबों में आजकल भी देखे जाते हैं।

प्रस्तुत काष्ठस्तंभ पर खुदे लेख की लिपि नासिक की गुफाओं में उत्कीर्ण लेखों की लिपि से मिलती जुलती है। लेख में न तो किसी राजा का ही नामोल्लेख है और न ही कोई संवत् ही पड़ा है। फिर भी लिपि के आधार पर इसे ईस्वी सन् की दूसरी शताब्दी का म.ना जाता है। इसकी भाषा प्राकृत है।

ऊपर बताया जा चुका है कि लेख अब काफी नष्ट हो चुका है किन्तु पंडित लक्ष्मीधर जी उपाध्याय की प्रतिलिपि से ज्ञात होता है कि इसमें अनेक शासकीय अधिकारियों के नाम और पदनाम उल्लिखित हैं। उदाहरण के लिये, वीरपालित और चिरगोहक नामक नगररक्षी (कोतवाल), कामदेय नामक सेनापति, खिपत्ति नामक प्रतिहार (दौवारिक), नागवंशीय हेमसि नामक गणक (लेखपाल), धरिक नामक गृहपति, असाधिम नामक भाण्डागारिक (संग्रहागार का अधिकारी), हस्त्यारोह, अश्वारोह, पादमूलिक (पुरोहित या पण्डा), रथिक, महानसिक, (रसोई संबंधी प्रबंध करने वाला), हस्तिपक, धावक (आगे आगे दौड़ने वाला), सौगन्धक, गोमाण्डलिक, यानशालायुधागारिक, पलवीथिदप.लिक, लेखहारक, कुलपुत्रक और महासेनानी। इन पदनामों में से बहुतेक का उल्लेख कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी मिलता है। इन पदाधिकारियों का एक साथ इस लेख में उल्लेख होने से अनुमान किया जा सकता है कि प्रस्तुत स्तंभ अवश्य ही किसी बड़े समारोह के आयोजन के अवसर पर खड़ा किया गया था और उस आयोजन को करने वाला राजा मामूली न रहा होगा।

मूलपाठ

पंक्ति

१ नगररखिनो व [ी] रप [ा] लित चिरग [ो] हके सेनापति खिव कमदेया खि —— ग — धोतावस (ब्) हथि कमदेयिकम-न पटिल – ि —— ि —— सा– ि – ि — सा — ि —— सा —— नो भटाय केसयथिठिदकामिक तते[1] साविद निमित

---

१ 'भमे' भी पढ़ा जा सकता है।

२ पतिहार खिपत्ति गणकनाग हेथसि गाहपातिय घरिक भण्डाकारिक प्रसाधिय वेहात्था-थिआर हथारोहे असारोहे देवथयक पादमूलिक रथिक सिसार खविमल बुतनमक तमक महानसिक कुकुडभट

३ हाथियक यमसिक धावक सगन्धके गोमण्डिलिक यानसालायुधघरिके दलिअसेन्ह पलविठिद बालिके अवसकारक ससरदापदेअक वदि केसवनाथो वचरे अनु-थिनो दुनवृत्त लेहहारके पेत्स पयुतसाव कुलिपुत्त कुलिपुत्तमनुसेन [ा] पति

४ बु —— सलिनम –[बु] हेसर महसेनानि सिठरज —— कुद्ध —— पुतस —— पिञ्त — रपयति गमे पुवरठि —— कवयु —— से – न कुम [ा] र [े] —— ड – न [ा] यक

५ भयपुर [द] पा – ट आ — पुन [वि] याम[1]

अनुवाद

नगररखी बीरपालित और चिरगोहक, सेनापति वामदेव ......, भट केशव वीथिदका-मिक .... प्रतिहार खिपति, गणक नाग हेथसि, गृहपतिक घरिक, भाण्डागारिक प्रसाधिय, ... हस्त्यारोह, अश्वारोह, देवस्थानक, पादमूलिक, रथिक सिसार खविमल ...... महानसक कुकुडभट, हस्तिपक यमश्री, धावक, सौगन्धक, गोमाण्डलिक, यानशालायुधागारिक दलितसिंह ?, पनवीथिदपालक, अवस्यकारक, ... केशवनाथ, ... लेखहारक प्रयुक्त ...... कुलपुत्र ...... सेनापति ...... महासेनापति सिद्धराज ... के पुत्र का ...... कुमार .... नायक ......

---

१ पंडित लक्ष्मीधर उपाध्याय द्वारा तैयार की गई आंख देखी प्रति से जो एपिग्राफिया इंडिका, जिल्द अठारह में प्रकाशित हुई है। उपरोक्त लक्ष्मीधरजी ने छोटे आकार के कागज पर नकल उतारी थी, इसलिये लेख की प्रत्येक पंक्ति कई पंक्तियों में उतारी जा सकी थी ।

अज्ञात राजवंश का उत्कीर्ण लेख

२. आरंग में प्राप्त ब्राह्मी शिलालेख

(चित्रफलक तीन)

यह लेख त्रिकोणाकृति पत्थर पर उत्कीर्ण है जो रायपुर से ३५ किलोमीटर पूर्व में स्थित आरंग[1] से संग्रहालय में लाया गया था। पत्थर की अधिकतम चौड़ाई ४४ से० मी०, ऊंचाई ७० से० मी० और मोटाई १८ से० मी० है। इसका निर्देश कजिन्स ने प्रोग्रेस रिपोर्ट आफ आर्कलाजिकल सर्वे, वेस्टर्न सर्किल, १९०४ (पृष्ठ ५०) में किया था। उसके बाद रायबहादुर डाक्टर हीरालाल ने इन्स्क्रिप्शन्स इन सी० पी० एण्ड बरार (द्वितीय संस्करण पृष्ठ ११०) में इसका वाचन दिया और लिखा कि लेख का अर्थ अस्पष्ट है।

प्रस्तुत लेख की लिपि ब्राह्मी है और अक्षरों के प्रकार के आधार पर वह ईस्वी सन् की चौथी शताब्दी की जान पड़ती है। भाषा संस्कृत[2] है। लेख लिखा तो केवल एक ही पंक्तिमें गया है किन्तु अर्धवृत्त के रूप में पत्थर के तीनों तरफ उत्कीर्ण है इसलिये इसे तीन पंक्तियों वाला ही कहना चाहिये। अक्षर काफी गहरे और स्पष्ट उत्कीर्ण हैं।

लेख में भृंगार पर्व और जल योग का उल्लेख है।

---

१ आरंग में निम्नलिखित उत्कीर्ण लेख और मिले हैं :

(१) राजर्षितुल्य कुल के महाराज (द्वितीय) भीमसेन का ताम्रपत्रलेख, गुप्त संवत् १८२ या २८२ : एपिग्राफिआ इंडिका जिल्द नौ, पृ० ३४२ इत्यादि।

(२) शरभपुरीय राजा जयराज का ताम्रपत्रलेख, राज्य वर्ष ५: कार्पस इंस्क्रिप्शने इंडिकेरं जिल्द तीन, पृ० १९१ इत्यादि।

(३) शरभपुरीय राजा सुदेवराज का ताम्रपत्रलेख, राज्य वर्ष ८: एपिग्राफिआ इंडिका जिल्द तेईस पृ० १९ इत्यादि।

(४) कलचुरि अमरसिंहदेव का ताम्रपत्र, संवत् १७९२ वि०।

२ प्राकृत भी हो सकती है। अर्थ स्पष्ट न होने के कारण निश्चय करना कठिन है।

मूलपाठ[1]

पंक्ति

१ त्रि (भृ)ङ्गारपव्वं [ि]म

२ वलयोग

३ विधूणा पति[2]

अनुवाद

भृंगारपर्व में बलयोग............

---

१ डाक्टर हीरालाल ने पूरा लेख इस प्रकार बांचा है "भंगारपव्वतो बलि योग विधि तापको"।

२ "विधाणपति" भी पढ़ा जाता है।

शरभपुरीय राजाओं के उत्कीर्ण लेख

३. नरेन्द्र का कुरुद में प्राप्त ताम्रपत्रलेखः (राज्य) संवत् २४

(चित्रफलक चार, पांच और छह)

मुद्रासमेत ये तीन ताम्रपत्र रायपुर से ४३ किलोमीटर दूर, कुरुद नामक ग्राम में प्राप्त हुये थे जो रायपुर-धमतरी रेल मार्ग पर स्थित है। डाक्टर मन्नलाल कटारे और मैंने संयुक्त रूप से इस लेख को जनरल आफ बिहार रिसर्च सोसाइटी, जिल्द बयालीस, भाग ३-४ (दिसम्बर १९५६) में और डाक्टर मोरेश्वर दीक्षित ने एपिग्राफिआ इंडिका, जिल्द इकतीस (पृष्ठ २६३-६६) में प्रकाशित किया था। लेख के कुछ विशिष्ट वाक्यांशों की व्याख्या डाक्टर दिनेशचन्द्र सरकार ने एपिग्राफिआ इंडिका की उपर्युक्त जिल्द में (पृष्ठ २६७-६८) की है।

तीनों ताम्रपत्रों में से प्रत्येक की चौड़ाई १४·५ से० मी० और ऊंचाई ८ से० मी० है। प्रत्येक पत्र के बायें तरफ के हांसिये में एक गोल छेद है जिसमें छल्ला पिरोया हुआ है। छल्ले के दोनों छोर मुद्रा से जुड़े हुये थे किन्तु लेख की छाप लेने के लिये अब छल्ले को काट दिया गया है। राजमुद्रा ढुलवा है और उस का व्यास ७ से० मी० है। उसके उपरले आधे भाग में कमल पर खड़ी गजलक्ष्मी की प्रतिमा है; ऊपरी छोर पर दायें ओर सूर्य तथा बायें ओर चन्द्रमा है। लक्ष्मी के दोनों ओर खड़े एक एक हाथी अपनी सूंड में कलश लिये हुये हैं और देवी का अभिषेक कर रहे हैं। निचले भाग में दो पंक्तियों का लेख है जो पेटिकाशीर्षक अक्षरों में लिखा हुआ है। उससे विदित होता है कि महाराज नरेन्द्र शरभ के बेटे थे। तीनों ताम्रपत्रों, छल्ले और मुद्रा का कुल मिलाकर वजन ७७० ग्राम है।

लेख २१ पंक्तियों में समाप्त हुआ है। उनमें से पांच पांच पंक्तियां प्रथम पत्र और द्वितीय पत्र के दोनों बाजुओं पर, तथा छह पंक्तियां तृतीय पत्र पर उत्कीर्ण हैं। लिपि पांचवी शती की पेटिकाशीर्षक अक्षरों वाली ब्राह्मी लिपि है जो इस काल में छत्तीसगढ़, विदर्भ और मालवा क्षेत्र में प्रचलित थी। लेख गद्यपद्यमय संस्कृत भाषा में लिखा गया है, शापाशीर्वादात्मक भाग और मुद्रा पर का लेख तो श्लोकों में है, शेष मुख्य विषय गद्य में।

यह दानपत्र महाराज नरेन्द्र ने अपने राज्यकाल के २४ वें वर्ष में वैशाख की चतुर्थी को तिलकेश्वर के शिविर से दिया था। लेख में चुल्लाडसीमा भोग में स्थित केसवक नामक ग्राम के ब्राह्मणों तथा अन्य कुटुम्बों को संबोधित कर के कहा गया है कि यह गांव पहले परमभट्टारक ने गंगास्नान के अवसर पर अपने पुण्य की अभिवृद्धि के लिये हारिणी गोत्रीय भाश्रुतस्वामी

को तालपत्र पर लिखकर दान में दिया था, (किन्तु) घर में आग लग जाने से वह ताम्रपत्रलेख जल गया; अधिकारियों द्वारा जांच में यह बात सत्य पाई जाने पर कि यह ब्राह्मण तब से लेकर लगातार उस ग्राम का भोग कर रहा है, अब भाश्रुतस्वामी के बेटे शंखस्वामी के नाम पर (वह दान) परमभट्टारक के ही पुण्य की वृद्धि के लिये ताम्रपत्र पर लिखकर अनुमोदित किया जाता है। आगे उक्त ग्रामवासियों को आज्ञा दी गई है कि वे लोग शंखस्वामी को उचित भोग, भाग, धान्य और हिरण्य आदि, यथासमय देते रहें। दानपत्र के दूत शासकीय अधिक गी थे और श्रीदत्त ने इस लेख को ताम्रपत्रों पर उत्कीर्ण किया था।

इस लेख में जो महत्त्वपूर्ण सूचना मिली है वह यह है कि प्रस्तुत लेख पहले तालपत्रों पर लिखा गया था और उनके आग में जल जाने पर फिर ताम्रपत्रों पर उत्कीर्ण किया गया। दानपत्र में परमभट्टारक के गंगा-स्नान का भी उल्लेख है। डाक्टर दीक्षित का अनुमान है कि पूर्वकाल में महानदी को गंगा भी कहा जाता था किन्तु अन्य विद्वान् यह बात नहीं मानते। उनका मत है कि यहां निर्दिष्ट गंगा वही सुप्रसिद्ध नदी है जो उत्तरप्रदेश में बहती है और उसके आसपास ही परमभट्टारक की राजधानी थी।

इस ताम्रपत्र को देने वाले नरेन्द्र का एक और ताम्रपत्रलेख पिपरदुला से प्राप्त हुआ है। वह लेख उनके राज्यकाल के तीसरे वर्ष में उत्कीर्ण किया था [1]। उस लेख और प्रस्तुत लेख के साथ की राजमुद्राओं से विदित होता है कि नरेन्द्र शरभ के बेटे थे। शरभ ने अपने नाम पर शरभपुर की रचना की थी जो उनके वंश की राजधानी रही। यह शरभ संभवतः वही शरभराज है जिसका दौहित्र गोपराज एरण के युद्ध में मारा गया था [2]। शरभ पांचवीं शती ईस्वी के अन्तिम चरण में और उसका बेटा नरेन्द्र संभवतः छठी शती ईस्वी के प्रथम चरण में राज्य करते थे। नरेन्द्र की बहिन लोकप्रकाशा मेकला के पाण्डुवंशी राजा भरतबल की रानी थी [3]।

लेख में जिन स्थानों का उल्लेख है उनमें से केशवक नामक ग्राम, जो दान में दिया था, महासमुंद से ६ किलोमीटर दूर केसवानाला पर बसा हुआ वर्तमान ग्राम केसवा हो सकता है; उसी प्रकार केसवा से पूर्व में ११ किलोमीटर पर स्थित चरोदा के प्राचीन चुल्लाडसीमाभोग होने का अनुमान है। तिलकेश्वर के संबंध में कुछ नहीं कहा जा सकता।

---

१. इन्डियन हिस्टारिकल क्वारटरली जिल्द उन्नीस, पृ० १३१ इत्यादि।

२. गुप्त वंशी भानुगुप्त के समय में गुप्त संवत् १९१-ईस्वी ५१० देखिये कार्पस इन्स्क्रिप्शनेम इन्डिकेरं, जिल्द तीन, पृष्ठ ९१-९३।

३. जरनल आफ इन्डियन हिस्ट्री, जिल्द सैंतीस, भाग तीन, दिसम्बर १९५९, पृष्ठ २६३।

मूलपाठ

पंक्ति

प्रथम पत्र

१ सिद्धम्[1] [। ❀] स्वस्ति [। ❀] विजयस्कन्धावारात्तिलकेश्वरवासकात्परमभाग-
२ वतो मातापितृपादानुध्यातः श्रीमहाराजनरेन्द्रः चुल्लाड-
३ सीमाभोगीयकेशवके ब्राह्मणपुरस्सरान्प्रतिवासि-
४ कुटुम्बिनस्समाज्ञापयति [। ❀] विदितमस्तु वः यथायं ग्राम [:*]
५ परमभट्टारकपादं [: ❀] भ (भा) श्रुतस्वामिने वारणीसगोत्राय

द्वितीय पत्र ; प्रथम बाजू

६ गङ्गायां मज्जन [*] कुर्व्वद्भि [: ❀] तालपत्रशासनेन स्वपुण्याभिवृ-
७ द्धये दत्तकः [। ❀] तच्च तालपत्रशासन [* ❀] ग्रहदाघे[2] दग्धमित्यधि-
८ करणावधारणया प्राक्तन्न (भु) त्यव्यवच्छेदभोगेनाय [* ❀] ग्रा-
९ मो भुज्यत इति ॥ अधुना भाश्रुत[3] स्वामिपुत्रशङ्खस्वामिने
१० परमभट्टारकपादाना [* ❀] पुण्याप्यायनाये (ये) व ताम्रशास-

द्वितीय पत्र ; द्वितीय बाजू

११ नेनातिसृष्टिमित्युपलभ्यास्याज्ञाश्रवणविधेया
१२ भूत्वा यथाकालमुचितभोगभागधान्यहिरण्यादेरुप-
१३ नयं कर्ष्यथेति (करिष्यथेति) ॥ भविष्यतश्च भूपा [न् ❀] कुशलोपेतमनु-
१४ दर्शयति ॥ दूतकमधिकरण [* ❀] व्यासगीतांश्चात्र श्लोकानुदाह-
१५ रन्ति ॥ बहुभिर्व्वसुधा दत्ता राजभिस्सगरादिभि [: ❀] । यस्य यस्य

तृतीय पत्र

१६ यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा फल [* ❀] ॥ [१॥ ❀] पूर्व्वदत्तां द्विजातिभ्यो य-
१७ त्नाद्रक्ष युधिष्ठिर [। ❀] महीं महिमतां श्रेष्ठ दानाच्छ्रेयोनुपाल-

१. प्रतीक द्वारा सूचित ।
२. "गृहदाघे" पढ़िये ।
३. पंक्ति ५ में 'भश्रुतस्वामि' नाम दिया है । वह ठीक नहीं जंचता ।

१८ न [ॱ ॥२॥ ❀] षष्टिवर्षसहस्राणि स्वर्गे मोदति भूमिदः [। ❀] आच्छे-

१९ त्ता चानुमन्ता च्च (च) तान्येव नरके वसेत् [॥३॥ ❀] प्रवर्द्धमानविज-

२० यराज्यसव्व (संव)त्सरे चतुर्व्विंशतिमे[1] २० ४ वैशाख दि ४

२१ उत्कि (त्की) र्ण्णं श्रीदत्तेनेति ॥

मुद्रा

१ खड्गधाराजितभुव [: ❀] शरभात्प्राप्तजन्मनः [। ❀]

२ नृपतेश्श्रीनरेन्द्रस्य [शा] सनं रिपु [शा] सन [ॱ ॥ ❀]

अनुवाद

सिद्धं । स्वस्ति । तिलकेश्वर के विजयशिविर से परम भागवत (और) माता पिता के चरणों का ध्यान करने वाले श्रीमान् महाराज नरेन्द्र चुल्लाडसीमा भोग में (स्थित) केवलक ग्राम में बसने वाले ब्राह्मणादिक कुटुम्बों को समाज्ञापित करते हैं।

आपको विदित हो कि यह ग्राम परमभट्टारक ने गंगास्नान करते समय, धारणी गोत्र के भाश्रितस्वामी को अपने पुण्य की अभिवृद्धि के लिये तालपत्रशासन के साथ दिया था। और वह तालपत्र (उसके) घर में लगी हुई आग में जल कर नष्ट हो गया। सचिवालय की जांच से ऐसा सिद्ध हुआ कि तब से लेकर अखण्ड भोग के साथ यह ग्राम (अब तक) भोगा जा रहा है। इसलिये अब भाश्रुत-स्वामी के पुत्र शंर्वस्वामी को परमभट्टारक के ही पुण्य की वृद्धि के लिये ताम्रशासन से अनुमोदित किया गया है। इसलिये ऐसा जानकर आज्ञा सुनने के अनुसार कार्य करके यथासमय उचित भोग, भाग, धान्य, हिरण्य इत्यादि भेंट करते रहें।

और भविष्य में होने वाले राजाओं को कुशल (समाचार) सहित बताते हैं।

(इस दान के) दूतक सचिवालयीय अधिकारी हैं।

और यहां व्यास के रचे श्लोकों का उदाहरण देते हैं —

"सगर इत्यादि बहुत से राजाओं ने वसुधा का दान किया, (किन्तु) जब जब जिसकी भूमि होती है, तब तब फल उसी को मिलता है।१। हे युधिष्ठिर, ब्राह्मणों को पूर्वकाल में दी गई भूमि की यत्न से रक्षा करो, (क्योंकि) हे भूमिधारियों में श्रेष्ठ, दान की अपेक्षा (उसका) अनुपालन श्रेष्ठ है। २। भूमि का दान करने वाला साठहजार वर्ष तक स्वर्ग में आनन्द करता है और छुड़ाने वाला तथा (उसका) अनुमोदन करने वाला उतने ही वर्ष तक नरक में बसते हैं। ३।"

---

१. 'विंशतिमे' पढ़िये।

प्रवर्द्धमान विजयराज्य संवत् चौबीसवें में, (अंकन) २४, वैशाख दिन ४।

श्रीदत्त ने उत्कीर्ण किया।

मुद्रा

खड्ग की धारा से पृथ्वी को जीतने वाले (और) शरभ से जन्म प्राप्त करने वाले नृपति श्री नरेन्द्र का शासन शत्रुओं को शासित करने वाला है।

४. जयराज का आरंग में प्राप्त ताम्रपत्रलेख : (राज्य) संवत् ५
(चित्रफलक सात, आठ और नौ)

मुद्रा समेत ये ताम्रपत्र कर्नल ब्लूमफील्ड को रायपुर से ३५ किलो पूर्व में स्थित आरंग में मिले थे[1]। उन्होंने इन्हें नागपुर के केन्द्रीय संग्रहालय को भेजा था। वहां से ईस्वी सन् १९५२ में ये रायपुर संग्रहालय में स्थानान्तरित किये गये। मेजर जनरल अलेक्जेण्डर कनिंघम ने आर्कलाजिकल सर्वे रिपोर्ट, जिल्द सत्रह (पृष्ठ ५५-५६) में इनका विवरण दिया था और फिर जे० फ्लीट ने कार्पस इंस्क्रिप्शनं इंडिकेरं, जिल्द तीन, (पृष्ठ १९१ इत्यादि) में इन्हें सम्पादित करके प्रकाशित किया।

इन तीनों ताम्रपत्रों में से प्रत्येक की चौड़ाई १३·५ से० मी० और ऊंचाई ६·५ से० मी० है। तीनों के ही बायें तरफ के हांसियों में एक एक गोल छेद है जिनमें छल्ला पिरोया हुआ है। इस छल्ले के दोनों छोर राजमुद्रा से जुड़े हुवे थे। राजमुद्रा ढालकर बनाई गई है। उसका व्यास ८ से० मी० है। उसके उपरले आधे भाग में तो पूर्ववत् खड़ी हुई गजलक्ष्मी की प्रतिमा है और नीचे के भाग में दो पंक्तियों का लेख है। ताम्रपत्रों, छल्ले और मुद्रा का कुल वजन ११२५ ग्राम है।

ताम्रपत्रों पर कुल २४ पंक्तियां उत्कीर्ण हैं, जिनमें से प्रथम पत्र पर ५, द्वितीय पत्र के दोनों बाजुओं पर ५-५, और तृतीय पत्र के प्रथम बाजू पर ५ तथा द्वितीय बाजू पर ४ पंक्तियां हैं। लिपि पेटिकाशीर्षक अक्षरों वाली है जो पांचवी-छठी शती ईस्वी में प्रचलित ब्राह्मी लिपि का स्थानीय प्रकार है। लेख की भाषा संस्कृत है; शापाशीर्वादात्मक भाग और मुद्रा का लेख, ये तो श्लोकों में हैं और शेष भाग गद्य में।

यह दानपत्र परमभागवत राजा जयराज ने अपने राज्यकाल के ५ वें वर्ष में माघ मास में दिनांक २५ को शरभपुर से दिया था। लेख में पूर्व राष्ट्र में स्थित पम्वा नामक ग्राम के निवासियों को संबोधित करके कहा गया है कि यह ग्राम वाजसनेय कौण्डिन्य गोत्रीय ब्रह्मदेव स्वामी को दिया गया है इसलिये आप लोग यथोचित भोग-भाग उन्हें भेंट करते रहें। राजा जय-

---

१ आरंग में मिले अन्य लेखों के लिये ऊपर पृष्ठ ४, पादटिप्पणी १, देखिये।

राज ने यह दान माता पिता और निज के पुण्य की अभिवृद्धि के लिये किया था। तदनुसार उक्त गांव में चाटों और भटों का प्रवेश निषिद्ध कर दिया था, गांव में प्राप्त निधियों और उपनिधियों का अधिकार ब्रह्मदेवस्वामी को मिल गया था तथा उन्हें सभी प्रकार के करोंसे छूट दे दी गई थी। इस लेख को ताम्रपत्रों पर अचलसिंह ने उत्कीर्ण किया था।

मुद्रा के लेख से ज्ञात होता है कि जयराज प्रसन्न के बेटे थे। प्रसन्न का नाम वंश के अन्य लेखों में भी मिलता है किन्तु इनका पूर्वोक्त नरेन्द्र से क्या संबंध था, यह अभी तक ज्ञात नहीं हो सका है। प्रसन्न द्वारा या उसके नाम पर बसाये गये प्रसन्नपुर नामक एक नगर का उल्लेख मल्लार से प्राप्त व्याघ्रराज के ताम्रपत्रलेख में मिला है जिसके अनुसार वह निडिला नदी के तट पर स्थित था। प्रसन्न का पूरा नाम प्रसन्नमात्र था। उसके सोने के सिक्के न केवल छत्तीसगढ़ में ही, बल्कि पूर्व में कटक और पश्चिम में चांदा जिलों में भी मिले हैं[1]।

प्रस्तुत लेख के अलावा, जयराज के दो और ताम्रपत्रलेख, मल्लार (बिलासपुर जिला) में प्राप्त हुये हैं जो उसके राज्यकाल के ५ वें और ९ वें वर्ष में क्रमशः लिखे गये थे। उसी प्रकार मल्लार से ही प्राप्त एक अन्य लेख में जयभट्टारक और उसके बेटे प्रवरभट्टारक का नामोल्लेख है। उसी लेख से यह भी ज्ञात होता है कि प्रवरभट्टारक का छोटा भाई व्याघ्रराज प्रसन्नपुर में रहता था। जय और प्रवर ये दोनों नाम शरभपुरीय राजाओं की वंशावली में मिलते हैं और दोनों ही प्रसन्न के वंशज थे, किन्तु पहिले प्राप्त हुये किसी भी लेख से यह स्पष्ट नहीं हुआ था कि जयराज का उत्तराधिकारी कौन था। अभी तक यह माना जाता था कि प्रसन्नमात्र के दो बेटे थे, जयराज और मानमात्र तथा मानमात्र के दो बेटे हुये सुदेवराज और प्रवरराज। इस मान्यता का आधार था कि सुदेवराज और प्रवरराज दोनों के ही लेखों में उनके पिता का नाम मानमात्र बताया गया है[2]। किन्तु मानमात्र का एक और नाम दुर्गराज था, इसकी सूचना कौआताल में प्राप्त सुदेवराज के एक अन्य लेख से मिलती है[3]। उसी प्रकार उपरोक्त व्याघ्रराज के लेख के अनुसार मानमात्र का तीसरा नाम जयराज जान पड़ता है क्योंकि उस लेख में बताया गया है कि प्रवर, जय का बेटा था जबकि अन्य लेखों में प्रवर के पिता का नाम मानमात्र बताया गया है। ऐसी स्थिति में, यह अनुमान करने में कि जयराज के दो और नाम, दुर्गराज और मानमात्र थे, कोई कठिनाई नहीं प्रतीत होती।

जयराज की राजधानी शरभपुर में थी। इस शरभपुर को संभवतः नरेन्द्र के पिता शरभ या शरभराज ने बसाया था। शरभपुर कहां था, इस संबंध में अभी तक ठीक ठीक पता नहीं चल सका है। स्टेन कोनो का अनुमान था कि वह राजमहेन्द्री से बीस मील दूर स्थित आधुनिक शरभ-

---

१ ज० न्यू० सो० इं०, जिल्द सोलह, पृ० २१५ इत्यादि।

२ देखिये आगे लेख क्रमांक ५, ६ और ७।

३ एनुआल रिपोर्ट आन इंडियन एपिग्राफी, १९४५-४६, पृ० १२, क्रमांक ए ४३।

वरम् है; राजेन्द्रलाल मित्र , संबलपुर को ही प्राचीन शरभपुर मानते थे; कुछ विद्वान सारंगढ़ को ही शरभपुर कहते हैं । पंडित लोचनप्रसाद पांडेय ने पूर्व गंगपुर राज्य में स्थित सरभागढ़ या सरभगढ़, शिवरीनारायण के समीप स्थित सरवा और बिलासपुर जिले में ही स्थित नन्दौर के के निकट बसा सरहर गांव, ये स्थान सुझाये हैं। रायबहादुर हीरालाल वर्तमान सिरपुर (रायपुर-जिला) को ही शरभपुर मानते थे । जो कुछ भी हो, प्रतीत यही होता है कि शरभपुर वर्तमान रायपुर और बिलासपुर जिलों में ही कहीं बसा हुआ था क्योंकि शरभपुरीय राजाओं के लेख केवल इन्हीं दो जिलों के क्षेत्र में प्राप्त हुये हैं ।

जैसा कि ऊपर बताया गया है, जयराज के तीन बेटे थे ; सुदेवराज, प्रवरराज और व्याघ्रराज । जेठा बेटा होने के कारण सुदेवराज शरभपुर के राज्य का उत्तराधिकारी हुआ । प्रवरराज महत्त्वाकांक्षी होने के कारण श्रीपुर के आसपास के प्रदेश को जीतकर वहां राज्य करने लगा । किन्तु संभवतः ५-६ वर्ष राज्य करने के पश्चात् ही उसकी अकाल मृत्यु हो गई । इसलिये श्रीपुर का क्षेत्र भी उसके बड़े भाई सुदेवराज को मिल गया । सुदेवराज के समय में ही पाण्डुवंशियों ने शरभपुरीय राजवंश को समाप्त कर अपना राज्य स्थापित किया जिसकी राजधानी श्रीपुर (वर्तमान सिरपुर, रायपुर जिला) बना ।

प्रस्तुत लेख में जिन स्थानों का उल्लेख हुआ है उनमें से शरभपुर के बारे में ऊपर कहा जा चुका है । पूर्व राष्ट्र, संभवतः बिलासपुर जिले के आसपास के क्षेत्र को कहा जाता था और दान में दिया गया गांव पम्वा संभवतः बिलासपुर से ३२ किलो पूर्व में स्थित वर्तमान पामगढ़ है।

मूलपाठ

पंक्ति

प्रथम पत्र

१ स्वस्ति शरभपुराद् [। ❀] द्वि (वि) क्कमोपनतसामन्तचूडामणिप्रभाप्रसेका-
२ म्बुभिर्धौतपादयुगलो रिपुविलासिनीसीमन्तो (न्तो) द्धरणहेतु-
३ र्व्वसुवसुधागोप्रद :² परमभागवतो मातापितृपा-
४ दानुध्यातः श्रीजयराजः पूर्व्वराष्ट्रीयपम्वां प्रति-
५ वासिकुटुं (टु) म्बिनः ¹ स्समाज्ञापयति । विदितमस्तु वो यथा-

द्वितीय पत्र; प्रथम बाजू

६ स्माभिरयं ग्रामस्त्रिदशपतिसदनसुखप्रतिष्ठाकरो याव-
७ द्रविशशितारा किरणप्रतिहतघोरांधकारं जग [द ❀] वतिष्ठते

---

१. यह विसर्ग अनावश्यक है ।
२. यह विसर्ग अनावश्यक है ।

८ तावदुपभोग्यस्तनिधिस्तोपनिधिरचाटभटप्रावेश्यस्त-
९ र्यंकरविसर्ज्जितः वाजसनेयकौण्डिन्यसगोत्रब्रह्मदेव-
१० स्वामिने¹ मातापित्रोरात्मनश्च पुण्याभिवृद्धये । उदकपूर्व्वं

द्वितीय पत्र; द्वितीय बाजू

११ ताम्र (ताम्र) शासनेनातिसृष्टः [। ❀] ते यूयमेवमुपलभ्यास्याज्ञाश्रवण-
१२ विधेया भूत्वा यथोचितं भोगभागमुपनयन्तः² सुखं प्रतिवस्त्य-
१३ थ [। ❀] भविष्यतश्च भूमिपालनुदर्शयति । दानाद्विशिष्टम-
१४ नुपालनं पुरा³ । धर्म्मेषु निश्चितधिय प्रवदन्ति धर्म्म (धर्म्मम्) ।
१५ तस्माद्वि (द्वि) जाय सुविशुद्धकुलश्रुताय ।⁴ दत्ता भुवं भवतु वो म[ति ❀] रे-

तृतीय पत्र; प्रथम बाजू

१६ व गोप्तु [ ] । [। १ ❀] तद्भवद्भिरप्येषा दत्तिरनुपालयितव्या । व्यासगीतांश्चात्र
१७ श्लोकानुदाहरन्ति । अग्नेरपत्यं प्रथमं सुवर्ण्णं भूर्व्वैष्णवी⁵ सू-
१८ र्य्यसुताश्च गावः [। ❀] दत्तास्त्रयस्तेन भवन्ति⁶ लोके यश्च काञ्चनं गां-
१९ च महीं च दद्यात् [॥२॥ ❀] षष्टिवर्षसहस्राणि स्वर्ग्गे वसति भूमिदः [।
२० आच्छेत्ता चानुमन्ता च तान्येव नरके वसे[त् ॥३॥ ❀] स्वदत्तां परदत्तां वा य-

तृतीय पत्र; द्वितीय बाजू

२१ [त्नाद्र] क्ष युधिष्ठिर । महीं महिमतांच्छ्रेष्ठ दानाच्छ्रेयोनुपालनं (नम्) [॥४॥ ❀]
२२ [ब] हुभिर्व्वसुधा दत्ता राजभिस्सगरादिभिः । यस्य⁷ यदा भूमिस्त-
२३ स्य तस्य तदा फलमिति स्वमु [ख़ाज्ञ] या उत्कीर्ण अच-

---

१. यह दण्ड अनावश्यक है।
२. यह दण्ड अनावश्यक है।
३. 'नयन्तः' बांचिये।
४. यह दण्ड अनावश्यक है।
५. यह दण्ड अनावश्यक है।
~~६. 'भूर्व्वैष्णवी' बांचिये।~~ (correctly read)
७. 'भवन्ति' बांचिये।
८. 'यस्य यस्य' बांचिये।

२४ लसिङ्घेन[1] प्रवर्द्धमानविजयसम्वत्सरे ५ मार्गशिर २० ५

मुद्रा

१ प्रसन्न [हृदयस्यैव विक्रमाक्रांतविद्विषः] [। ❀]
२ श्रीमतो जय [राजस्य शासनं रिपुशासनम्] [॥ ❀]

अनुवाद

स्वस्ति। शरभपुर से। विक्रम के द्वारा उपनत (किये गये) सामन्तों के चूड़ामणि की प्रभा से बहते हुये जल से जिनके चरणयुगल धोये गये हैं; जो शत्रुओं की स्त्रियों की मांग के उद्धरण के हेतु हैं; धन, भूमि और गायों का दान करते हैं; परम भागवत हैं; (और) माता पिता के चरणों का ध्यान करते हैं; (वे) श्री जयराज, पूर्वराष्ट्र में (स्थित) पम्बा (ग्राम) में बसने वाले कुटुम्बियों को समाज्ञापित करते हैं—

आपको विदित हो कि हमने, इन्द्रपुरी के सुख की प्रतिष्ठा करने वाला यह ग्राम जब तक रवि, शशि और तारागण की किरणों से जिसका घोर अंधकार नष्ट हुआ है (वह) जगत है, तब तक निधि और उपनिधि समेत, चाटों और भटों के प्रवेश से रहित, (और) सभी प्रकार के कर से छूट समेत उपभोग करने के लिये वाजसनेय शाखा और कौण्डिन्य गोत्र के ब्रह्मदेव-स्वामी को, माता पिता और अपने पुण्य की अभिवृद्धि के लिये जलपूर्वक ताम्रशासन से दिया है। इसलिये आप लोग ऐसा जानकर आज्ञा सुनने के अनुसार कार्य करनेवाले बन कर यथोचित भोग-भाग (इन्हें) भेंट करते हुये सुख से रहें। भविष्य के राजाओं को भी बताते हैं—

"धर्म में निश्चित बुद्धि वाले (धर्मात्मा) दान की अपेक्षा पुराने (दान) का अनुपालन करने को विशिष्ट धर्म कहते हैं; इसलिये जिसका कुल और ज्ञान सुविशुद्ध है (उस) ब्राह्मण को दी गई भूमि की रक्षा करने की ही आपकी मति हो। १।"

इस प्रकार आप भी इस दान का अनुपालन करें—
और यहां व्यास के रचे श्लोकों का उदाहरण देते हैं—

"अग्नि का प्रथम पुत्र सोना है, भूमि विष्णु की (पत्नी है), और गायें सूर्य की पुत्रियां हैं; इसलिये जो सोना, भूमि और गायों का दान करता है, वह तीनों लोकों का दान कर लेता है।२। भूमि का दान करने वाला साठ हजार वर्ष तक स्वर्ग में आनन्द करता है और छुड़ाने वाला तथा (उसका) अनुमोदन करने वाला उतने ही वर्षों तक नरक में वास करेंगे।३। हे युधिष्ठिर! अपनी दी हुई या दूसरों की दी हुई भूमि की यत्न से रक्षा करो, (क्योंकि) हे भूमिधारियों में श्रेष्ठ! दान की अपेक्षा अनुपालन श्रेय है।४। सगर इत्यादि बहुत से राजाओं ने भूमि का दान किया, (किन्तु) जब जिसको भूमि होती है तब फल उसे ही मिलता है।'

---

१. 'सम्वत्सरेण' बांचिये।

इस प्रकार (राजा के) स्वमुख (से दी गई) आज्ञा से अचलसिंह ने उत्कीर्ण किया। प्रवर्द्धमान विजयसंवत् ५ मार्गशीर्ष २५।

मुद्रा

प्रसन्न को हृदय (के समान प्यारे) और विक्रम से शत्रुओं को आक्रांत करने वाले, श्रीमान् जयराज का शासन शत्रुओं को शासित करने वाला है।

५. सुदेवराज का खरियार में प्राप्त ताम्रपत्रलेख :(राज्य) वर्ष २

(चित्रफलक दस, ग्यारह और बारह)

मुद्रासमेत ये तीन ताम्रपत्र रायपुर से १८५ किलोमीटर दूर खरियार में प्राप्त हुये थे। इस लेख को स्टेन कोनो ने एपिग्राफिआ इण्डिका, जिल्द नौ (पृ० १७० इत्यादि) में प्रकाशित किया था।

तीनों ताम्रपत्रों में से प्रत्येक की चौड़ाई १४ से० मी० और ऊंचाई ८ से० मी० है। तीनों के ही बायें ओर के हासियों में एक एक चौकोर छेद है जिनमें छल्ला पड़ा हुआ है। इस छल्ले के दोनों छोर राजमुद्रा से जुड़े हुये थे। मुद्रा ढालकर बनाई गई है। उसका व्यास ७·५ से० मी० है। मुद्रा के उपरले आधे भाग में पूर्ववत् खड़ी हुई गजलक्ष्मी की प्रतिमा है और नीचे के आधे भाग में दो पंक्तियों का लेख है। तीनों ताम्रपत्रों, छल्ले और मुद्रा का वजन कुल मिलाकर १०४५ ग्राम है।

लेख में कुल २३ पंक्तियां हैं। प्रथम पत्र, द्वितीय पत्र के दोनों बाजू और तृतीय पत्र के प्रथम बाजू पर ५-५ पंक्तियां उत्कीर्ण हैं किन्तु तृतीय पत्र के द्वितीय बाजू पर केवल ३ ही पंक्तियां हैं। लिपि पेटिकाशीर्षक अक्षरों वाली ब्राह्मी है तथा भाषा संस्कृत। शापाशीर्वादात्मक भाग और मुद्रा का लेख पद्य में और शेष भाग गद्य में है।

यह दानपत्र सुदेवराज ने (जो महासुदेवराज भी कहलाता था) अपने राज्यकाल के दूसरे वर्ष में श्रावण दिनांक २९ को शरभपुर से दिया था। इसमें क्षितिमण्डाहार में स्थित नवन्नक और शाम्बिलक, इन दोनों गांवों के निवासियों से कहा गया है कि ये दोनों गांव हमने (सुदेवराज) वाजसनेय शाखा के कौशिकगोत्रीय विष्णुस्वामी को अपने माता पिता और निज के पुण्य की वृद्धि के लिये ताम्रशासन से दान में दिये हैं। इन दोनों गांवों को कर से मुक्त कर दिया गया है; इनमें चाटों और भटों का प्रवेश निषिद्ध है तथा इनमें प्राप्त सभी प्रकार की निधियों और उपनिधियों का अधिकार विष्णुस्वामी को दे दिया गया है; इसलिये आप लोग उन्हें यथोचित भोग-भाग भेंट करते रहें।

इस दानपत्र को राजा की आज्ञा से द्रोणसिंह ने ताम्रपत्रों पर उत्कीर्ण किया था।

मुद्रा के लेख से ज्ञात होता है कि सुदेवराज मानमात्र का बेटा और प्रसन्न का नाती था। इन दोनों और सुदेवराज की राजधानी शरभपुर के बारे में ऊपर बताया जा चुका है।

सुदेवराज के प्रस्तुत ताम्रलेख को मिलाकर, अब तक छह ताम्रपत्रलेख प्राप्त हो चुके हैं। इनमें से एक लेख में उसके पिता का नाम दुर्गराज भी बताया गया है जबकि अन्य लेखों से संलग्न मुद्राओं से उसके पिता का नाम मानमात्र ज्ञात होता है। मानमात्र और दुर्गराज ये जयराज के ही नाम थे, यह ऊपर बताया जा चुका है।

रायपुर में प्राप्त एक ताम्रपत्रलेख में सुदेवराज के १० वें राज्य वर्ष का उल्लेख है जिससे उसके कम से कम १० वर्ष तक राज्य करने की सूचना मिलती है। उसने शरभपुर और श्रीपुर (वर्तमान सिरपुर, जिला रायपुर), दोनों ही स्थानों से दानपत्र दिये थे जो बताते हैं कि वे दोनों उसकी राजधानियां थीं।

इस लेख में जिन स्थानों का उल्लेख हुआ है, उनमें से शरभपुर के बारे में ऊपर चर्चा की जा चुकी है। नवन्नक, खरियार से ५ किलोमीटर दक्षिण में स्थित वर्तमान नहना ग्राम हो सकता है। अन्य स्थानों के बारे में पता नहीं चलता।

मूल पाठ

पंक्ति प्रथमपत्र

१ स्वस्ति। शरभपुराद्विक्रमोपनतसामन्तमकुटचूडामणि-
२ प्रभाप्रसेकाम्बुधौतपादयुगलो रिपुविलासिनीसीमन्तोद्धरण-
३ हेतुर्व्वसुवसुधागोप्रद ⌣ परमभागवतो मातापितृपादानुध्या-
४ तश्श्रीमहासुदेवराजः क्षितिमण्डाहारीयनवन्नके च तत्प्रावेश्य-
५ शाम्बिलकयो ⌣ प्रतिवासिकुटुम्बिनस्समाज्ञापयति। विदितमस्तु

द्वितीय पत्र; प्रथम बाजू

६ वो यथास्माभिरेतत्ग्रामद्वयं तृ (त्रि) दशपतिसदनसुखप्रतिष्ठाकरो याव-
७ द्रविशशितारा किरणप्रतिहतघोरांधकारं जगदवतिष्ठते तावदुप-
८ भोग्यस्सनिधिस्सोपनिधिरचाटभटप्रावेश्यस्सर्व्वकरविसर्ज्जि-
९ तो मातापित्रोरात्मनश्च पुण्याभिवृद्धये वाजिसनेयकौशिकसगोत्र-
१० विष्णुस्वामिनस्ताम्र[1] शासनेनातिसृष्ट: [। ❀] ते यूयमेवमुपलभ्यास्या-

१. 'ताम्र' बांचिये।

द्वितीय पत्र; द्वितीय बाजू

११ श्रावणविद्युद्भूत्वा यथोचितं भोगभागमुपनयन्तस्सुखं प्रति-
१२ वस्स्यथ [। ❀] भविष्यतश्च भूमिपालानुदर्शयति [। ❀] दानाद्विशिष्टमनुपा-
१३ लनजं[1] पुरातनै धर्म्मवु निश्चितधिय प्रवदन्ति धर्म्मम् । तस्मा [द् ❀] द्विजा-
१४ य सुविशुद्धकुलभूताय दत्तां भुवं भवतु वो मतिरेव गोप्तु [म् ❀] । [१ ❀]
१५ तद्भूर्वद्भिरप्येषा दत्तिरनुपालयितव्या । व्यासगीतांश्चात्र श्लोकानु-

तृतीय पत्र; प्रथम बाजू

१६ दाहरन्ति । अग्नेरपत्यं प्रथमं सुवर्ण्णं भूर्व्वैष्णवी[2] सूर्य्य-
१७ सुताश्च गाव : [। ❀] दत्तास्त्रयस्तेन भवन्ति लोके यम्काञ्चनं[3] गां च महीं च द-
१८ द्यात् [। ।२। ❀] षष्टिवर्षसहस्राणि स्वर्ग्गे मोदति भूमिद : [। ❀] आच्छेत्ता
१९ चानुमन्ता च तान्येव नरके वसेत् [।३। ❀] बहुभिर्व्वसुधा दत्ता राजभि-
२० स्सगरादिभिः [। ❀] यस्य यस्य यदा भूमिः तस्य तस्य तदा फलं (लम्) [।४। ❀]

तृतीय पत्र; द्वितीय बाजू

२१ स्वदत्तां परदत्तां वा यत्नाद्रक्ष युधिष्ठिर महीम्महिमताञ्छ्रेष्ठ
२२ दानाच्छ्रेयोनुपालनमिति स्वमुखाज्ञया संव्वत्सर २ श्रावण दि २० ९
२३ उत्कीर्ण्णं ताम्रशासनं द्रोणसिंहेन

मुद्रा

१ प्रसन्नार्ण्णवसंभूतमानमात्रेन्दुजन्मनः ।
२ श्रीम [सुदेव] राजस्य स्थिरं जगति [शासनम्] ॥

अनुवाद

स्वस्ति । शरभपुर से । विक्रम के द्वारा उपनत (किये गये) सामन्तों के मुकुट में लगे चूडामणियों की प्रभा से बहते हुए जल से जिनके पादयुगल धोये गये हैं; जो शत्रुओं की स्त्रियों की मांगके उद्धरण के हेतु हैं ; धन, भूमि और गायों का दान देते है ; परम भागवत हैं; माता पिता के चरणों का ध्यान करते हैं; (वे) श्री सुदेवराज क्षितिमण्डाहार(में स्थित) नवन्नक और उसमें प्रवेश्य शाम्बिलक, (इन दोनों गांवों) में बसने वाले कुटुम्बों को समाज्ञापित करते हैं—

---

१. 'नं' अक्षर छूट जाने से नीचे लिखा है ।
२. भूर्व्वैष्णवी' बांचिये ।
३. 'यः काञ्चनं' बांचिये ।

आपको विदित हो कि इन्द्रपुरी के समान सुख और प्रतिष्ठा देने वाले ये दोनों ग्राम, हमने, जब तक सूर्य, चन्द्र और तारागण की किरणें जगत के घोर अंधकार को नष्ट करती हैं तब तक, निधियों और उपनिधियों समेत, चाटों और भटों के प्रवेश से वर्जित और सब प्रकार के करों से मुक्त उपभोग के लिए, वाजसनेय कौशिक गोत्र के विष्णुस्वामी को माता पिता और अपने पुण्य की अभिवृद्धि के लिए ताम्रशासन से दिये हैं। इसलिए आप लोग यह जानकर आज्ञा सुनने के अनुसार कार्य करके यथोचित भोग–भाग (इनको) भेंट करते हुये सुख से वास करें। भविष्य के राजाओं को भी बताते हैं—

"धर्म में निश्चित बुद्धिवाले (धर्मात्मा) दान की अपेक्षा पुराने (दान) का अनुपालन करने में विशिष्ट धर्म बताते हैं, इसलिए जिसका कुल और ज्ञात सुविशुद्ध है (उस) ब्राह्मण को दी गई भूमि की रक्षा करने की ही आपकी मति हो।१।"

इसलिये आप लोग भी इस दान का अनुपालन करें।

व्यास के रचे हुए श्लोकों का यहां और उदाहरण देते हैं—

"सुवर्ण अग्नि का प्रथम पुत्र है, भूमि विष्णु की पत्नी है और गायें सूर्य की बेटियां हैं, इसलिये जो स्वर्ण भूमि और गायों को दान में देता है, वह तीनों लोकों का दान कर लेता है।२। भूमि का दान करने वाला साठ हजार वर्ष तक स्वर्ग में आनन्द लेता है (और) छुड़ानेवाला तथा (उसका) अनुमोदन करने वाला उतने ही वर्षों तक नरक में वास करेंगे।३। सगर इत्यादि बहुत से राजाओं ने भूमि का दान किया था (किन्तु) जब जिसकी भूमि होती है तब फल उसी को मिलता है।४। हे युधिष्ठिर! अपनी दी हुई हो, या दूसरों की दी हुई, भूमि की यत्न से रक्षा करो (क्योंकि) हे भूमिधारियों में श्रेष्ठ! दान की अपेक्षा अनुपालन श्रेय है।५।"

इस प्रकार (राजा के) स्वमुख (से दी गई) आज्ञा से संवत् २ श्रावण दिन २६ (को) द्रोणसिंह ने ताम्रशासन उत्कीर्ण किया।

मुद्रा

प्रसन्न रूपी समुद्र से उत्पन्न मानमात्र रूपी चन्द्रमा से जन्म लेने वाले श्रीमान् सुदेवराज का शासन जगत में स्थिर है।

६. सुदेवराज का आरंग में प्राप्त ताम्रपत्रलेख : (राज्य) वर्ष ८

(चित्रफलक तेरह, चौदह और पंद्रह)

राजमुद्रा समेत ये तीनों ताम्रपत्र रायपुर से ३५ किलो दूर स्थित आरंग में भाधिरथि सौनकर के पास थे। वे नागपुर के केन्द्रीय संग्रहालय के लिए अवाप्त किये गये और वहां से

इस संग्रहालय में स्थानान्तरित किये गये हैं। इस लेख का उल्लेख रायबहादुर डाक्टर हीरालाल ने इन्स्क्रिप्शन्स इन सी० पी० एंड बरार(क्र० १७७-ए)में किया था। बाद में स्वर्गीय पंडित लोचनप्रसाद जी पाण्डेय ने इस लेख को एपिग्राफिग्रा इण्डिका, जिल्द तेईस (पृ० १९ इत्यादि) में प्रकाशित किया।

तीनों ताम्रपत्रों में से प्रत्येक की चौड़ाई १०.५ से० मी० और ऊंचाई ८ से० मी० है। तीनों के ही बायें हासिये में एक एक गोल छेद है जिसमें छल्ला पड़ा हुआ है। छल्ले के दोनों छोर मुद्रा से जुड़े हुए थे। मुद्रा ढाल कर बनाई हुई है। और उसका व्यास ८.५ से० मी० है। मुद्रा के उपरले आधे भाग में खड़ी गजलक्ष्मी की प्रतिमा है और नीचे के आधे भाग में दो पंक्तियों का लेख है। तीनों ताम्रपत्रों, छल्ले और मुद्रा का वजन कुल मिलाकर १०८० ग्राम है।

लेख में २६ पंक्तियां हैं। उनमें से प्रथम पत्र और द्वितीय पत्र के प्रथम बाजू पर ५–५, द्वितीय पत्र के द्वितीय बाजू और तृतीय पत्र के प्रथम बाजू पर ६–६ तथा तृतीय पत्र के द्वितीय बाजू पर ४ पंक्तियां उत्कीर्ण हैं। लिपि पूर्वोक्त क्रमांक ५ जैसी है और भाषा भी उसी की भांति गद्यपद्यमय संस्कृत है।

यह दानपत्र सुदेवराज ने अपने राज्यकाल के आठवें वर्ष में वैशाख दिनांक २९ को शरभपुर से दिया था। लेख में तोसड्ड भुक्ति में स्थित शिवलिङ्गिक ग्राम के निवासियों को बताया गया है कि यह ग्राम प्रतिहार भोगिल्ल ने अपने माता पिता और निज के पुण्य की वृद्धि के लिए इस प्रकार दान किया है-कात्यायन गोत्र और माध्यन्दिन शाखा के वाजसनेय यज्ञस्वामी को डेढ़ भाग; भारद्वाज कुमारवत्स और अत्रि, कण्व तथा वाजसनेय (प्रवरों वाले) यज्ञस्वामी को एक एक भाग; और कात्यायन विशाखस्वामी, तथा माध्यन्दिन शाखा के कौशिक (गोत्रीय) गोलस्वामी, दामोदरस्वामी, दामस्वामी, भारद्वाज पञ्चालिस्वामी तथा दीक्षित अधनीक, (इन छह) को चौथाई-चौथाई भाग-। इसे हमने (राजा सुदेवराज ने) अनुमोदित किया है। इसलिए आप लोग (ग्रामवासी) उनको यथोचित भोग और भाग भेंट करते रहें।

इस लेख को राजा की आज्ञा से द्रोणसिंह ने ताम्रपत्रों पर उत्कीर्ण किया था।

लेख से दो नई बातों की सूचना मिलती है। एक तो यह कि निर्दिष्ट ग्राम का दान प्रतिहार भोगिल्ल ने किया था और राजा ने उस दान का अनुमोदन करके ग्रामवासियों को आज्ञा दी थी कि दान पाने वालों को यथोचित भोगभाग भेंट करते रहें। दूसरी महत्त्वपूर्ण सूचना ग्राम के बटवारे में मिलती है।

इस लेख में उल्लेख प्राप्त स्थानों में से शरभपुर के बारे में ऊपर बताया जा चुका है। शिवलिङ्गिक का पता नहीं चलता किन्तु तोसड्ड, आरंग से आग्नेय कोण में ५० किलोमीटर पर धुमरपल्ली के निकट स्थित वर्तमान तुसड़ा ग्राम हो सकता है।

मूलपाठ

पंक्ति

प्रथम पत्र

१ ओं[1] स्वस्ति शरभपुराद्विक्रमोपनतसामन्तमकुटचूडामणिप्रभाप्र-
२ सेकाम्बुधौतपादयुगलो रिपुविलासिनीसीमन्तोद्धरणहेतु:[2]
३ र्व्वसुवसुधागोप्रद ⌒ परमभागवतो मातापितृपादानुद्ध्यात-
४ श्श्रीमहासुदेवराजः तोसद्द (ड्ड) भुक्तीयशिविलिङ्गके प्रतिवासि-
५ कुटुम्बिनस्समाज्ञापयति । विदितमस्तु वो यथायं ग्राम-

द्वितीय पत्र; प्रथम बाजू

६ स्त्र (स्त्रि) दशपतिसदनसुखप्रतिष्ठा [क] रो यावद्रविशशिताराकिरणप्रति-
७ हतघोरान्धकारं[3] जगदवतिष्ठते तावदुपभोग्यस्सनिधिस्सोपनिधि-
८ रचाटभट[4] प्रावेश्यस्सर्व्वकरविसर्ज्जितः[5] ⌒ प्रतिहारभोगिल्लेन माता-
९ पित्रोरात्मनश्च पुण्याभिवृद्धये कात्यायनसगोत्रमाध्यन्दिनवाज-
१० सनेय यज्ञस्वामिनः (ने) अध्यर्द्धाङ्शेन भारद्वाजकुमारवत्स भा (वत्सा) त्रे-

द्वितीय पत्र; द्वितीय बाजू

११ यकाण्ववाजसनेययज्ञस्वामिन प्रत्यङ्शेन कात्यायनविशाख-
१२ स्वामिकौशिकम (मा) ध्यन्दिनगोलस्वामि एवं दामोदरस्वामि दामस्वामि
१३ भारद्वाजपञ्चालिस्वामि दीक्षितायनीका (नृ) प्रत्यर्द्धाङ्शेन ताम्ब[6]शास-
१४ नेनातिसृष्टो भूत्वास्माभिरनुमोदितः [। ❀] ते यूयमेवमुपलभ्यैषा-
१५ माज्ञाश्रवणविधेया भूत्वा यथोचितं भोगभागमुपनयन्तस्सुखं
१६ प्रतिवत्स्यथ । भविष्यतश्च भूमिपाननुदर्शयति [। ❀ वा] नाद्विशिष्ट-

तृतीय पत्र; प्रथम बाजू

१७ मनुपालनजं पुराणे धम्मेषु[7] निश्चितधिय ⌒ प्रवदन्ति धर्मं [। ❀] तस्माद्वि (द्वि)-

---

१. प्रतीक द्वारा सूचित ।
२. यह विसर्ग अनावश्यक है।
३. 'र' नीचे लिखा है।
४. 'ट' नीचे लिखा है।
५. यह विसर्ग अनावश्यक है।
६. 'ताम्र' वाँचिये ।
७. 'धर्मेषु' वाँचिये ।

१८ नाय सुविशुद्धकुलभूताय दत्तां भुवं भवतु वो मतिरेव गोप्तु (प्तुम्) ॥ [१ ॥ ❀]

१९ तद्भवद्भिरप्येषा दत्तिरनुपालयितव्या [। ❀] व्यासगीतांश्चात्र श्लोकानु-

२० दाहरन्ति [। ❀] अग्नेरपत्यं प्रथमं सुवर्णं भूर्व्वैष्णवी सूर्य्यसु-

२१ ताश्च गावः [। ❀] दत्तास्त्रयस्तेन भवन्ति लोका यम्काञ्चनं[1] गाव मही च दद्यात् [॥२॥ ❀]

२२ षष्टिर्वर्षसहस्राणि स्वर्गे मोदति भूमिदः आच्छेत्ता चानुमन्ता च ता-

तृतीय पत्र; द्वितीय बाजू

२३ न्येव नरके वसे [त् ॥ ३॥ ❀] बहुभिर्व्वसुधा दत्ता राजभिस्सगरादिभि [: । ❀]

२४ यस्य यस्य यदा भूमि तस्य तस्य तदा फल (लं) [॥ ४॥ ❀] स्वदत्तां परदत्तां वा यत्ना-

२५ द्रक्ष युधिष्ठिर [। ❀] महीम्महिमताञ्छ्रेष्ठ च्छ्रेयो[2]नुपालनमिति स्वमु-

२६ खाज्ञ (ज्ञ) या संव्वत ८ वैशाख दि २० ९ उत्कीर्ण्णं द्रोणसिघेन[3]

मुद्रा

१ प्रस [न्नार्ण] वसम्भूतवा [न] वाशेन्दुजन्मनः ।

२ श्रीमत्स [ु देवराजस्य शासनं रिपुशासनम् ॥]

अनुवाद

ओम् । स्वस्ति । शरभपुर से । विक्रम के द्वारा उपनत (किये गये) सामन्तों के मुकुट में स्थित चूडामणियों की प्रभा से बहते हुये जल से जिनके चरणयुगल धोये गये हैं; जो शत्रुओं की स्त्रियों की मांग के उद्धरण के कारण हैं; धन भूमि और गायों का दान देते हैं; परम भागवत हैं; माता पिता के चरणों का ध्यान करते हैं; (वे) श्री महासुदेवराज तोसड्ड भुक्ति के शिवलिङ्गिक (ग्राम) में बसने वाले कुटुम्बियों को समाज्ञापित करते हैं —

आपको विदित हो कि इन्द्रपुरी के समान सुख और प्रतिष्ठा देने वाला यह ग्राम प्रतिहार भोगिल्ल ने मातापिता और अपने पुण्य की अभिवृद्धि के लिए, जब तक सूर्य, चन्द्र और तारागण की किरणें जगत के घोर अंधकार को नष्ट करतीं है, तब तक उपभोग करने के लिए,

---

१. 'यः काञ्चनं' बांचिये।

२. "दानाच्छ्रेयो' बांचिये।

३. द्रोणसिंहेन' बांचिये।

निधियों और उपनिधियों सहित, चाटों और भटों के प्रवेश से वर्जित और सब प्रकार के करों से मुक्ति करके, कात्यायन गोत्र और माध्यन्दिन वाजसनेय शाखा के यज्ञस्वामी को डेढ़ भाग; भारद्वाज (गोत्र के) कुमारवत्स, और अत्रि; कण्व तथा वाजसनेय (प्रवरों वाले) यज्ञस्वामी को एक एक भाग; कात्यायन शाखा के विष्णुस्वामी, कौशिक गोत्रीय माध्यन्दिन शाखा के गोलस्वामी, दामोदर स्वामी, दामस्वामी, भारद्वाज पञ्चालिस्वामी तथा दीक्षित अयनीक को चौथाई-चौथाई भाग (इस प्रकार) ताम्रशासन से दिया है और हमने अनुमोदित किया है—

इसलिए आप यह जान कर आज्ञा सुनने के अनुसार कार्य करके यथोचित भोग-भाग (इन लोगों को) भेंट करते हुए सुख से वहां वास करें। भविष्य के राजाओं को भी कहते हैं—

'धर्म में निश्चित बुद्धि वाले दान की अपेक्षा पुराने (दान) के पालन को विशिष्ट धर्म कहते हैं। इसलिए जिसका कुल और ज्ञान सुविशुद्ध है (उस) ब्राह्मण को दी गई भूमि की रक्षा करने की ही आपकी मति हो। १।' इसलिए आप लोग भी इस दान का अनुपालन करेंगे-

और यहां व्यास के कहे श्लोकों का उदाहरण देते हैं—

"अग्नि का प्रथम बेटा सोना है; भूमि विष्णु की पत्नी है और गायें सूर्य की पुत्रियां हैं (इसलिए) जो सुवर्ण, भूमि और गायों का दान देता है, वह तीनों लोकों का दान दे चुकता है।२। भूमि का दान करने वाला साठ हजार वर्ष तक स्वर्ग में आनन्द लेता है और छुडाने वाला तथा (उसका) अनुमोदन करने वाला उतने ही वर्ष नरक में बसते हैं। ३। सगर इत्यादि बहुत से राजाओं ने भूमि का दान किया, (किन्तु) जब जिसकी भूमि होती है तब फल उसे ही मिलता है। ४। हे युधिष्ठिर! अपनी दी हुई हो, या अन्य की दी हुई, भूमि की यत्न से रक्षा करो (क्योंकि) हे भूमिधारियों में श्रेष्ठ! दान की अपेक्षा अनुपालन श्रेय है। ५।"

ऐसा (राजा के) स्वमुख (से दी गई) आज्ञा से संवत् ८ वैशाख दिन २६ (को) द्रोणसिंह ने उत्कीर्ण किया।

मुद्रा

प्रसन्न रूपी समुद्र से उत्पन्न मानमात्र रूपी चन्द्रमा से जन्म लेने वाले श्रीमान् (सुदेवराज का शासन रिपुओं को शासित करने वाला है।)

७. प्रवरराज का मल्लार में प्राप्त ताम्रपत्रलेख : (राज्य) वर्ष ३
(चित्रफलक सोलह, सत्रह और अठारह)

मुद्रासमेत ये तीनों ताम्रपत्र बिलासपुर से २६ किलो दूर बसे मल्लार नामक ग्राम के एक खेत में ईस्वी सन् १९५८ में प्राप्त हुये थे। बिलासपुर के तहसीलदार द्वारा ये मुझे प्राप्त

हुये और तदनंतर इस संग्रहालय के लिये प्राप्त किये गये'। यह ताम्रपत्रलेख मैंने जनरल आफ इंडियन हिस्ट्री, जिल्द उन्तालीस, भाग तीन, दिसम्बर १९५९ (पृष्ठ:२६१-६६) में प्रकाशित किया था।

तीनों ताम्रपत्रों में से प्रत्येक की चौड़ाई १६.५ से० मी०, और ऊंचाई ९ से० मी० है। प्रत्येक पत्र के बायें हासिये में एक वर्गाकृति छेद है जिनमें पड़े हुये छल्ले के दोनों छोर राजमुद्रा से जुड़े हुये थे। मुद्रा ढालकर बनाई हुई है और ८.५ से० मी० व्यास की है। मुद्रा के उपरले आधे भाग में खड़ी गजलक्ष्मी की प्रतिमा है। नीचे के आधे भाग में दो पंक्तियों का एक लेख है और उसके नीचे कलश बना है। यह कलश ठीक उसी प्रकार का है जैसा कि प्रसन्नमात्र और महेन्द्रादित्य के सोने के सिक्कों पर देखा जाता है। तीनों ताम्रपत्रों का वजन ७४४ ग्राम तथा छल्ले और मुद्रा का वजन ३६० ग्राम है।

पूरा लेख २४ पंक्तियों का है। उनमें से प्रथम पत्र पर ६ पंक्तियां, द्वितीय पत्र के प्रथम बाजू पर ६ पंक्तियां, द्वितीय पत्र के द्वितीय बाजू पर ५ पंक्तियां, तृतीय पत्र के प्रथम बाजू पर ६ पंक्तियां और तृतीय के ही द्वितीय बाजू पर केवल १ पंक्ति उत्कीर्ण है। लेख की लिपि पूर्ववत् पेटिकाशीर्षक अक्षरों वाली ब्राह्मी लिपि है किन्तु इसके अक्षरों की बनावट शरभपुरीय राजाओं के लेखों के अक्षरों की अपेक्षा पांडुवंशी तीवरदेव और उसके बेटे नन्न के लेखों से अधिक मिलती है। भाषा संस्कृत है; अन्त में कहे गये शापाशीर्वादात्मक श्लोक और मुद्रालेख को छोड़कर शेष भाग गद्य में है।

यह दानपत्र प्रवरराज ने अपने राज्यकाल के तीसरे वर्ष में पौष दिनांक २ को श्रीपुर से दिया था। लेख में पांसवक्का भोग में स्थित मित्रग्राम के निवासियों को संबोधित करके कहा गया है कि यह गांव हमने (प्रवरराज) अपने माता पिता और निज के पुण्य की अभिवृद्धि के लिये भारद्वाज गोत्रीय बह्‌वृच् (ऋग्वेदी) दामोदरगण के पुत्र शुभचन्द्रस्वामी को दिया है। गांव को सभी प्रकार के कर से छूट देकर तथा उसमें चाटों और भटों का प्रवेश निषिद्ध करके उसकी सभी निधियों और उपनिधियों का अधिकार शुभचन्द्रस्वामी को दे दिया गया है। इसलिये आप लोग उन्हें यथोचित भोग और भाग भेंट करते रहें।

---

१ मल्लार छत्तीसगढ़ का सुप्रसिद्ध प्राचीन स्थान है। वहां निम्न लिखित उत्कीर्ण लेख और प्राप्त हुये हैं :—

१. प्रजापती और भारद्वाजी का ब्राह्मी मूर्तिलेख: प्रो० इ० हि० कां०, १९५३।
२. महाशिवगुप्त का ताम्रपत्रलेख: आगे क्रमांक १०।
३. द्वितीय जाजल्लदेव का शिलालेख, कलचुरि संवत ९१९: आगे क्रमांक २५।
४. जयराज का ताम्रपत्रलेख, राज्य वर्ष ५: अप्रकाशित।
५. जयराज का ताम्रपत्रलेख, राज्य वर्ष ९: अप्रकाशित।
६. व्याघ्रराज का ताम्रपत्रलेख, राज्यवर्ष ४: 'नवभारत' नागपुर, दीपावली विशेषांक १९६०।

इस दानपत्र को गोलसिंह ने उत्कीर्ण किया था। गोलसिंह ने प्रवरराज का ठाकुरदिया से प्राप्त ताम्रपत्रलेख और उसके बड़े भाई सुदेवराज का कौवाताल से प्राप्त ताम्रपत्रलेख भी उत्कीर्ण किये थे।

मुद्रा के लेख से विदित होता है कि प्रवरराज मानमात्र के बेटे थे और उन्होंने अपने ही भुजबल से भूमि अर्जित की थी न कि वंशानुगत राज्य प्राप्त किया था। इस बात की पुष्टि अन्य प्रमाणों से भीहोती है। मानमात्र का जेठा बेटासुदेवराज (प्रवरराज का बड़ा भाई) शरभपुर में राज्य करता था जबकि प्रवरराज की राजधानी श्रीपुर में थी। प्रवरराज के केवल दो ही लेख (प्रस्तुत लेख मिलाकर) मिले हैं और वे दोनों ही उसके राज्यकाल के तृतीय वर्ष के हैं। इससे अनुमान किया जाता है कि उसका राज्य अल्पकालीन था। संभवतः वह अल्पायु था। उसकी मृत्यु के अनंतर उसका राज्य बड़े भाई सुदेवराज ने सम्हाला जिसने शरभपुर और श्रीपुर दोनों स्थानों से दानपत्र दिये थे।

मल्लार से प्राप्त व्याघ्रराज के ताम्रपत्रलेख से विदित होता है कि वह प्रवरराज का छोटा भाई था। उसी लेख से यह भी ज्ञात होता है कि प्रवरराज के पिता का नाम जय था। जय या जयराज और मानमात्र की अभिन्नता के विषय में ऊपर चर्चा की जा चुकी है। व्याघ्रराज के उसी लेख में इनके वंश का नाम अमरार्यकुल बताया गया है।

प्रस्तुत लेख में जिन स्थानों का उल्लेख मिलता है, उनमें से श्रीपुर, रायपुर जिले में स्थित वर्तमान सिरपुर है जो ईंटों के बने लक्ष्मण मंदिर तथा वहां से प्राप्त सुन्दर धातुमूर्तियों के लिये प्रसिद्ध है। शंखचक्रा भोग, बिलासपुर जिले में स्थित चकरबेढ़ा हो सकता है। और मित्रग्राम, उसी जिले में स्थित मतिया (पटवारी वृत्त क्रमांक १३८) नामक वर्तमान गांव।

मूलपाठ

पंक्ति प्रथम पत्र

१ ओं[१] स्वस्ति [। ❀] श्रीपुराद्विक्रमोपनतसामं (म) न्तमकुटचूडामणिप्रभा-
२ प्रसेकाम्बुधौतपादयुगलो रिपुविलासिनीसीमं (म) न्तोद्धरणहे-
३ तुव (र्व्व) सुव्वं (व) सुधागोप्रदः परमभागवतो मातापित्र (तृ) पादानु-
४ ध्यातश्रीमहाप्रवरराजः शङ्खचक्राभोगीयमित्रग्रामके प्र-
५ तिवासिनः समाज्ञापयति [। ❀] विदितमस्तु यथास्माभिरयं ग्रा-
६ मः त्र (त्रि) दशपतिसदनसुखप्रतिष्ठाकरो यावद्रविशशितारा-

---

१. प्रतीक द्वारा सूचित।

द्वितीय पत्र; प्रथम बाजू

७ किरणप्रतिहतघोरान्धकारंजगदवतिष्ठते तावदुपभोग्य:

८ सनिधिस्सोपनिधिरचाटभटप्रावेश्य: सर्व्वकरविसर्ज्जित: मा-

९ तापित्रोरात्मनश्च पुण्याभिव(वृ)द्धये भारद्वाजसगोत्रब(व)ह्वृ(ह्वृ)च बामोद-

१० रग [ण] पुत्रशुभचन्द्रस्वामिने ताम्र (म्र) शासनेनातिसि (सृ) ष्ट:

११ ते युयमेवमुपलभ्याज्ञाश्रवणविधेयो (या) भूत्वा यथोचितं भोग-

१२ भागमुपनयन्तस्सुख (खं) प्रतिवत्स्यथ [। ❀] भविष्यतश्च भू-

द्वितीय पत्र; द्वितीय बाजू

१३ मिपालाननुदर्शयति [। ❀] दानाद्विशिष्टमनुपालनवं पुराणा

१४ धर्म्मेषु निश्चितधियऽप्रवदं(द)न्ति धर्म्मं [। ❀] तस्माद्वि (द्वि) जाय शु (सु) विशु (श) द्धकुल -

१५ श्रुताय दत्ता (त्तां) भुवं भवतु वो मतिरेव गोप्तुम् [॥ १॥ ❀] स (त) त्रुवद्भिरप्येषा

१६ दत्तिरनुपालयितव्या [। ❀] व्यासगीतांश्च श्लोकानुदाहरन्ति [। ❀] अ-

१७ [ग्नेर] पत्यं प्रथमं सुवर्ण्णं भूर्व्वैष्णवी सूर्य्यसुताश्च गाव: [। ❀] दत्ता

तृतीय पत्र; प्रथम बाजू

१८ [स्त्र] यस्तेन भवं(व)न्ति लोका य: काञ्चनं गाञ्च महीञ्च दद्यात् [॥ २॥ ❀] षष्टो(ष्टि)

१९ वर्षसं (स) हस्राणि स्वर्ग्गे मोदति भूमिद: [। ❀] आच्छेता चानुमन्ता च ता-

२० न्येव नरके वसेत् [॥ ३॥ ❀] बहुभिर्व्वसुधा दत्ता राजभिस्सगरादि-

२१ भि: [। ❀] यस्य यस्य यदा भूमि तस्य तस्य तदा फलं (लम्) [॥ ४॥ ❀] स्वदत्ता प-

२२ रदत्ता वा यत्नाद्रक्ष युधिष्ठिर [। ❀] मही महिमतां श्रेष्ठ दानाच्छ्रेयो-

२३ नुपालनमिति ॥ प्रवर्द्धमानविजयसंव्वत्स (त्सर) ३ पौष दि २

तृतीय पत्र; द्वितीय बाजू

२४ उत्कीर्ण्णं गोल्लसिंहे (सिंहे) न ।

मुद्रा

१ मानमात्रसुतस्येदं स्वभुजोपार्ज्जि [तश्रि] ते [: ।]

२ श्रीमत्प्रवरराजस्य [शासनं रिपुशासनम् ॥]

अनुवाद

ओम् । स्वस्ति । श्रीपुर से । विक्रम के द्वारा उपनत किये गये सामन्तों के मुकुटों में लगे चूड़ामणियों की प्रभा से बहते हुये जल से जिनके दोनों चरण धोये गये हैं ; जो शत्रुओं की स्त्रियों की मांग के उद्धरण हेतु हैं ; धन, भूमि और गायों का दान करते हैं ; परम भागवत हैं; माता पिता के चरणों का ध्यान करते हैं ; (वे) श्री महाप्रवरराज शङ्खचक्रा भोग के मित्रग्राम में बसने वाले कुटुम्बों को समाज्ञापित करते हैं ।

आपको विदित हो कि हमने इन्द्रपुरी जैसा सुख और प्रतिष्ठा देने वाला यह ग्राम जब तक सूर्य, चन्द्र और तारागण की किरणें जगत के घोर अंधकार को नष्ट करती है, तब तक निधियों और उपनिधियों समेत, (और) चाटों और भटों के प्रवेश से वर्जित, (और) सब प्रकार के करों से मुक्त उपभोग के लिये, भारद्वाज गोत्र के ऋग्वेदी दामोदरगण के पुत्र शुभचन्द्रस्वामी को माता पिता और अपने पुण्य की अभिवृद्धि के लिये ताम्रशासन से दिया है। इसलिये आप लोग यह जानकर आज्ञा सुनने के अनुसार कार्य करें (और) यथोचित भोग-भाग (इन्हें) भेंट करते हुये सुख से बसें । भविष्य में होने वाले राजाओं को भी बताते हैं —

"धर्म को निश्चित रूप से समझने वाले (लोग), दान की अपेक्षा पुराने (दान) का अनुपालन करने को विशिष्ट धर्म कहते हैं, इसलिये जिसका कुल और ज्ञान सुविशुद्ध है (उस) ब्राह्मण को दी गई भूमि की रक्षा करने की ही आपकी मति हो । १ । इसलिये आप लोग भी इस दान का अनुपालन करें —

व्यास के रचे हुये श्लोकों का यहां और उदाहरण देते हैं —

"सुवर्ण, अग्नि का प्रथम पुत्र है ; भूमि, विष्णु की पत्नी है और गायें सूर्य की बेटियां हैं ; इसलिये जो कोई सुवर्ण, भूमि और गायों का दान देता है वह तीनों लोकों का दान कर लेता है । २ । भूमि का दान करने वाला साठ हजार वर्षों तक स्वर्ग में आनंद लेता है (और) छड़ाने वाला तथा (उसका) अनुमोदन करने वाला उतने ही वर्षों तक नरक में वास करेंगे । ३ । सगर इत्यादि बहुत से राजाओं ने भूमि का दान किया था (किन्तु) जब जिसकी भूमि होती है तब फल उसी को मिलता है । ४ । हे युधिष्ठिर ! अपनी दी हुई हो, या दूसरे की दी हुई, भूमि की यत्न से रक्षा करो, (क्योंकि) हे भूमिधारियों में श्रेष्ठ ! दान की अपेक्षा अनुपालन श्रेय है । ५ ।"
ऐसा —

प्रवर्द्धमान विजय संवत् ३, पौष दिन २। गोलसिंह ने उत्कीर्ण किया।

मुद्रा

अपनी भुजाओं से पृथ्वी का उपार्जन करने वाले (और) मानमात्र के बेटे, श्रीमान् प्रवरराज का यह शासन शत्रुओं को शासित करने वाला है।

पाण्डुवंशी[1] राजाओं के उत्कीर्ण लेख

८. भवदेव रणकेसरी का भांदक से प्राप्त शिलालेख

(चित्रफलक उन्नीस)

इस शिलालेख के प्राप्तिस्थान के बारे में अनेक मत हैं। कहा जाता है कि मेजर विकिन्सन ने इसे चांदा जिले में स्थित भांदक (प्राचीन भद्रावती) से नागपुर के केन्द्रीय संग्रहालय में पहुंचाया था। डाक्टर स्टीवेन्सन ने जरनल आफ बाम्बे ब्रांच आफ रायल सोसाइटी, जिल्द एक (पृष्ठ १४८ इत्यादि) में जब इसका अनुवाद सहित विवरण प्रकाशित किया तो उन्होंने इसका प्राप्तिस्थान भांदक ही बताया था। मेजर जनरल अलेक्जेण्डर कनिंघम ने भी आर्कलाजिकल सर्वे रिपोर्ट, जिल्द नौ (पृष्ठ १२७) में इसके भांदक से ही प्राप्त होने की पुष्टि की है। किन्तु उपर्युक्त नागपुर संग्रहालय में इस शिलालेख का न जाने कैसे रतनपुर से संबंध जुड़ गया। तदनुसार डाक्टर किलहार्न ने रतनपुर के लेख के नाम से जरनल आफ रायल एशियाटिक सोसाईटी सन् १९०५, (पृष्ठ ६१७ इत्यादि) में इसे सम्पादित किया। बाद में पड़ताल करने के पश्चात् रायबहादुर डाक्टर हीरालाल इस निर्णय पर पहुंचे कि प्रस्तुत लेख का सही प्राप्तिस्थान भांदक ही है।[2] इतने पर भी विद्वानों की शंका का समाधान नहीं हुआ और महामहोपाध्याय वासुदेव विष्णु मिराशी ने प्रतिपादित किया कि यह लेख न तो भांदक और न ही रतनपुर से नागपुर लाया गया था बल्कि आरंग (जिला रायपुर) में मिला था क्योंकि नागपुर के रेजिडेण्ट जेन्किन्स द्वारा नियुक्त औरंगाबादकर नामक पंडित ने ऐसा ही शिलालेख आरंग में देखा था[3]। अन्य विद्वान मिराशी जी के इस तर्क से असहमत हैं।

लेख पीलापन लिये हलके लाल रंग के बलुवा पत्थर पर उत्कीर्ण है जिसका बायें ओर का लगभग एक-चौथाई भाग खण्डित है। पत्थर की चौड़ाई १४८ से० मी० और ऊंचाई ६६ से० मी० है। लेख में कुल २० पंक्तियां और तदनुसार विभिन्न छन्दों में निबद्ध ४२ श्लोक हैं। किन्तु जैसा कि ऊपर बताया गया है शिला के खण्डित हो जाने के कारण अधिकांश पंक्तियां अधूरी ही बच रही हैं। लेख की भाषा संस्कृत और लिपि कुटिल अक्षरों वाली नागरी है।

प्रारंभ के चार श्लोकों में मंगलाचरण के रूप में जिन और तायी नाम से भगवान बुद्ध की स्तुति की गई है और कामना की गई है कि वे सब लोगों की रक्षा करें। पांचवें श्लोक में

---

१ यह वंश सोमवंश भी कहलाता था। उड़ीसा के पश्चात्वर्ती सोमवंशी राजाओं से (देखिये आगे क्रमांक ११ और १२) भिन्नता दिखाने के लिये यहां इन्हें पाण्डुवंशी ही कहा गया है।

२ इन्स्क्रिप्शन्स इन सी० पी० एण्ड बरार, द्वितीय संस्करण, क्रमांक १४।

३ एपि० इं०, जिल्द तेईस, पृ० ११६-१७ और जिल्द छब्बीस, पृ० २२७।

सूर्यघोष नामक राजा का उल्लेख है जिसके गुणों और प्रताप का वर्णन बारहवें श्लोक तक किया गया है। इस राजा के वंश का नाम नहीं मिलता। यदि लेख में उसका उल्लेख किया गया था तो वह सातवें श्लोक में रहा होगा जो अब खण्डित हो चुका है। तेरहवां श्लोक बतलाता है कि राजा सूर्यघोष का प्यारा बेटा महल की छत से नीचे गिरकर मर गया जिससे वह बड़ा दुखी हुआ। पंद्रहवें श्लोक में राजा (सूर्यघोष) के द्वारा (शाक्य) मुनि का विशाल धाम निर्माण कराने की सूचना दी गई है।१

बहुत समय के बाद पाण्डव वंश में उदयन राजा हुआ (श्लोक १६)। उसका एक बेटा था (श्लोक १७) किन्तु इस बेटे का नाम खण्डित हो गया है। उदयन का चौथा नाती भवदेव शंकर के समान लोकोपकारी था (श्लोक १९) और वह रणकेसरी (श्लोक २०) तथा चित्तादुर्ग (श्लोक ३२) के नाम से विख्यात था। इस भवदेव की योग्यता और गुणों का विवरण बीसवें से लेकर बत्तीसवें श्लोक तक मिलता है। तेतीसवें श्लोक में भवदेव के सुगत की शरण में जाने की सूचना है। चौंतीसवें और पैंतीसवें श्लोक में (उपर्युक्त पुराने) मंदिर का जीर्णोद्धार कराके उसे नये जैसा बना देने का उल्लेख है। छत्तीसवें श्लोक में मंदिर को विहार कहा गया है और बताया गया है कि वापी, कूप, उद्यान, सभाभवन, अटारी और चैत्य आदि बना दिये जाने से वह बहुत सुन्दर हो गया था। तत्पश्चात् अड़तीसवें श्लोक में इस प्रशस्ति की रचना करने वाले कवि भास्करभट्ट का और चालीसवें श्लोक में नन्नराज नामक अधिपति राजा का नामोल्लेख है।

प्रस्तुत शिलालेख कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है, एक तो इसमें बुद्ध के जिन, तायी और सुगत आदि नामों का उल्लेख है, दूसरे सूर्यघोष नामक प्राचीन राजा के विषय में सूचना मिलती है जो पाण्डुवंशियों से भी पहले राज्य करता था तथा जिसने बुद्धमंदिर का निर्माण कराया था। सब से महत्त्वपूर्ण सूचना पाण्डुवंशी राजाओं के बारे में है। मूल मंदिर निर्माण कराने वाले सूर्यघोष राजा के वंश इत्यादि के बारे में न तो प्रस्तुत लेख में और न कहीं अन्यत्र ही कोई विवरण मिलता है किन्तु उसके गुणों और प्रताप का जिस ढंग से इस लेख में वर्णन किया गया है उससे उसके कोई बड़ा राजा होने का अनुमान होता है।

पाण्डव कुल के उदयन का उल्लेख सिरपुर के एक लेख में२ मिलता है जिसमें उसे इन्द्रबल का पिता कहा गया है। इस इन्द्रबल का उल्लेख करने वाला अंश प्रस्तुत लेख में खंडित हो गया है। इन्द्रबल के चार बेटे थे, जिनमें से अन्तिम भवदेव संभवतः अपने बड़े भाई नन्नराज के सामन्त के रूप में विदर्भ (चांदा जिला) क्षेत्र में राज्य करता था। पाण्डुवंशियों के विदर्भ में राज्य करने की पुष्टि सिरपुर के निकट सेनकपाट नामक ग्राम में उपलब्ध एक अन्य शिलालेख से भी

१ हीरालाल: द्वितीय संस्करण, क्रमांक ११९ (२)।
२ एपि० इं०, जिल्द इकतीस, पृष्ठ ३१ इत्यादि।

होती है जिसमें उनके राज्य का विस्तार वरदा नदी (वर्तमान वर्धा नदी) के तट तक सूचित किया गया है। इन्द्रबल के तीसरे बेटे ईशानदेव का उल्लेख खरोद के लेख में है[1]।

इन्द्रबल के बेटे नन्नराज का निज का कोई लेख आज तक उपलब्ध नहीं हुआ है किन्तु उसके वंशजों के समय के लेखों में कई स्थानों पर उसका उल्लेख किया गया है। इस नन्नराज ने ही अथवा इसके बेटे तीवरदेव ने शरभपुरीय राजाओं को हरा कर दक्षिण कोसल का राज्य प्राप्त किया था[2]। तीवरदेव के अब तक प्राप्त तीनों ताम्रपत्र लेखों[3] में उसे परमभागवत और सकल-कोसलाधिपति कहा गया है किन्तु उसके बेटे (द्वितीय) नन्न के अड़भार ताम्रपत्र लेख[4] से विदित होता है कि तीवरदेव ने अपने भुजबल से कोसल और उत्कल आदि मण्डलों का आधिपत्य उपार्जित किया था। तीवरदेव के बाद उसका उपर्युक्त बेटा द्वितीय नन्न कोसलाधिपति हुआ किन्तु उसके निस्संतान मरने के बाद उसके चाचा (प्रथम नन्न के बेटे और तीवरदेव के भाई) चन्द्रगुप्त को दक्षिण कोसल का राजसिंहासन प्राप्त हुआ। चन्द्रगुप्त के बेटे हर्षगुप्त ने मगध के राजा सूर्यवर्मा की बेटी वासटा से विवाह किया जिससे महाशिवगुप्त बालार्जुन का जन्म हुआ। राजमाता वासटा और बालार्जुन संबंधी विवरण लक्ष्मणमंदिर से प्राप्त शिलालेख (आगे क्रमांक ६) में मिलता है।

मूलपाठ

पंक्ति

१ ओं नम: ॥ अनुत्तरज्ञानचापयुक्तमंत्रशिलामुख : जयत्यजय्यावानीकजयी जिन-धनुर्द्धर : [१ ॥[5]] स्त्रीसंगात्विरतोसि वेत्कच [मि] यं मुक्ति : सदा प्रेयसी सत्त्वार्थैकरसा तथा च करुणा त्वच्चेतसि स्थापिता, दु:खा [न्न्त] रदु ....

२ न पातु व : । [२ ।[5]] निर्जीवश्चेतनावान्हतसकलगतिर्लोकधात्वन्तगामी सर्व्वम्पश्य-त्वदृष्टि : कृतजगदभयो भीतिहेतु : स्मारस्य[6] दीप्तो निर्व्वाण [वा] हो सुरनर [त्र]

---

१ हीरालाल : द्वितीय संस्करण, क्रमांक २०८।

२ 'नन्नराज' नाम युक्त एक लाल पत्थर की मुद्रा सिरपुर में प्राप्त हुई थी; वह रायपुर संग्रहालय के संग्रह में है। किन्तु वह इसी नन्नराज की है या किसी दूसरे की, कहा नहीं जा सकता।

३ राजिम ताम्रपत्र लेख : का० इ० इ०, जिल्द तीन, पृ० २९१ इत्यादि; बलोदा ताम्रपत्रलेख : एपि० इं०, जिल्द सात, पृ० १०६ इत्यादि; और अप्रकाशित बोंडा ताम्रपत्रलेख।

४ एपि० इं०, जिल्द इकतीस, पृ० २१९ इत्यादि।

५ प्रतीक द्वारा सूचित।

६ 'स्मरस्य' पढ़िये।

पितं [लंब्ध- मानो] प्प्रमेय : पायात् तायो चिरम्ब : स विरचितमहाधर्म्म [व] – ⌣
— — ॥[३॥ ❀]......

३ वर्य रक्षतु सर्व्वदा ॥ [४ ॥❀] आसीत्क्षितौ क्षितिपतिर्नृपमौलिमालामाणिक्यभृंगपरि–
चुम्बितपादपद्मः श्रीसूर्य्यघोष इति सूर्य्य इवैकचक्रः यानप्रसाधितजगत्प्रथितोरुधामा
॥ [५ ॥❀] खड्गाय [ष्टया] क्षितो यस्य भ्रमन्नुर्व्वी/न रोचते/अभिवृद्धो रिपुस्त्रीभ्य :
[प्रतापो] ⌣ – ⌣ – ॥ [६ ॥]............

४ [न] मयूख राजितविशि स्फारस्फुरत्तेजसि छायाकम्पितभीरुचेतसि जयंभौमि महा–
सावित्र द्राघीयानुपलक्षित : स विमलो वंशोत्र लब्धोन्नति : ॥ [७ ॥❀] [अदुर्गा]
श्रयिना येन पादसेविक [ता] वता श्रभूतिपरया लोके [धृतान्यैवेश्वरस्थिति : ॥
[८ ॥ ❀] खड्गाक्र][......].

५ त्वं पुरस्तात् मत्तोपीयं तवेष्टा निवसति हृदये भूभृदीशस्य लक्ष्मीरित्येवं यस्य शुद्धा
जलनिधिमविशत्कीर्तिरीर्ष्यांगतेव ॥ [९ ॥ ❀] उद्वृत्तमत्तद्विपकुम्भभेदिना सरक्त-
मुक्ताफलदन्तधारिणा रणे कृपाणेन निशातकोटिना मृगद्विषो यस्य नखाङ्कुरायि–
तम् ॥ [१०॥ ❀] [श] क्तिर्भ्रमति..
....[॥ ११ ॥ ❀]......

६ वीर्य्येण धीरा वीरकुटुम्बिनी नोपसर्पति संरक्षता पद्मा पद्माकरानपि ॥ [१२॥ ❀]
भवनशिखरात्तुङ्गात्पुत्रे निपत्य मृते प्रिये गुरुतरशुचा सम्मग्नोभूत्त भूमिपतिस्तदा ॥
प्रबलमथवा जन्माभ्यस्तं जगत्सुकृतास्पदं सुधमपि जनं कर्तुं प्रेम प्रयास्यति बालिशं ॥
[१३॥ ❀]......

७ ....[॥ १४ ॥] तेन वीऽय कलिभोगभङ्गुरं जीवितं भवसमुद्रलंघिना धाम
कारितमिदं मुनेर्महत्कान्तिनिर्जितहिमाचलद्युति ॥[१५ ॥ ❀] गच्छति भूयसि काले
भूमिपति : क्षपितसकलरिपुपक्षः पाण्डववंशाद्गुणवानुदयननामा समुत्पन्न : ॥[१६॥]

८ स्य तनूजन्मा ॥ [१७ ॥❀] अक्रूरे कृतसंगमेन दधता चक्रं द्विषा भीतिदं दूरोत्सारित-
रौद्रनारकभयेनात्मानमुत्कर्षता ज्येष्ठं चानुयता बलं सुबहुश : शत्रुक्षयं कुर्व्वता कृष्णे–
नेव नृपेन येन धरणेर्भारावतार : कृत : ॥ [१८ ॥] सुविहितवृष– ....

९ लोकोपकारी भव इव भवदेवस्तस्य पुत्रस्तुरीय : ॥ [१९ ॥] कृपाणनखरेणाशु विक्रम्य
दलयन्नरणे अभवद् वैरिमत्तेभान्स एको रणकेसरी ॥ [२०॥] शेष : क्लेयेन मूर्ध्ना

कथमपि धरणीं धारयन्भारगुर्व्वीं शक्त : कम्पात्र पातुं न च कुलगिरयो निश्चलत्वे
स – –[।] ....

१० इव नृपो योष्टमोन्य : कुलाद्रिः ॥ [२१॥ ❀] करग्रहमकृत्वापि मण्डलभ्रमणादिना
अपूर्व्वो यः क्षितेर्भर्त्ता जातो लक्ष्मीपतिर्भवन् [॥२२॥❀] स्वीकृतशिलीमुखेन प्रियेन
हृदयस्य सुरभिना प्राकृवत् मधुनेव येन लोको नवकुसुमे............[॥२३॥ ❀]
....

११ लोकस्य स्वामितां स्थिर : [॥२४॥ ❀] सद्वृत्तोपि धृतायति : पुनरपि प्रारब्धशि-
क्षोद्यमो दोषोन्मूलनतत्पर : प्रतिदिनं पूर्ण : कलावानपि दृष्टः काञ्चनपुञ्जपिञ्ज-
तनुर्यो रक्तवर्णोपि सन् निर्व्वग्धद्विषदिन्धनोपि नितरां दीप्तो नृणां भूतये[॥२५॥❀]
येन......................[॥ २६ ❀]........................

१२ पुरिताशं समुत्थम्य येन सर्व्वत्र वर्षता न क्वचित् वर्षित : पङ्क इति कस्य न विस्मयः
[॥२७॥ ❀] जनाभिरामो नयनाभिनन्दी दानेन कर्ण्णं धिषणं धिया च जयन्स
सत्रावपि सान्त्ववादी गीतो जगत्यप्रियवंशिकाख्य : ॥ [२८ ॥ ❀] येन नग्नग
[क्ष ?]..
...........................[॥२९॥ ❀]...............

१३ यस्य सततं माधुर्य्यमेवाधिकं वृद्धिर्न क्षयमेति नापि च जलैरात्मा भृत : सर्व्वदा
नित्यं नागसनाथतां उपगतो यो न द्विजिह्वाश्रय : स श्रीमान्रणकेसरी विजयतां
रत्नाकर : पञ्चम : ॥ [३०॥ ❀] गाम्भीर्य्यं वारिराशे : स्थितिमवनिभृतां सप्तसं
....

१४ हृतवपुषः सूर्य्यपुत्रस्य दानम् यः स्वैरेतैरजस्रं लघयति रघुणा तुल्यकीर्तिप्रभावः [॥३१॥]
जनयति शत्रुषु चिन्तां योर्थैर्दुर्ग्गैश्च संगरे यस्मात् तेन रणपस्मारोसौ चिन्तादु-
र्गाख्यतामगमत् [॥ ३२ ॥] भूमिर्यस्य प................

१५ सुगतस्य सद्ध ? कृतिना धीरात्मना पालितम् धर्म्मं वा सुरलोकसंगसमुखे को न
त्वरावान्भवेत् [॥ ३३ ॥] तस्य प्रेमाधिवासः श्रुतसुगतवचा वैद्यके चाभियुक्तः शान्तः
शिक्षापदी स्यात् सकलजनहितान्युद्यतो योग्रजन्मा तेनालं जीर्ण्णं ....
.... [॥३४॥]

१६ ब्रह्मचारी नमो बुद्धो जीर्णमेतत्तदाश्रयात् पुनर्न्नूतनत्वमनयद् बोधिसत्त्वसम : कृती
[॥ ३५ ॥] वापीकूपोद्यानशालाट्टचैत्यैः नेत्रानन्दैर्भूषितो भूरिरेव : जित्वा कान्त्या

सर्व्वशोभं विहारो हासोन्मिथोभूविवायं सुधाक्त : [॥ ३६ ॥] ....

१७ वादास्तामिदं वेश्म महज्जिनस्य [॥ ३७ ॥] सद्वर्ण्णजातिसुभगा विद्वन्मिधुकरप्रिया कृता भास्करभट्टेन प्रशस्ति : स्रगिवोज्वला [॥ ३८ ॥]इति कमलदलाम्बुबिन्दुलोलं श्रियमनुचिन्त्य मनुष्यजीवितञ्च सकलमि .... [॥ ३९ ॥].......................

१८ ताव्यक्षिक्षोन्य—[न्नु] स ⏑ ⏑ फणिफणारत्नगोगुप्त——प्रोतुङ्गाम्भस्तरंग-स्फुट⏑⏑⏑भुजालिंगितांगां इमा गां [प्र]—— सङ्गङ्गासलिलकलकलक्षेपदक्षः क्षितीश भ्राजावाजित्य गोप्तार्जनि जगति जयो नन्नराजाधि ——[॥ ४० ॥]— ....

१९ स्याख्यारव्यातकीर्ति मीमांसा दृ— ⏑ पक्षे ललदमलशिखासेखरः कलावह्निः सांख्याख्यया [न] मतद्विपदलनपटु : केसरी विभ्रमत्र [॥ ४१ ॥]- - - - ⏑ - - स्फुटकुमुदरुचेस्तच्छुलस्याद्धभागे : (इव) केशौ वायसानां स्फुरदुरुकरण : सत्रनेकेन —— । ——

अनुवाद

(जिनके) श्रेष्ठ ज्ञान रूपी धनुष पर मैत्री रूपी बाण चढ़ा हुआ है (वे) कामदेव की अजेय सेना को जीतने वाले जिनरूपी धनुर्धर विजयी हैं । १ । स्त्रीसंग से विरत हो, फिर यह मुक्ति सदा (आपकी) प्रेयसी कैसे (बनी है) ? और उसी प्रकार प्राणियों का कल्याण (ही) जिसका एक (मात्र) रस है (वह) करुणा आपके मन में (क्यों) स्थापित है ? अनन्त दुख .... (वे बुद्ध) आप लोगों की रक्षा करें । २ । निर्जीव होने पर भी चेतनावान् हैं ; (संसार की) सब गतियां नष्ट कर चुकने पर भी लोकधातु के अन्त को पहुंच चुके हैं ; आंख न होने पर भी सब कुछ देखते हैं ; संसार को अभय कर दिया है किन्तु कामदेव के भय का कारण हैं ; निर्वाण (दशा) प्राप्त कर के भी दीप्त या प्रकाशवान् हैं ; सुरों और नरों से मान प्राप्त करके भी अमेय हैं ; वे महान धर्म को चलाने वाले तायी (बुद्ध) चिर (काल) तक आप लोगों की रक्षा करें । ३ । .... सर्वदा देश की रक्षा करें । ४।

(इस) पृथ्वी पर सूर्य के समान एक चक्र वाले (और) (धर्म) यान से जगत में प्रख्यात महातेज प्राप्त करने वाले, श्री सूर्यघोष (नामक) राजा हुये जिनके चरणकमल (अन्य) राजाओं के मुकुटों पर पड़ी मालाओं के मानिक रूपी भौंरों द्वारा चूमे जाते थे ।५। जिसके अभिवृद्ध प्रताप का खड्ग-यष्टि पर बैठकर पृथ्वी में घूमना, शत्रुओं की स्त्रियों को रुचता नहीं था .... ।६। ....

किरणों से दिशायें सुशोभित, विस्तृत तेज, छाया (मात्र) से कम्पित भीरु चित........
.... वश से भीम, महाप्राण की भांति यह विमल वंश यहां उन्नति करके और बड़ा बन गया।७। जिस (राजा) ने दुर्गाश्रय न करते हुये, कलावन्तों द्वारा पादसेवा कराते हुये, (और) भूतिपुरुष अर्थात् प्राणियों के प्रति कठोर न बनकर, लोक में दूसरे ही महादेव की स्थिति धारण कर ली थी[1]।८। खड्ग से .... यह लक्ष्मी मेरी अपेक्षा भी इतनी अधिक इष्ट है कि राजा के हृदय में बस गई है, इस प्रकार ही मानों ईर्ष्या के कारण जिस (राजा) की शुद्ध कीर्ति समुद्र में प्रवेश कर गई याने उसकी कीर्ति समुद्र तक फैल गई थी।९।

विगड़ैल मतवाले हाथियों के कुम्भ स्थल को भेदने वाले, (और) रक्तयुक्त मोती तथा दांत धारण करने वाले, तीक्ष्ण धार युक्त कृपाण ने, रण में (जिस सिंह के) नखांकुर के समान आचरण किया[2]।१०। शक्ति घूमती है ....।११। .... पराक्रम से स्थिर होकर वह वीर पत्नी यथा (लक्ष्मी) पद्माकरों को भी नहीं जाती।१२।

ऊंचे भवन की छत से प्रिय पुत्र के गिर कर मर जाने पर वह राजा तब अत्यन्त शोक में डूब गया। ठीक ही है, जन्म (काल) से अभ्यस्त प्रबल प्रेम, (समस्त) पुण्यों के स्थान, बुद्धिमान व्यक्ति को भी मूढ़ बनाने का प्रयास करता है।१३। ....।१४। भव समुद्र को लांघने वाले उस (सूर्यघोष राजा) ने सर्प के फण के समान जीवन को (क्षण) भंगुर देख कर (शाक्य) मुनि का यह, अपनी महान कांति से हिमालय की द्युति को जीत लेने वाला, मंदिर बनवाया।१५।

बहुत समय बाद, पाण्डव वंश में उदयन नामक राजा हुआ जिसने समस्त शत्रुओं की सेनाओं को नष्ट कर दिया था।१६। .... (उस) का बेटा।१७। जिस राजा ने अक्रूर (जनों) से संगम करके, शत्रुओं को डराने वाला चक्र धारण करके, रौद्र नरकभय दूर करके, आत्मा का उत्कर्ष करके, ज्येष्ठ (भाई) बल का अनुयायी बन कर (और) बहुत प्रकार से शत्रुओं का नाश करके, कृष्ण के समान[3] पृथ्वी का भार हलका किया।१८। ....
उस का चौथा बेटा भवदेव भव (शंकर) के समान लोकोपकारी हुआ।१९। शत्रुरूपी मतवाले हाथियों पर कृपाण रूपी नखों से अचानक आक्रमण कर (उन्हें) रण में नष्ट कर, वह एक

---

1. ईश्वर (शंकर) दुर्गाश्रयी है, याने दुर्गा के आश्रय है किन्तु वह राजा अदुर्गाश्रयी याने दुर्गों का आश्रय न लेता था, कलावान् (चन्द्रमा) शंकर के सिर पर रहता है किन्तु कलावान् लोग इस राजा के पैरों की सेवा करते थे, शंकर का शरीर भूति याने राख से परुष है किन्तु वह राजा भूतिपरुष याने प्राणियों के प्रति कठोर अथवा विभूति पाकर कठोर नहीं हुआ था।
2. इस श्लोक में राजा को सिंह और उसके तीक्ष्ण धार वाले कृपाण को सिंह के नखांकुर बनाया गया है। कृपाण में मोती और हाथीदांत लगे हुवे थे।
3. कृष्ण के पक्ष में अक्रूर से संगम, नरकासुर का भय दूर करना, बड़े भाई बलराम का अनुयायी होना, आदि।

(ही) रणकेसरी हो गया ।२०। शेष (नाग) बड़े कष्ट से किसी प्रकार मस्तक पर धारण करके (भी) दोकिल पृथ्वी की कम्प से रक्षा नहीं कर सका और न ही कुलगिरि निश्चल (रख सके) .... के समान जो राजा आठवां अन्य कुलपर्वत (था) ।२१। पाणिग्रहण किये बिना ही (और) मण्डल का चक्कर लगाये बिना जो लक्ष्मी-पति बनकर अपूर्व्व क्षितिभर्त्ता बन गया ।२२। हृदय की सुरभि शिलीमुखों (भौंरों और बाणों) को प्रिय थी .... ।२३। लोक के स्वामित्व में स्थिर ।२४। सद्वृत्त (याने अच्छे आचरण वाला) होने पर भी धृतायति (याने प्रतिष्ठा वाला) था ; गुरु (याने बड़ा) होने पर भी प्रारब्धशिक्षोद्यम (याने भाग्य को शिक्षा देने का उद्यम करने वाला-पुरुषार्थी) था ; दोषोन्मूलनतत्पर (दोषों का उन्मूलन करने वाला) होने पर भी प्रतिदिन सम्पूर्ण कलायुक्त देखा गया ; रक्तवर्ण न होने पर भी सुवर्ण के पुञ्ज जैसे पिंजर शरीर वाला था; और शत्रुरूपी ईंधन जला चुकने पर भी मनुष्यों के सुख के लिये दीप्त था[1] ।२५। जिसने .... ।२६। जिसने ऊंचे उठकर, सर्वत्र वर्षा करके दिशाओं को भर दिया (आशाओं को पूरा कर दिया) किन्तु कहीं कीचड़ नहीं देखा गया, इसमें किसे न आश्चर्य (होगा) ? ।२७। लोगों को प्यारा, आंखों को अच्छा लगने वाला, दान से कर्ण और बुद्धि से शुक्र को जीतने वाला,, शत्रुओं को भी सान्त्वना देने वाला वह संसार में अप्रिय वैणिक नाम से कहा जाता है ।२८। जिसने नग्न .... ।२९।

जिसका माधुर्य सदा अधिक ही बढ़ता जाता है, कम नहीं होता, और न जो जलमय या जड़ है, जो नित्य नागों (हाथियों) का स्वामित्व प्राप्त करके भी दो जीभवालों (चुगलखोरों) का आश्रय नहीं है, यह श्रीमान रणकेसरी (नामक) पांचवा रत्नाकर (समुद्र) विजयी हो ।३०। समुद्र का गाम्भीर्य, पर्वतों की (दृढ़) स्थिति .... कर्ण का दान, (इन सब को) जो रघु के समान कीर्ति और प्रभाव वाला (रणकेसरी) अपने इन .... से निरन्तर छोटा करता रहता है ।३१। चूंकि रण में अपने दुर्गम युद्धकौशल से शत्रुओं को चिन्तित करता रहता है, इसलिये रण में (शत्रुओं का) नाश करने वाले उसने चिन्तादुर्ग नाम पाया ।३२।

जिसकी भूमि .... (उस) धीरात्मा ने सुगत .... (धर्म) पालन किया, सुरलोक दिखाने वाले धर्म (के आचरण) में कौन जल्दबाजी नहीं करता ।३३। उसके प्यारे .... (और) जिसने सुगत की वाणी (धर्म) सुनी है, जो वैद्य है, शान्त और नम्र है, सभी लोगों के हित और अभ्युदय (में तत्पर होने) से जो ब्रह्मा (के समान) है उसने जीर्ण .... ।३४। बुद्ध को नमस्कार, जिनके आश्रय से इस जीर्ण (मंदिर) को बोधिसत्त्व के समान (उस) कृती ने (जीर्णोद्धार करके) पुनः नया बना दिया ।३५। बावड़ी, कुये, उद्यान, बड़े कमरे, अटारी, चैत्य (आदि) नेत्रों को आनंद देने वाली (वस्तुओं से) भली

1. इस श्लोक में विरोधाभास है।

भांति भूषित यह विहार कान्ति से सभी शोभाओं को जीत कर सुधाक्त हासोन्मिश्र सा हो गया था ।३६। .... महान् जिन का यह वेश्म (मंदिर) .... स्थिर हो ।३७। अच्छे वर्णसमूह (के चयन) से सुन्दर (अतएव) विद्वान् रूपी भौरों को प्रिय (लगने वाली) माला के समान उज्ज्वल प्रशस्ति (कवि) भास्करभट्ट ने रची ।३८। इस प्रकार कमल-दल पर पड़ी जल की बूंद के समान लक्ष्मी और मनुष्य जीवन को विचार कर (और) (ऊपर कही) यह सब (बातें समझ कर लोग दूसरों की कीर्ति का लोप नहीं करें) ।३९।

.... इस पृथ्वी को रणभूमि में जीतकर विजयी नन्नराज नामक भूमिपति (उस का) पालन करने वाला हुआ .... ।४०।

९. राजमाता वासटा का लक्ष्मण मंदिर (सिरपुर) से प्राप्त शिलालेख
(चित्रफलक बीस)

प्रस्तुत शिलालेख रायपुर जिले के सिरपुर (प्राचीन श्रीपुर) नामक गांव में बने लक्ष्मण मंदिर नामक ईंटों के बने प्राचीन मंदिर के खण्डित मण्डप का मलबा साफ करते समय प्राप्त हुआ था। इसे रायबहादुर डाक्टर हीरालाल ने एपिग्राफिआ इण्डिका, जिल्द ग्यारह (पृष्ठ १८४ इत्यादि) में प्रकाशित किया है। यह लाल रंग के बलुवा पत्थर पर उत्कीर्ण है जिसकी चौड़ाई ११४ से० मी० और ऊंचाई ६८ से० मी० है। लेख में २६ पंक्तियां हैं। प्रारंभ में 'ओं नमः पुरुषोत्तमाय' है। उसको छोड़कर पूरा लेख छन्दोबद्ध है और इसमें विभिन्न छन्दों में रचे गये ४२ श्लोक हैं। लिपि छठी शती ईस्वी में प्रचलित कुटिल अक्षरों वाली नागरी है।

प्रशस्ति पुरुषोत्तम को नमस्कार करके प्रारंभ होती है। फिर विष्णु के वामन और नृसिंह अवतार की स्तुति की गई है। चौथे श्लोक में बताया गया है कि चंद्रवंश में चन्द्रगुप्त राजा हुआ। इसके बड़े भाई (संभवतः तीवरदेव) के संबंध में छठे श्लोक में सूचना मिलती है किन्तु उसका नाम नहीं दिया गया है। आठवें और नौवें श्लोकों से ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त का बेटा हर्षगुप्त था। बारहवें श्लोक में हर्षगुप्त के बेटे महाशिवगुप्त का उल्लेख है जिसने अपने छोटे भाई रणकेसरी द्वारा अपने राज्य का विस्तार किया था। तेरहवें श्लोक में बताया गया है कि अस्त्रों के चलाने में निपुण होने से महाशिवगुप्त को बालार्जुन भी कहा जाता था।

महाशिवगुप्त की माता का नाम वासटा था। वह मगध के राजा सूर्यवर्मा की बेटी थी। (श्लोक १५-१६)। वासटा के सतीत्वमय वैधव्य जीवन का वर्णन सत्रहवें से लेकर उन्नीसवें श्लोक तक किया गया है और बीसवें श्लोक में सूचित किया गया है कि अपने वैष्णव पति की स्मृति में राजमाता वासटा ने हरि (विष्णु) के इस मंदिर का निर्माण कराया। स्पष्ट है कि वासटा द्वारा निर्मित विष्णुमंदिर सिरपुर के लक्ष्मणमंदिर के अतिरिक्त दूसरा नहीं है। पंक्ति १६ में प्रशस्ति की रचना करने वाले कवि ईशान का नामोल्लेख है जिसका उपनाम चितातुरांक था।

प्रशस्ति के उत्तरार्ध में उस व्यवस्था का विवरण दिया गया है, जो मंदिर के प्रबंध और प्रतिपालन के लिये की गई थी। उसमें बताया गया है कि तोडंकण, मधुवेड, नालीपद्र, कुरुपद्र और वाणपद्र, ये पांच गांव मंदिर को लगा दिये गये थे। उन गांवों से होने वाली आय का बट-वारा इस प्रकार किया गया था ——होने वाली आय के चार भागों में से एक-एक भाग मंदिर में आयोजित सत्र (सामूहिक भोजन), मंदिर की चालू मरम्मत और मंदिर के पुजारी के परिवार के पोषण हेतु क्रमशः दिया था। उपर्युक्त आय का जो चौथा हिस्सा बचा उसके बराबर बराबर पंद्रह भाग किये गये और (१) त्रिविक्रम (२) अर्क (३) विष्णुदेव तथा (४) महिरदेव, इन चार ऋग्वेदी ब्राह्मणों, (५) कपर्दोपाध्याय (६) भास्कर, (७) मधुसूदन तथा (८) वेदगर्भ, इस चार यजुर्वेदी ब्राह्मणों, (९) भास्करदेव (१०) स्विरोपाध्याय, (११) त्रैलोक्यहंस तथा (१२) मोउट्ठ, इन चार सामवेदी ब्राह्मणों तथा (१३) स्वस्तिवाचक वासवनन्दी और (१४) वामन एवं (१५) श्रीधर नामक भागवत ब्राह्मणों को एक एक भाग दान किया गया। यह आय उनके पुत्रपौत्रों को भी मिलते रहने की व्यवस्था की गई थी यदि वे लोग भी छह अंग युक्त और अग्निहोत्री रहें तथा जुआ, वेश्यागमन आदि के व्यसनी न हों और ना ही किसी की चाकरी करें। यदि कोई इसके विपरीत आचरण करे अथवा कोई निपूता मर जाय तो उसके स्थान पर उसके स्थान पर विद्या और वय से वृद्ध संबंधी को सम्मिलित कर लेने की व्यवस्था कर दी गई थी किन्तु यह चुनाव उप-र्युक्त ब्राह्मणों की सम्मति से ही हो सकता था राजा की आज्ञा से नहीं। ये ब्राह्मण अपने भाग को न तो किसी अन्य को दान में दे सकते थे, न बेच सकते थे और न ही गहन रख सकते थे। इन सब के भोजन की भी व्यवस्था की गई थी और उसी प्रकार (इस प्रशस्ति के लेखक) आर्य गोण्ण के भोजन की भी व्यवस्था थी।

एक अन्य वर्गुल्लक नामक ग्राम, भगवान् के लिये बलि, चरु, नैवेद्य तथा सत्र के खर्च के लिये अलग से दिया गया था। इस का प्रबंध पुजारी मुख्य मुख्य ब्राह्मणों की सलाह से करता था। श्लोक क्रमांक अड़तीस और उन्तालीस में भावी राजाओं से प्रार्थना की गई है कि वे इस स्थिति का पालन करेंगे। चालीसवें श्लोक में मंदिर का निर्माण करने वाले कारीगर केदार का नामोल्लेख है। इकतालीसवें श्लोक में राजा शिवगुप्त द्वारा आर्य गोण्ण को दान देने की सूचना है।

इस प्रशस्ति में इतिहास संबंधी जो महत्वपूर्ण सूचना मिलती है वह है पाण्डुवंशी हर्ष-गुप्त का मगध के वर्मा राजवंश से वैवाहिक संबंध स्थापित होना। रानी वासटा मगधाधिपति सूर्यवर्मा की बेटी थी। हर्षगुप्त भागवत धर्म को मानता था और वासटा भी वैष्णव थी। किन्तु उनका बेटा महाशिवगुप्त बालार्जुन शैव था जैसा कि अन्य प्रमाणों से ज्ञात है। शिवगुप्त की राजमुद्रा पर नन्दी बना हुआ है और लेखों में भी उसे परममाहेश्वर कहा गया है।

महाशिवगुप्त का राज्यकाल बहुत बड़ा था, उसके लोधिया से प्राप्त ताम्रपत्रलेख में

उसके राज्य के ५७ वें वर्ष का उल्लेख है[1]। उसके समय में राजधानी श्रीपुर तथा अन्य स्थानों पर जितने अधिक मंदिर तथा अन्य इमारतें बनीं उतनी दक्षिण कोसल के किसी भी अन्य राजा के आश्रय में निर्मित नहीं हुई थीं। महाशिवगुप्त के समय के अनेक शिला और ताम्रपत्र लेख प्राप्त हुये हैं जो उसके समृद्ध शासन के द्योतक हैं।

प्रस्तुत लेख में जो भौगोलिक नाम मिलते हैं उनमें से मगध विख्यात है। कुरपद्र वर्तमान कुलपदर हो सकता है जो सिरपुर से २४ किलो दूर आग्नेय कोण में है, वर्गुल्लक संभवतः वर्तमान गुल्लू है, वह भी सिरपुर से निकट है। कुलपदर के निकट स्थित तुरेंगा प्राचीन तोडंकण हो सकता है और उसी के निकट ८ किलो पर जो मधुबन गांव है, वह मधुवेड़ होना चाहिये। नालीपद्र और वाणपद्र का पता नहीं चलता।

मूलपाठ

पंक्ति

१ (ओं) नमः पुरुषोत्तमाय। अन्योन्यप्रान्तरान्तर्विचलदुरुभरस्पुरेङ्गुरोरस्वोर्प्परङ्गु-स्यंर्यवदेन्नलकिरणशिखास्पष्टदंष्ट्राकरालैः। कामन्व: पातु पर्व्वोलन इव चरणश्चक्रिण: खे धनौघान्विध्वस्य ध्वा

२ न्तधाम्न: करिण इव किरन्मौक्तिकाभानि भानि ॥[१ ॥ ❀] लब्धो निर्भेत्तु-मेभिर्नं रिपुरिति रसाद्दत्तचक्षुर्नखेषु त्रासात्तैर्द्द रन्ध्रोदरकुहरदरीभेदलीनं विलोक्य। हासोल्लासावहेलं तदितरकरजाग्रेण निर्भिद्य [सद्य/कोशा] ज्जिक्षेप तज्जं मलमिव

३ दनुजं य: स वोव्यान्नृसिम्ह[2]:। [२ ॥ ❀] वहतिव रुचा या [कृष्या दंष्ट्रा] सजि-ह्वमिवासिना ज्वलदिव दधत्त्वकेणास्यं गदां भ्रुकुटीमिव। प्रसितमसुरान्तंभूयेव स्थितान्तर्कविभ्रमं दुरितमिति वेदोयं विष्णवे: ⏑ – ⏑⏑ – ⏑ – [॥ ३ ॥❀] [आसीच्छशी] व भुवनाद्भुतभूतभूति—

४ रुद्र् तमूतपतिनक्तिसमग्रभाव:। चन्द्रान्वयंकतिलक : खलु चन्द्रगुप्तराजाख्यया पृथु-गुण: प्रथित: पृथिव्याम् [॥ ४ ॥] गरीयान्भारोयं दुरधिगमिदं वर्त्म पुरतो न मे प्रष्ठ: कश्चिन्न च स मधुः, ... सखा। इ .... गणय: स्वशक्त्या

---

1. एपिग्राफिया इण्डिका, जिल्द सत्ताईस, पृ० ३१९ इत्यादि।
2. "नृसिंह:" वाचिये।

५ निर्व्यूढ ⌣⌣⌣⌣⌣–⌣⌣⌣–[॥ ५ ॥] दुर्धर्षवैरिवरवारणवारणेषु सीरायुधः स इव कंसनिषूदनस्य राजाधिकारधवल : सकलो बभूव यस्याप्रकोप्यनुच-रश्चरतो रणेषु ॥ [६ ॥ ❀] कुम्भैरङ्कितमस्तकानति (नय) न (च) दिव्याहा-रमुग्धात्मनो वक्त्रान्यस्ततृणानयः कृत करा—

६ न्मातङ्गकान्मारयन् । ग्वेव श्वापदराट् न यस्य नृपते : शौर्यं जगामोपमां हन्तु : कोदापराक्रमान्वयनयस्फीतत्विषां विद्विषां ॥ [७ ॥ ❀] तस्याभूदवनिभृतामधी-श्वरस्य प्रख्यातो जगति सुतो यथा हिमाद्रे : । रत्नानां वसतिरखण्डितोरुपक्षो मैनाको गिरिरिव य : स्वभावतुङ्ग ॥ [८ ॥ ❀]

७ स्थानं चिरादुचितमेतदमूल्ममेति लक्ष्मी : प्रसूतिसमये यमुवाह हर्षम् । तेनावृत : सततमेव शुचामगम्य : श्रीहर्षगुप्त इति नाम ततो य ऊहे ॥ [९ ॥ ❀] संसक्ताः सकलोपभोगविषिये धर्माध्वनि प्राध्वरा : सद्गोष्ठीषु निरन्तरा : परबलध्व-न्सेप्यवन्ध्या : सदा । [प्रक्षुण्णा :] सततं गुरूपचरणे

८ यान्ति स्म विस्मापिनो यस्यानेकसुखक्रियासु युगपत्संभाविनो वासरा : ॥ [१० ॥ ❀] क्षुण्णा भित्तिरनेकधा विघटिता : सर्वेप्यमी सन्धयो वीथ्यङ्गान्यपि विक्षतानि परितः शुष्कोस्थिबन्धक्रम : । चित्रं प्रच्युतमामुखादपि कथं किं चौक्षि-तेनामुना यस्येति द्विषतां कुनाटकमिव द्विष्टं पुरं

९ प्रेक्षकै : ॥ [११ ॥ ❀] तस्मादजायत महाशिवगुप्तराजो धर्म्मावतार इति निश्चि-तर्थं प्रतीत : । भीमेन य : सुत इव प्रथम पृथाया : पृथ्वीं जिगाय रणकेसरिणानु-जेन ॥ [१२ ॥ ❀] भावी हन्त पितामहादपि महानाचार्यमप्योजसा ज्यायसैव रणे बलेन भविता तत्कोस्य वैकर्त्तन : । यस्त्राण्यस्तियं समस्त—

१० जयिनं मत्वेति बालार्जुनं स्वे देहेपि जहु : स्पृहामरिगणाः प्रागेव सम्पत्तिषु॥[१३॥❀] य : प्रद्वेषवतां वधाय विहृतोरास्थाय मायामयी : कृष्णो [पोव] तरन्नभूदिह स सत्वव्याजनूनद्विष : । नासीदेव समो हरिर्बलतामात्यन्तिकीं बिभ्रतो यस्याक-ल्कमतेनं चापि भविता कल्की भविष्यन्पुन : ॥ [१४ ॥]

११ तस्योरुजन्यजयिनो जननी जनानामीशस्य शैलतनयेव मयूरकेतोः विस्मापनी विबुधलोकधियां बभूव श्रीवासटेति नरसिंहतनो : सदेव ॥ [१५ ॥ ❀] निष्पङ्के मगधाधिपत्यमहतां जात : कुले वर्मणां पुण्याभि : कृतिभि : कृती कृतमन:कम्प : सुधाभोजिनाम्

१२ यामासाद्य सुतां हिमाचल इव श्रीसूर्यवर्मा नृप: प्राप प्राक्परमेश्वरःश्वसुरतागर्वा-न्नितवं पदम् ॥ [१६ ॥ ❀] गतेपि पत्यौ चिरमेकरूपं : सदोपवासव्रतकर्शितैरपि ।

न मुक्तमेवावयवकूर्यंर्वीयं : स्वभावलीलामयमात्ममण्डनम् ॥ [१७ ॥ ❋] या वर्ण्णाश्रमिणां त्रयीव शरणं राज्यस्य नीतिर्यथा

१३ प्रज्ञेव प्रविवेचनी सवसतोस्तुष्णावतां श्री : स्वयं । उत्खाताखिलकल्मषप्रसरया किञ्चिद्स्खलन्ती स्थिते : सन्धानाय यया सतीव पृथिवी भूय : कृतं स्मारिता ॥ [१८ ॥] दमयन्त्या ह्यपि पुरा य : स्थलं प्राप्य गर्वित :। स कलि : स्वैपि समये हृतमान : कृतो यया ॥ [१६ ॥] तया निज :

१४ प्रेत्यपतिर्यथाविधं वसत्यसौ नित्यमुपासिताच्युत : प्रकाशितुं तादृशमेव कारितं विभोरिदं धाम हरे : सनातनम् ॥ [२० ॥ ❋] दिव्यादे : सकलस्य जन्तुनिवह-स्योच्चावचै : कर्मणां वैचित्र्यादयमङ्कु तो बहुविधावस्थैर्वपु:पञ्जरं : । य : प्रसाद बृहच्छलेन क—

१५ थित : संसार एव स्फुटं पश्यन्तस्तदिमं मन : कुरुत भो पापेषु मा भूमिपा : ॥ [२१ ॥ ❋] क्षणमध : क्षणमुत्पतितैर्नभ : पवनलोलतया ध्वजपल्लवं :। हरण-पालनयोरुचितं गती कथयति स्वयमेव महीभुजां ॥ [२२ ॥ ❋] तट एव भवा-म्बुधेस्तरीतुं निहि—

१६ तो धर्ममय : प्लवो महान् । परिपालयितव्य एव भूपैरवदोष्णो हि निमज्जयत्यध: ॥ [२३ ॥ ❋] इति च : प्रशस्तिकार : कवि : स चिन्तातुराङ्क ईशान :। यत्वा-नार्यमर्यादतिर्वाभिवास्तां स्थिति शृणुत ॥ [२४ ॥ ❋] तोडङ्कणमधु—

१७ वेद्रौ नालीपद्रश्च कुरपद्रश्च । स्यान्नेत्र वाणपद्रश्च पञ्च दत्ता इमे ग्रामा : ॥ [२५ ॥ ❋] एषां भागास्त्रय : सत्रे सण्डस्फुटितसंस्कृतौ । पादमूलपरीवारपोषणे च त्रिधाकृता ॥ [२६ ॥ ❋] यस्तु चतुर्थो भाग : स पञ्चदशधा कृ—

१८ तो विभागेन । तत्र द्वादशविप्रा : प्रतिवेदं प्रतिचतुष्केन ॥ [२७ ॥ *] ब्रह्मत्रि-विक्रमोकश्च विष्णुदेवस्तथापर: ॥ तथा महिरदेवश्च चत्वारो बह्वृचोत्तमा: ॥ [२८ ॥ *] एवं कपर्दोपाध्यायो भास्करो मधुसूदन: ॥ वेदगर्भश्च चत्वा—

१९ रो यजुर्वेदस्य पारगा: ॥ [२९ ॥ ❋] तथा भास्करदेवश्च स्थिरोपाध्याय एव च । त्रैलोक्यहंसो मोऽद्धश्चत्वार: सामपारगा: ॥ [३० ॥ ❋] भाव्यं तत्पुत्रपौ-त्रैश्च साग्निहोत्रै: षडङ्गिभि: । द्यूतवेश्याद्यनासक्तैरपिट्टाकैरसेवकै : [॥ ३१ ॥ ❋] यस्तु

२० नैवंविधो सहे यश्चापुत्रो विपत्स्यते ॥ तयोरङ्गे प्रवेश्योन्य: पूर्वोक्तगुणवान्द्विज: ॥ [३२ ॥ ❋] स चैषामेव संबंधी सविद्यत्वे वयोधिक: । एभिरेव च साम्मत्यात्प्र-वेश्यो न नृपाज्ञया । [॥ ३३ ॥ ❋] ततो वासवनन्दीति विप्र:

२१ पुण्याहवाचकः । द्वौ च भागवतौ नाम्ना वामनः श्रीधरस्तथा [॥ ३४ ॥ ❀ एते] पञ्चदशाङ्का विवर्जिता दानविक्रियाधानैः । सर्व्वेपि च सङ्क्रोध्याः ॥ लेखकश्चार्य गोष्ण इति इति ॥ [३५ ॥ ❀] यस्तत्र एव ग्रामो वर्गुल्लक संज्ञितः स [दे]—

२२ वस्य । बलिचरुनिवेद्यसद्योपकरणहेतो : प्रबन्धत्त : ॥ [३६ ॥ ❀] अत्र च साधिष्ठानैः सपादमूलैश्च सर्व्वकार्याणि ॥ सम्भूय विप्रमुख्यैः करणीयान्यंकमत्यैव ॥ [३७ ॥ ❀] स्थितिरियं क्षितिपाः परिपाल्यतां खलु

२३ संव कुतोपकृतिक्रमः ॥ ननु भविष्यति का पुनरुत्तरा गतिरहो भवतामपि कीर्त्तिषु ॥ [३८ ॥ ❀] गजस्नानं जातं खलु चरणकुद्दालनमिदं स्वयं पुण्योत्थानं यदिह परकीर्तिक्षतिकृतां ॥

२४ मदकाल्यत्तत्वोनयनतरलान्वोक्ष्य विभवानत : श्रेयः शुद्धं व्रतमनुचरन्कीर [नु] विरं ॥ [३९ ❀ ॥] भवाब्धिधर्म्मप्लवकर्ण्णधारो बभूव देव्याः कुलशीलशाली । केदारनामा स इदं समग्र—

२५ मकारयत्पुण्यमहानिधानं ॥ [४० ॥ ❀] श्रीशिवगुप्तो राजा ह्रित्वा त्रैलोक्य ....त्येन प्रादाल्गौणार्य्यभट्टाय ॥ [४१ ॥ ❀] भागमिहैकं स्थानं ॥ गुणवद् द्विजभोज्यमुत्तमगुणाय ॥

२६ शास्त्रव्याख्या विदुषे विदुषे [शास्त्रेषु वेदेषु] [॥ ४२ ॥ ❀]

अनुवाद

ओम् । पुरुषोत्तम को नमस्कार । चक्री (विष्णु) का (वामन अवतार के समय) आकाश में चढ़ता हुआ वह सिंह के समान चरण आप की रक्षा करे जिसने काले हाथियों जैसे बादलों के समूह को नष्ट कर (गज) मुक्ताओं की आभावाले तारे आकाश में छिटका दिये हैं (और जिसकी) अंगुलियों के अग्रभाग इधर उधर चलायमान बड़े वायुपुञ्ज की गूंज के शोर के कारण उग्र (और) नखों से उठती हुई किरणों की ज्वालाएं कराल दंष्ट्राओं सी दमकती हैं ।१। भेदन करने के लिये इन (नखों) को (अभी तक) कोई (उपयुक्त) शत्रु नहीं मिला इस प्रकार बड़ी उत्सुकता से नखों पर दृष्टि डालकर (और) त्रास से.........(हिरण्यकशिपु को खंभे के भाग की पोली खोह में छिपते देखकर ?) अट्टहास, उल्लास और उपेक्षा (मिश्रित भावों) से जिस ने एक ही नख से असुर (हिरण्यकशिपु) को अनायास चीरकर वैसे ही फेंक दिया जैसे नख के मल को (फेंका जाता है)—वे नृसिंह आप लोगों की रक्षा करें ।२। विष्णु का............(रक्षा करे) जो शंख के समान कान्ति धारण किये हैं, जिह्वायुक्त दंष्ट्राओं सी चमकती तलवार (युक्त हैं), चक्र के समान मुखवाला (है), (जिसकी) गदा के समान भ्रकुटी है (जिसने) सभी असुरों के समान उन पापों को ग्रस लिया है जो यम जैसे हैं— — ।३। पृथ्वी पर बहुत गुणों से सम्पन्न

(और) चन्द्र वंश का एक (मात्र) तिलक चन्द्रगुप्त नाम से प्रसिद्ध राजा चन्द्रमा के समान हुआ जो संसार की अद्भुत भौतिक विभूति वाला (तथा) भूतपति (शंकर) की भक्ति के समान प्रभाव उत्पन्न करता था।४। यह (राज्य) भार बड़ा है, आगे यह मार्ग कठिन है, मेरे पीछे कोई नहीं है और न कोई मधुर मित्र है..................।५। कंस को मारने वाले (कृष्ण) के बड़े भाई बलराम के समान जिसका राजा के सभी अधिकारों से युक्त बड़ा भाई रण में अनुचर हो गया (उस रण में जो) दुर्धर्ष शत्रुओं का नाश करने के कारण दारुण था।६। क्रोध, पराक्रम, कुल (और) नीति से दमकते ओज वाले शत्रुओं को मारने वाले जिस राजा के शौर्य की उपमा को सिंहों का राजा भी प्राप्त नहीं कर सका जो कि कुत्ते के समान (आचरण करता हुआ) उन हाथियों को मारता है जिनके मस्तक पर कुम्भ है, जो अच्छा आहार प्राप्त कर मुग्ध हो जाते हैं, जिनके मुख में घास पड़ी है और जिन्होंने (अपने) कर (सूंड) नीचे कर रखे हैं[1]।७। राजाओं के राजा उस (चन्द्रगुप्त) के जगत्प्रसिद्ध बेटा हुआ वैसा ही जैसा हिमालय के मैनाक पर्वत होता है। वह (मैनाक की ही भांति) रत्नों का भाण्डार था, मैनाक के पक्ष (पंख) कटे हुये हैं किन्तु उसके पक्ष (बड़ी सेना) अखण्डित है, मैनाक ऊंचा है यह भी स्वभाव से उत्तुंग है।८। बहुत समय के बाद मुझे यह उचित स्थान मिला, इस प्रकार सोचकर लक्ष्मी ने (उसके) जन्म के समय जो हर्ष प्राप्त किया उस (हर्ष) से आवृत होकर तथा शोक जिसके पास फटकता भी न था, उसने श्री हर्षगुप्त यह नाम पाया।९। सज्जनों की गोष्ठी में, शत्रुओं की सेना को नष्ट करने में, (और) गुरुओं की सेवा में, इन अनेक प्रकार के सुख कार्यों में बीतने वाले उसके दिन (लोगों) को चकित करते थे।१०। भित्तियां टूट गई हैं, संधियों के भी कई टुकड़े हो गये हैं, वीथी के अंग भी चारों ओर से विक्षत हो गये हैं, अस्थियों के बंधन का क्रम सूखा पड़ा है, आमुख से ही चित्र प्रच्युत हो गया है, इसे देखने से क्या लाभ – इस प्रकार प्रेक्षकों के द्वारा जिसके शत्रुओं का नगर कुनाटक की भांति तिरस्कृत किया गया।११। उस (हर्षगुप्त) से, निस्संदेह धर्मावतार दिखाई पड़ने वाला महाशिवगुप्तराज उत्पन्न हुआ जिसने रणकेसरी (नामक अपने) छोटे भाई के द्वारा पृथ्वी को (वैसे ही) जीत लिया जैसे कुन्ती के जेठे बेटे (धर्मराज युधिष्ठिर) ने भीम के द्वारा जीता था।१२। यह पितामह (भीष्म) से भी महान होगा, पराक्रम से आचार्य (द्रोण) को भी जीतेगा, तब रण में (सामना करने के लिये) कौन इसके लिये (समान) बल वाला कर्ण बनेगा (इसप्रकार) बालार्जुन को अस्त्र विद्या में सभी को जीतने वाला और कुशल मानकर शत्रुओं ने अपने जीवन की इच्छा भी छोड़ दी थी, सम्पत्ति की (इच्छा तो) पहले ही (छोड़ चुके थे)।१३। शत्रुओं के वध के लिये जिन्होंने मायामयी शरीर धारण किया (और) जो कृष्ण थे, वे हरि (भी), शत्रुओं को बिना कपट के जीतने वाले तथा अत्यन्त धवल और अकलंकमति (निष्कलंक बुद्धिवाले) इस बालार्जुन के समान नहीं थे और न ही भावी कल्की ही (इसके समान) हो सकेंगे।१४।

---

१. मस्तक पर घड़े रखना, मुख में तिनका दबाना, तलवार (युक्त हाथ) को नीचे कर लेना, आदि अपनी हार मान लेने के चिन्ह हैं। जो राजा अपनी हार मान लेते हैं उन्हें वह राजा नहीं मारता। इस प्रकार सिंह से इसकी श्रेष्ठता दिखाई गई है।

(सुन्दरता में) अप्सराओं को जीत लेने वाली उस नरेश की माता—जैसे कार्तिकेय की (माता) पार्वती—श्री वासटा, नरसिंह के शरीर की अयाल के समान सुरांगनाओं (तथा विद्वानों की बुद्धि) को चकित कर देने वाली थी ।१५। मगध के आधिपत्य से महान निष्कलंक वर्मा कुल में उत्पन्न (और) पुण्य कार्यों से देवताओं के मन में कम्प पैदा करने वाले श्री सूर्यवर्मा राजा ने हिमालय के समान जिस बेटी को पाकर, परमेश्वर (महान राजा) के ससुर बनने का गौरवशाली पद प्राप्त किया ।१६। पति के स्वर्गवास हो जाने पर भी (और) सदा व्रत-उपवास करने से दुर्बल होने पर भी जिसके अंगों ने स्वाभाविक शोभामय आत्मा का शृंगार नहीं छोड़ा ।१७। उस (वासटा) ने जो वर्णाश्रमी लोगों के लिये वेद के समान थी, राज्य की नीति के समान थी-भले बुरे का विचार करने वाली प्रज्ञा के समान (और) याचकों को साक्षात् लक्ष्मी थी-किञ्चित् चलायमान स्थिति को दृढ़ करने के लिये, तमाम फैलते हुये कल्मष (पापों) को खोदकर फेंक दिया (और इस प्रकार) सखी के समान पृथ्वी को पुनः कृत (युग) का स्मरण कराया ।१८। पूर्व काल में जो दमयन्ती का स्थान प्राप्त कर गर्व करने लगा था उस कलि का घमंड जिसने उसी के युग में (कलिकाल में) चूर कर दिया ।१९। नित्य विष्णु की उपासना करने वाले उसके स्वर्गवासी पति जैसे रहते हैं, वह बताने के लिये उसी प्रकार का यह विष्णु भगवान का सनातन धाम उसने बनवाया ।२०। देव इत्यादि विभिन्न अवस्थाओं वाले प्राणिसमूहों के कर्म की विचित्रता से ऊंचे और नीचे शरीरों से यह अद्भुत है जो विशाल इमारत के छल से संसार (की दशा) को बतलाता है-- इसलिये इसे स्पष्ट देखकर, हे राजाओ, पाप में मन मत लगाओ ।२१। वायु (के झकोरों) से चंचल होने के कारण (इस मंदिर के) ध्वजपल्लव आकाश में क्षण में नीचे आते हैं (और) क्षण में ऊपर जाते हैं (इस प्रकार) उन (ध्वजाओं) के द्वारा यह (मंदिर) राजाओं की (उन) उचित गतियों को बताता है (जो) हरण और पालन से (क्रमशः) होती हैं ।२२। भवसागर को पार करने के लिये धर्ममयी महान नौका तट पर ही रखी हुई है। राजाओं को चाहिये कि इसका परिपालन करें (क्योंकि) खण्डित होने पर निमग्न हो जायगी ।२३। इस प्रकार वह प्रशस्तिकार कवि चितातुरांक ईशान आप लोगों से कहता (और) इसके पालन के लिये जो स्थिति है उसको बनवाले राजा लोग सुनें ।२४।

तोडंकण, मधुवेड़, नालीपद्र और कुरुपद्र तथा वाणपद्र ये जो पांच गांव यहां हैं (वे) दिये गये हैं ।२५। इनके तीन चौथाई भाग (की आय) के तीन समान भाग करके (एक एक क्रमशः मंदिर के) सत्र, टूटने-फूटने पर जीर्णोद्धार और पुजारी के परिवार के लिये (दिये गये हैं) ।२६। और जो एक -- चौथाई भाग रहा उसके पंद्रह विभाग किये गये। उन का, प्रत्येक वेद के लिये चार, इस प्रकार बारह ब्राह्मणों में (बटवारा) हुआ ।२७। ब्राह्मण त्रिविक्रम, अर्क, विष्णुदेव और महिरदेव, (ये) चार उत्तम ऋग्वेदी ।२८। इसी प्रकार उपाध्याय कपर्द, भास्कर, मधुसूदन और वेदगर्भ, (ये) चार यजुर्वेद के ज्ञाता ।२९। तथा भास्करदेव, उपाध्याय स्थिर, त्रैलोक्यहंस और मोउट्ठ (ये) चार साम (वेद) के ज्ञाता ।३०। उनके होने वाले पुत्र-पौत्रों को

भी (यदि वे) अग्निहोत्री हों, छह अंग युक्त हों (तथा) जुआ, वेश्यागमन आदि से दूर हों (और) न तो वर्णसंकर हों न किसी की चाकरी करते हों ।३१। जो ऐसा न हो और जो निपूता मर जाय उनके हिस्से में अन्य पूर्वोक्त गुणवान ब्राह्मण को सम्मिलित किया जाय ।३२। वह विद्यावान हो, वयोवृद्ध हो, और उसका रिश्तेदार हो, इसका चुनाव इन्हीं लोगों द्वारा (एक) सम्मति से हो न कि राजा की आज्ञा से ।३३। इसके बाद स्वस्तिपाठ करने वाला ब्राह्मण वासवनन्दी, और उसी प्रकार दो भागवत ब्राह्मण (जिनके) नाम वामन और श्रीधर (हैं) ।३४। ये पंद्रह अंग न तो दान में दिये जा सकते हैं (और) न बेचे या गहन रखे जा सकते हैं। और ये सभी (ब्राह्मण) भोजन प्राप्त करें, लेखक आर्य गोष्ण भी – ऐसा ।३५।

नीचे जो वर्गुल्लक नाम का गांव है वह भगवान के बलि, चरु, नैवेद्य के सत्र की सामग्री (के खर्चे) के लिये अलग से दिया गया है ।३६। और इसमें अधिकार, पुजारियों और सभी मुख्य मुख्य ब्राह्मणों की एक मति से सब कार्य किये किये जावें ।३७। हे राजाओ, यह स्थिति (है जो आप) पालें, यह कृतोपकृति क्रम से चलती रहे। आपकी कीर्ति में भी इससे अच्छी गति भला क्या होगी ।३८। (जो) देवी (वासटा) को संसार से (पार करने वाली) धर्म-रूपी नौका का कर्णधार हुआ उस केदार नामक (कारीगर) ने यह महापुण्य का निधान पूरा बनाया ।४०।

श्री शिवगुप्त राजा......... उन्होंने आर्य गोष्ण ब्राह्मण को दिया ।४१। इनमें से एक भाग गुणवान ब्राह्मणों के भोजन के प्रबंध के लिये उत्तम गुणवाले—शास्त्र, वेद और शास्त्रों की व्याख्या करने में विद्वान उत्तम गुणवाले को ।४२।

१०. महाशिवगुप्त (बालार्जुन) का मल्लार से प्राप्त ताम्रपत्रलेख
(चित्रफलक इक्कीस, बाईस और तेईस (क))

मुद्रासमेत ये तीनों ताम्रपत्र बिलासपुर से २५ किलोमीटर दूर बसे मल्लार[1] ग्राम के एक प्राचीन मंदिर के निकट भूमि में गड़े हुये मिले थे। वहां से वे नागपुर संग्रहालय द्वारा अवाप्त किये गये। महामहोपाध्याय मिराशी और स्व० लोचनप्रसाद पांडे ने संयुक्त रूप से इस लेख को एपिग्राफिआ इण्डिका जिल्द तेईस (पृ० १३३ इत्यादि) में प्रकाशित किया है।

तीनों ताम्रपत्रों में से प्रत्येक की चौड़ाई २१.५ से० मी० और ऊंचाई १४ से० मी० है। प्रत्येक पत्र के बायें हाशिये में एक छेद है जिसमें पड़े हुये छल्ले के दोनों छोर राजमुद्रा से जुड़े हुये थे। मुद्रा ढालकर बनाई हुई है और उसका व्यास ९ से० मी० है। मुद्रा के ऊपरी भाग में

---

१. मल्लार के अन्य लेखों के लिये पृष्ठ २५, पादटिप्पणी देखिये।

त्रिशूल और कमण्डलु के बीच बैठे नंदी की आकृति है, उसके नीचे दो पंक्तियों का लेख और उससे भी नीचे प्रफुल्ल कमल बना है। तीनों पत्रों, छल्ले और मुद्रा का कुल वजन २४३८ ग्राम है।

इस ताम्रपत्रलेख में कुल मिलाकर २८ पंक्तियां हैं। उनमें से ७-७ पंक्तियां, प्रथम पत्र, द्वितीय पत्र के दोनों बाजू और तृतीय पत्र पर क्रमशः उत्कीर्ण हैं। इस प्रकार द्वितीय पत्र के दोनों बाजुओं पर लेख हैं और प्रथम तथा तृतीय पत्रों के केवल एक ही बाजू पर। लेख की लिपि पेटिकाशीर्षक अक्षरोंवाली ब्राह्मी लिपि है। अक्षर बड़ी सफाई के साथ और काफी गहरे खोदे गये हैं कि वे पीठ पर भी दिखाई पड़ते हैं। भाषा संस्कृत है; अन्त में कहे गये शापाशीर्वादात्मक श्लोकों और मुद्रालेख को छोड़कर शेष लेख गद्य में है।

लेख में बताया गया है कि राजा हर्षगुप्त के बेटे परममाहेश्वर महाशिवगुप्त ने तरडंशक भोग में स्थित कैलासपुर नामक ग्राम, कोरदेव की पत्नी अलका द्वारा तरडंशक में बनवाये गये विहार में रहने वाले आर्य भिक्षु संघ को, मामा भास्करवर्मा की विज्ञप्ति और ताम्रशासन से, आषाढ़ मास की अमावस्या को सूर्यग्रहण के समय, दान में दिया था। विहारिका और आर्य भिक्षुसंघ शब्दों के प्रयोग से जान पड़ता है कि यह दान बौद्ध धर्मानुयायी भिक्षुओं को दिया गया था, जो परम शैव महाशिवगुप्त की सर्वधर्मसमभाव-प्रकृति की सूचना देता है। इस राजा की माता वासटा द्वारा वैष्णव मंदिर निर्माण करने का उल्लेख पीछे लेख क्रमांक ६ में किया जा चुका है।

लेख में आये भौगोलिक नामों में से तरडंशक तो आधुनिक तरोड ग्राम है जो मल्लार से १६ किलो दूर ईशान कोण में है और कैलासपुर, मल्लार से १३ किलो पर आग्नेय कोण में स्थित वर्तमान केसला गांव है।

मूलपाठ

पंक्ति प्रथम पत्र

१ ओम्[1] । स्वस्त्यशेषक्षिति (ती) शविद्याभ्यासविशेषासादितमहनि (मौ) मविनयस-
२ म्पत्स (सं) पादित सकलविजिगि (गी) षुगुणो गुणवत्समाश्रयप्रकृष्टतरशौ-
३ र्य्यप्रज्ञाप्रभावस (सं) भावितमहाभ्युदयः कार्त्तिकेय इव कृत्तिवाससो
४ राज्ञः श्रि (श्री) हर्षदेवस्य सूनु सोमवङ्शसंभवः परममाहे-
५ श्वरो मातापितृपादानुध्यात श्रि (श्री) महाशिवगुप्तराज कुशलो ॥ त-
६ रडङ्शकभोगीय कैलासपुरग्रामे ब्राह्मणा सम्पूज्य सप्रधा-
७ नान्प्रतिवासिनो यथाकालाध्यासिनस्समाहतंसन्निधापतु (प्र)-

1. प्रतीक द्वारा सूचित।

द्वितीय पत्र, प्रथम बाजू

८ मुखानधिकारिणः सकरणानन्यांश्चास्मत्पादोपजीविनः सर्व्वान्—
९ अनुदर्शयति [न्] समाज्ञापयति । विदितमस्तु भवतां यथास्माभिरयं ग्रा—
१० मः सनिधि सोपनिधिः सदशापराधः सर्व्वकरसमेतः सर्व्वपीडा—
११ वर्ज्जितः प्रतिषिद्धचाटभटप्रवेशतया तरडङ्गाकप्रतिष्ठि—
१२ तकोरदेवभो (भा) र्य्यालिक[1]कारितविहारिकानिवासिचातुर्दिशार्य्यभि—
१३ क्षुसङ्घाय श्रीभास्करवर्म्ममातुलविज्ञप्त्या ताम्र[2]शासनेनाच—
१४ न्द्रार्क्कसमकालम्मातापित्रोरात्मनश्च पुण्याभिवृद्धये आचाङ्गा—

द्वितीय पत्र, द्वितीय बाजू

१५ मावस्यासूर्य्यग्रहोपरागे उदकपूर्व्वं प्रतिपादित इत्यतश्च—
१६ विधेयतया समुचितम्भोगभागादिकमुपनयद्भिर्व्भवद्भिः सुख—
१७ म्प्रतिवस्तव्यमिति । भाविनश्च भूमिपालानुद्दिश्येदमभिधीयते
१८ भूमिप्रदा दिवि ललन्ति पतन्ति हन्त हृत्वा महिं[3] नृपतयो
१९ नरके नृशंसात् (नृशंसाः) एतद्व (द्व) यं परिकलय्य चलाञ्च लक्ष्मी[4] मायुस्त—
२० था कुरुत यद्भवताम्भीष्टं [॥ १ ॥] अपि च [।] रक्षापालनयोस्तावत्य (त्फ) लं सु —
२१ गतिदुर्गति[5] को नाम स्वर्गमुत्सृज्य नरकं प्रतिपद्यते [२ ।] व्यासगीतां

तृतीय पत्र

२२ श्चात्र श्लोकानुदाहरन्ति [।] अग्नेरपत्यं प्रथमं सुवर्ण्णं भूर्व्वैष्णवी
२३ सूर्य्यसुताश्च गाव [:] दत्ता त्रयस्तेन भवन्ति लोका य काञ्चनं गाञ्च म—
२४ हीञ्च दद्यात् । [। ३ ॥] षष्टिवर्षसहस्राणि स्वर्गे मोदति भूमिदः आ—
२५ क्षेप्ता चानुमन्ता च तान्येव नरके वसेत् । [। ४ ॥] बहुभिर्व्वसु—
२६ धा दत्ता राजभि सगरादिभि यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य त—

---

१. 'भार्य्यालिका' बाँचिये।
२. 'ताम्र' बाँचिये।
३. 'महीं' बाँचिये।
४. यह विसर्ग अनावश्यक है।
५. 'सुगतिदुर्गती' बाँचिये।

२७ दा फलं [॥ ५ ॥ ॐ] स्वदत्ता परदत्ताम्वा यत्नाद्रक्ष युधिष्ठिरः[1] महि (महीं) महिमतां

२८ श्रेष्ठ दानाच्छ्रेयोनुपालनमिति ।

मुद्रा

१ राज्ञः श्रीहर्षगुप्तस्य सूनोः सद्गुणशालिनः ।

२ शासनं शिवगुप्तस्य स्थितमाभुवनस्थितेः ॥

अनुवाद

ओम् । स्वस्ति । राजाओं (के योग्य) सभी विद्याओं का विशेष अभ्यास करने से (जो) प्रशंसनीय विनय–संपत्ति प्राप्त हुई (उससे) विजेता के उपयुक्त सकल गुणों को संपादित करने वाले, गुणवानों के आश्रय से शौर्य और प्रज्ञा में जो वृद्धि हुई (उसके) प्रभाव से महान् अभ्युदय प्राप्त करने वाले, शंकर के कात्तिकेय के समान, राजा श्री हर्षदेव के बेटे, सोमवंश में उत्पन्न (और) माता पिता के चरणों का ध्यान करने वाले परममाहेश्वर श्री महाशिवगुप्तराज कुशल से हैं।

तरडंशक भोग में स्थित कैलाशपुर ग्राम में ब्राह्मणों को पूज कर मुखियों सहित (वहां के) निवासियों, (और) यथा समय पहुंचने वाले समाहर्त्ता–सन्निधाता प्रमुख अधिकारियों तथा व्यापारियों और अपने अन्य कर्मचारी राजपुरुषों को समाज्ञापित करते हैं—

आपको विदित हो कि हमने यह ग्राम निधि–उपनिधि समेत, दश अपराध (के दण्ड) समेत, सभी कर समेत, सभी (प्रकार की) पीड़ा से रहित, चाटों और भटों का प्रवेश निषिद्ध करके, तरडंशक में स्थित कोरदेव की भार्या अलका द्वारा बनवाई गई विहारिका में निवास करने वाले चातुर्दिश आर्य भिक्षुसंघ को श्री भास्करवर्मा मामा की विज्ञप्ति और ताम्रशासन से, जब तक चन्द्र–सूर्य हैं तब तक के लिये, माता पिता और अपने पुण्य की अभिवृद्धि के लिये, आषाढ़ (मास) की अमावस्या (को हुये) सूर्यग्रहण (के समय) जलपूर्वक दिया। और तदनुसार कार्य करके उचित भोगभाग इत्यादि (इन्हें) भेंट करते हुये आपलोग सुख से रहें। ऐसा—

भावी भूमिपालों को उद्देश्य करके यह बताते हैं—

"भूमिदान करने वाले स्वर्ग में आनंद लेते हैं (किन्तु) दुःख की बात है कि भूमि का हरण करके राजा लोग नृशंस नरक में पड़ते हैं; यह दोनों (बातें) और चंचल लक्ष्मी तथा आयु को विचार कर आप को जो अभीष्ट हो (वही) करें"।१। और भी—— "रक्षा और पालन का फल क्रमशः सुगति और दुर्गति है; कौन भला स्वर्ग को छोड़कर नरक चाहेगा"।२।

---

१. यह विसर्ग अनावश्यक है।

व्यास के रचे श्लोकों का यहां और उदाहरण देते हैं—

"सोना अग्नि का प्रथम पुत्र है, भू विष्णु की पत्नी है और गायें सूर्य की बेटियां हैं; (इसलिए) जो सोना, भूमि और गायों का दान करता है, वह तीनों लोक का दान कर लेता है ।३। भूमिदाता साठ हजार वर्ष तक स्वर्ग में आनंद लेता है (और) छुड़ाने वाला तथा उसका अनुमोदन करने वाला उतने ही (वर्षों) तक नरक में बसते हैं ।४। सगर इत्यादि बहुत से राजाओं ने वसुधा का दान किया था; किन्तु भूमि जब जिसकी होती है फल तब उसी को मिलता है।५। हे युधिष्ठिर ! अपनी दी हुई (हो) या पर की दी हुई, भूमि की यत्न से रक्षा करो; हे भूमि-धारियों में श्रेष्ठ ! दान की अपेक्षा अनुपालन श्रेय है ऐसा—

मुद्रा

राजा श्री हर्षगुप्त के सद्गुणशाली बेटे शिवगुप्त का शासन संसार की स्थिति पर्यंत स्थित है ।

सोम वंशी राजाओं के उत्कीर्ण लेख

११. महाभवगुप्त जनमेजय का ताम्रपत्रलेख : (राज्य) संवत् ८

(चित्रफलक तेईस (ख), चौबीस, पच्चीस)

मुद्रा समेत इन तीन ताम्रपत्रों का प्राप्तिस्थान ज्ञात नहीं है। ये नागपुर स्थित केन्द्रीय संग्रहालय के संग्रह में थे और वहां से इस संग्रहालय को स्थानान्तरित किये गये हैं। इस लेख को डाक्टर हुल्श ने एपिग्राफिया इण्डिका, जिल्द आठ (पृ० १३८ इत्यादि) में प्रकाशित किया है।

तीनों ताम्रपत्रों में से प्रत्येक की चौड़ाई लगभग २२·५ से० मी० और ऊंचाई १४ से० मी० है। प्रत्येक पत्र के बायें हासिये में एक छेद है जिसमें छल्ला पिरोया हुआ है। छल्ले के दोनों छोर संलग्न राजमुद्रा से जुड़े हुये थे। मुद्रा ढलवां है और उसका व्यास ४ से० मी० है। उस पर गजलक्ष्मी की बैठी हुई प्रतिमा बनी है। तीनों ताम्रपत्रों, छल्ले और मुद्रा का सम्मिलित वजन २७१० ग्राम के लगभग है।

इस लेख में ४४ पंक्तियाँ हैं। उनमें से प्रथम पत्र पर ११ पंक्तियां, दूसरे पत्र के प्रथम बाजू पर पर १२ पंक्तियां, द्वितीय पत्र के द्वितीय बाजू पर ११ पंक्तियां, और तृतीय पत्र पर १२ पंक्तियां उत्कीर्ण हैं। लिपि १० वीं शती की नागरी है। भाषा गद्यपद्य मय संस्कृत है; शापाशीगर्भात्मक श्लोकों को छोड़कर शेष भाग गद्य में है।

यह दानपत्र सोमवंशी राजा प्रथम महाभवगुप्त (जिसकी उपाधि जनमेजय थी) ने अपने राज्यकाल के आठवें वर्ष में कार्तिक शुदी द्वादशी को मुरसीमा से दिया था। इसमें कश-लोडा (विषय) में स्थित सतल्लमा नामक ग्राम के ब्राह्मणों और (अन्य) कुटुम्बों को तथा उस विषय में यथाकाल आने वाले समाहर्ता, सन्निधाता, चाट, भट, पिशुन, वेत्रिक, कोटवार, आदि सरकारी कर्मचारियों को समाज्ञापित किया गया है कि राजा ने उपर्युक्त ग्राम (उसकी समस्त आय समेत) गौतम गोत्र तथा गौतम, आंगिरस और औतथ्य इन तीन प्रवर युक्त (तथा) वाज-सनेय माध्यंदिन शाखा के ब्राह्मण श्री सान्धकर, जो धृतिकर के बेटे हैं और ओड्र देश में पुरु-षमण्डप ग्राम से आकर मुरजुंग ग्राम में बस गये हैं, उन्हें ताम्रशासन से दिया गया है। अंत में बताया गया है कि शोभन के बेटे साधारण ने इस दान में दूत का कार्य किया। धारदत्त के बेटे महासान्धिविग्रहिक राणक श्री मल्लादत्त द्वारा नियुक्त कैविलास के बेटे आल्लव कायस्थ ने यह शासन लिखा और रवणा ओज्झा के बेटे संग्राम ने (ताम्रपत्रों पर) उत्कीर्ण किया।

लेख से विदित होता है कि महाभवगुप्त जनमेजय सोमकुल में हुये थे, वे महाशिव-गुप्त के बेटे थे, उनकी उपाधि त्रिकलिंगाधिपति तथा परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर

थी। महाशिवगुप्त नामक राजा पूर्वोक्त पाण्डुवंश में भी हुआ था जो सोमवंश भी कहलाता था। किन्तु यह कहना कठिन है कि पाण्डुवंशी शिवगुप्त के वंशजों और प्रस्तुत लेख के सोमवंशियों का परस्पर संबंध क्या था। यह ध्यान देने की बात है कि कोसल के अधिपति होने का दावा करने वाले इन परवात्वर्ती सोमवंशियों ने निज को पाण्डुवंशी कभी नहीं कहा है और न ही पाण्डुवंशियों की भांति गरुड़ या नन्दी को अपनी राजमुद्राओं पर स्थान दिया है बल्कि उसके विपरीत शैव होते हुये भी शरभपुरीय राजाओं की राजमुद्रा के समान इनकी मुद्रा पर गजलक्ष्मी की प्रतिमा देखी जाती है।

इस सोमवंश का प्रथम राजा शिवगुप्त था। उसका कोई भी लेख अब तक उपलब्ध नहीं हुआ है किन्तु उसके बेटे इस महाभवगुप्त के लेख में उसे परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर की उपाधि से विभूषित बताया गया है। महाभवगुप्त का दूसरा नाम धर्मकंदर्प भी था और उसका राज्यकाल कम से कम ३५ वर्ष का था। यद्यपि प्रस्तुत दानपत्र मुरसीमा से दिया गया था पर महाभवगुप्त ने सुवर्णपुर (वर्तमान सोनपुर) से भी दानपत्र दिये थे। इसके वंशज उद्योतकेसरी के भुवनेश्वर लेख से विदित होता है कि इस ने ओड़ के राजा को जीत लिया था। ओड़ आधुनिक उड़ीसा के निचले हिस्से के भूभाग को कहा जाता था जहां उस समय 'कर' वंश के राजा राज्य करते थे। उसी प्रकार त्रिकलिंगाधिपति की उपाधि सूचित करती है महाभव–गुप्त कोसल, कलिंग और उत्कल इन तीनों देशों का अधिपति था किन्तु वैसी स्थिति में जबकि उत्कल या उड़ प्रदेश पर 'कर' वंशी राजाओं का शासन था और कोसल के भाग पर त्रिपुरी के कलचुरियों के आक्रमण होते रहते थे, यह कहना कठिन ही है कि महाभवगुप्त के राज्य की ठीक ठीक सीमा क्या थी। महाभवगुप्त के समय में त्रिपुरी का कलचुरि राजा लक्ष्मणराजदेव था जिसका आगे लेख क्रमांक १३ में उल्लेख आया है।

इस प्रथम महाभवगुप्त जनमेजय का उत्तराधिकारी उसका बेटा महाशिवगुप्त ययाति (प्रथम) हुआ। वह दसवीं शती के अन्तिम चरण में राज्य करता था। उसके प्रारंभिक दान-पत्र विनीतपुर (वर्तमान बिनका) से किन्तु चौबीसवें और अट्ठाईसवें राज्यवर्ष के दानपत्र महा-नदी पर स्थित) ययातिनगर से दिये गये थे। संभव है कि इस प्रथम ययाति ने अपने नाम पर ययातिनगर बसाया हो। किन्तु कुछ विद्वानों का मत है कि उसने विनीतनगर को ही ययातिनगर नामक नया नाम दे दिया था। ययाति प्रथम को भी कोसल देश का अधिपति बताया गया है। उसके बाद उसका बेटा भीमरथ जो द्वितीय महाभवगुप्त भी कहा जाता था, ग्यारहवीं शती ईस्वी के प्रारंभ में उसका उत्तराधिकारी हुआ। द्वितीय महाभवगुप्त के समय का एक दानपत्र आगे (लेख क्रमांक १२) है।

प्रस्तुत लेख में जिन भौगोलिक नामों का उल्लेख हुआ है उनमें से मुरसीमा उड़ीसा में पटना के निकट मुरसिंग नामक आधुनिक ग्राम है। दान में दिया गया ग्राम सतल्लमा वर्त–

मान में सम्बलपुर जिले की बरगढ़ तहसील में स्थित सतलमा ग्राम है और उसके आसपास का क्षेत्र प्राचीन कशलोडा विषय होना चाहिये। ओड्र देश को उत्कल भी कहा जाता था जो वर्तमान उड़ीसा का दक्षिणी भाग है।

मूल पाठ

पंक्ति प्रथम पत्र

१ ओं[1] स्वस्त्यनेकवरविलासिनीचरणनूपुररवोद्भ्रान्तमत्तपारावत:
२ कुलात् सकलदिगन्तरागतवन्दिजनविस्तारितकीर्तेः श्रीमतो मुररिपुः
३ अस्ति श्रोपीश्वराणाममलमणिरुचामन्वयात् कौस्तुभाभः शौर्य्यत्यागा-
४ म्बुराशिर्व्विरचितविधिवद्दाना[त्] शुभ्रीकृताभ्रः। श्रीमान्जन्मे जयाख्यस्तूवश (त्रिवश)
५ पतिसमकृत्स्नगां भोक्तुकामः प्रख्यातद्वेषिवंशप्रविदलनपटुर्भूपति[सो—
६ मवंशे॥ सोयं परमभट्टारकमहाराजाधिराज परमेश्वर श्रीमहा—
७ शिवगुप्तराजदेवपादानुध्यात परमभट्टारकमहाराजाधिराजपरमे—
८ श्वरसोमकुलतिलकतु (त्रि) कलिंगाधिपतिश्रीमहाभवगुप्तराजदेवः कु—
९ शली [। ॐ] कशलोडाप्रतिबद्धसतल्लमाग्रामेब्राह्मणान् सम्पूज्य त-
१० त्प्रतिनिवासिकुटुम्बि जनपदान् तद्विषयीय यथाकालाध्यासिनः समा—
११ हर्त्ति (हर्तृ) सन्निधात्रि (तृ) चाटभटपिशुनवेत्रिकावरोधजनराजवल्लभादीन् स—

द्वितीय पत्र; प्रथम बाजू

१२ र्वान् राजपादोपजीविन|समाज्ञापयति[विदितमस्तु भवतां यथा-
१३ स्माभिरयं ग्राम|सनिधिः सोपनिधिः सर्व्वबाधाविवर्ज्जितः सर्वोपरिकर—
१४ करादानसहितः साम्रमधुक[3] सगर्तोषरः प्रतिनिसिद्धचाटभट[4] प्रवेश—
१५ चतु:सीमावच्छिन्न: गौतमगोत्राय गौतमाङ्गिरस औतथ्यत्रिपारिषय[5] प्र—
वराय वाजसनेय माध्यन्दिनशाखाध्यायिने ओड्रदेशे पुरुषमण्डपग्राम—

---

१. प्रतीक द्वारा सूचित।
२. 'ध्यात' बाँचिये।
३. "साम्रमधूकः" बाँचिये।
४. "निषिद्ध" बाँचिये।
५. "रसौतथ्यत्र्यार्षेय" बाँचिये।

१७ विनीगुप्ताय मुरुजुंगग्रामवास्तव्याय भट्टपुत्रश्रीसान्धकरनाम्ने श्रुति—
१८ करसुताय सलिलधारापुरस्सरमाचन्द्रतारकार्कक्षितिसमकालोप—
१९ भोगार्थं मातापित्रोरात्मनश्च पुन्ययशोभिवृद्धये ताम्र¹शासनेनाकरिकृत्य
२० प्रतिपादित इत्यवगत्य समुचितभोगभागकरहिरण्यादिकमुपनय—
२१ द्भिर्भवद्भिः सुखेन प्रतिवस्तव्यमिति । भाविभिश्च भूपतिभिर्दत्तिरियमस्म—
२२ दिया धर्म्मगौरवादस्मदनुरोधाच्च स्वदत्तिरिवानुपालनीया । तथा चोक्तं च—
२३ र्म्मशास्त्रे । बहुभिर्वसुधा दत्ता राजभिस्सगरादिभिर्यस्य यस्य यदा भूमि-

द्वितीय पत्र: द्वितीय बाजू

२४ स्तस्य तस्य तदा फलं [॥ १ ❀] मा भूदफलशंका वः परदत्तेति पार्त्थिवाः
२५ स्वदानात्फलमत्यन्तं परदानानुपालने [॥ २ ❀] षष्टिं वर्षसहस्राणि स्वर्ग्गे
२६ मोदति भूमिदः [।] आक्षेप्ता चानुमन्ता च तान्येव नरके वसेत् [॥ ३ ❀] अग्ने-
रपत्यं प्र—
२७ थमं सुवर्ण्णं भूर्व्वैष्णवी सूर्यसुताश्च गावः । यः काञ्चनं गां च महीं च दद्यात्
२८ दत्तास्त्रयस्तेन भवन्ति लोकाः [॥ ४ ❀] आस्फोटयन्ति पितरः प्रवल्गयन्ति पिताम-
२९ हाः भूमिदाता कुले जातः स नस्त्राता भविष्यति [॥ ५ ❀] भूमिं यः प्रतिगृह्णा-
३० ति यश्च भूमिं प्रयच्छति [।] उभौ तौ पुन्यकर्म्माणौ नियतं स्वर्गगामि—
३१ नौ [॥ ६ ॥ ❀] तडागानां सहस्राणि वाजपेयशतानि च गवांकोटिप्रदानेन भूमिहर्त्ता
३२ न शुध्यति [॥ ७ ॥ ❀] स्वदत्तां परदत्तांम्वा यो हरेद्वसुधरां स विष्ठायां कृमिर्भूत्वा प—
३३ च्यते पितृभिः सह [॥ ८ ❀] आदित्यो वरुणो विष्णु ब्रह्मा सोमो हुताशनः शूलपा—
३४ णिस्तु भगवानभिनन्दन्ति भूमिदं [॥ ९ ॥ ❀] सामान्योयं धर्म्मसेतुर्नृपाणां काल-

तृतीय पत्र

३५ काले पालनियो² भवद्भिः [।] सर्वानेतान् भाविनः पार्थिवेन्द्रान्
३६ भूयो भूयो याचते रामचन्द्रः [॥ १० ❀] इति कमलदलाम्बुबिन्दुलो—

१. 'ताम्र' बाँचिये।
२. 'पालनीयो' बाँचिये।

३७ लं श्रीयमनुचिन्त्य मनुष्यजीवितञ्च । सकलमिदमुदाहृतञ्च

३८ बुध्वा न हि पुरुषैः परकीर्त्तयो विलोप्याः [॥ ११ ॥] परमभट्टारकमहा—

३९ राजाधिराजपरमेश्वरसोमकुलतिलकत्र् (त्रि) कलिंगाधिपति—

४० श्रीजनमेजयदेवस्य विजयराज्ये सम्वच्छरे अष्टमे कार्त्तिकमा—

४१ सद्वितीयपक्षतिथौ द्वादश्यां यत्राङ्कतोपि सम्वत् ८ कार्त्तिक शुदि १२ । श्रो (दू)—

४२ तकश्च महामहत्तमभटश्रीसाधारण शोभनसुतः लिखितमिदं शासनं

४३ महासान्धिविग्रहिराणकश्रीमल्लादत्त धारदत्तसुत प्रतिबद्धेन कायस्थ श्रा—

४४ ल्लवेन कं (वि) लाससुतेन । उत्किरितं संग्रामेन ॥ रचना ओज्झासुतेन ।

अनुवाद

ओम् । स्वस्ति । अनेक सुन्दर विलासवाली स्त्रियों के पैरों के नूपुर के शोर से मतवाल कपोतों (परेवा) के झुण्ड (जहां) उद्विग्न हो जाते हैं; सभी दिशाओं से आये वन्दी जन (जिसकी) कीर्ति को फैलाते हैं (उस) समृद्ध मुरसीमा से—

सोमवंश में जनमेजय नामक राजा हैं (जो) शत्रुओं के वंशों को दलने में चतुर कहे जाते हैं; इन्द्र के समान समस्त पृथ्वी का भोग करते हैं; शौर्य और त्याग के समुद्र हैं;(उन्होंने) विधिपूर्वक (बहुत से) दान देकर (नीले) आकाश को श्वेत बना दिया है; (और) निर्मल मणि की कान्ति वाले भूमिपतियों में कुल की अपेक्षा कौस्तुभ (मणि) की प्रभावाले हैं।

वे ये परमभट्टारक महाराजाधिराज श्री महाशिवगुप्तराज देव के चरणों का ध्यान करने वाले, परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर सोमकुलतिलक त्रिकलिंगाधिपति, श्री महा-भवगुप्तराजदेव कुशल से हैं। (वे)

कथालोड़ा में स्थित सतल्लमा ग्राम में (रहने वाले) ब्राह्मणों को पूज कर वहां बसे हुये कुटुम्बों के लोगों और उस विषय में समय समय पर रहने वाले समाहर्ता, सन्निधाता, चाट भट, पिशुन, वैत्रिक, कोटवार और राजवल्लभ आदि, राजा के सभी आश्रित (लोगों) को समाज्ञापित करते हैं—

आपको विदित हो कि हमने यह ग्राम (अपने) माता पिता और निज के पुण्य और यश की अभिवृद्धि के लिये ओड्र देश में पुरुषमण्डप ग्राम से आकर मुरजुंग ग्राममें बसे गौतम-गोत्रीय; गौतम, आंगिरस और औतथ्य (इन) तीन प्रवर युक्त; वाजसनेय माध्यंदिन शाखा के, भूतिकर के बेटे, श्री सान्धकर नामक ब्राह्मण को (इस गांव में प्राप्त) सभी निधि-उपनिधि समेत, सभी बाधाओं से निर्वाजित, सभी कर और अतिरिक्त करों को ग्रहण (करने के अधि—

कार) सहित, श्राम और महुवे (के वृक्षों) सहित, लोह और ऊसर (भूमि) सहित, चारों सीमाओं में चाटों और भटों का प्रवेश निषिद्ध करके, जब तक चन्द्र, तारा, सूर्य और पृथ्वी है तब तक उपभोग के लिये, जलधारापूर्वक ताम्रशासन से दिया है। यह जानकर समुचित भोग, भाग, कर, हिरण्य, इत्यादि (इन्हें) भेंट करते हुये आप लोग सुख से रहें। ऐसा–

(भविष्य में) होने वाले राजा लोग भी हमारे इस दान का धर्मगौरव से और हमारे अनुरोध से अपने दान की भांति अनुपालन करें।

वैसा ही धर्मशास्त्र में कहा है—

"सगर इत्यादि बहुत के राजाओं ने वसुधा का दान किया था (किन्तु) जब जिसकी भूमि होती है, तब फल उसी को मिलता है।१। हे राजाओ; दूसरे का दान है (इसलिये) फल नहीं मिलेगा, ऐसी शंका आप को न हो (क्योंकि) दूसरे के दान का अनुपालन करने में अपने दान (की अपेक्षा) अत्यन्त फल (मिलता) है।२। भूमि का दान देने वाला साठ हजार वर्ष तक स्वर्ग में आनंद करता है; छुड़ानेवाला तथा उसका अनुमोदन करने वाला उतने ही (वर्षों) तक नरक में वास करते हैं।३। सोना अग्नि का प्रथम पुत्र है, भूमि विष्णु की पत्नी है और गायें सूर्य की पुत्रियां हैं, (इसलिये) जो सोना, भूमि और गायों का दान करता है, वह तीनों लोक का दान कर लेता है।४। पिता और पितामह गद्गद् होते हैं कि कुल में भूमिदाता ने जन्म लिया है; वह हमारा त्राता (तारने वाला) होगा।५। जो (दान में) भूमि ग्रहण करता है और जो भूमि देता है, वे दोनों ही पुण्य कर्म करने वाले हैं (और) निश्चय से स्वर्ग जाते हैं।६। हजार तालाब खुदवाने, सौ वाजपेय (यज्ञ) करने और करोड़ गायों का दान करने से (भी) भूमिहर्ता शुद्ध नहीं होता।७। अपनी दी हुई हो, या दूसरे के द्वारा दान की गई; भूमि को जो छुड़ाता है वह पितरों सहित विष्ठा का कीड़ा बन कर सड़ता है।८। आदित्य, वरुण, विष्णु, ब्रह्मा, सोम, अग्नि (और) शंकर भगवान, भूमिदाता का अभिनंदन करते हैं।९। (भूमिदान करना) यह राजाओं के लिये (संसार सागर को पार करने का) धर्म-रूपी सामान्य पुल है; आप लोग हमेशा (इसका) पालन करें, (इस प्रकार) रामचन्द्र इन सभी भावी राजाओं से बार बार याचना करते हैं"।१०।

इस प्रकार कमल दल पर पड़ी जल की बूंद के समान लक्ष्मी और मनुष्य जीवन को विचार कर, तथा यह सब जो ऊपर बताया गया है (उसे) समझकर, लोग दूसरों की कीर्ति का लोप नहीं करें।

परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर सोमकुलतिलक त्रिकलिंगाधिपति श्री जनमे-जयदेव के विजयी राज्य में आठवें संवत्सर में, कार्तिक मास के द्वितीय पक्ष की द्वादशी तिथि को अंकन संवत ८ कार्तिक सुदी १२।

और, शोभन के बेटे महान् महत्तम भट्ट श्री साधारण दूत (हुये)। धारदत्त के बेटे महासान्धिविग्रहिक राणक श्री मल्लादत्त द्वारा नियुक्त कौविलाससुत ग्रल्लव कायस्थ ने यह शासन लिखा। रमण ओझा के बेटे संग्राम ने उत्कीर्ण किया।

१२. द्वितीय महाभवगुप्त के समय का कुडोपाली से प्राप्त ताम्रपत्रलेख (राज्य) संवत् १३

(चित्रफलक छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस)

मुद्रा समेत ये तीनों ताम्रपत्र सम्बलपुर जिले की बड़बढ़ तहसील में स्थित कुडोपाली नामक ग्राम में प्राप्त हुये थे और ईस्वी सन् १८९५ में मि० चैम्पमैन द्वारा नागपुर संग्रहालय भेजे गये थे। वहां से ये इस संग्रहालय को स्थानान्तरित किये गये। इस लेख को प्रोफेसर किल्हार्न ने एपिग्राफिया इण्डिका, जिल्द चार (पृष्ठ २५४ इत्यादि) में प्रकाशित किया है।

तीनों ताम्रपत्रों में से प्रत्येक की चौड़ाई लगभग १९ से० मी० और ऊंचाई १० से० मी० है। सभी पत्रों के बायें तरफ के हासिये में एक गोल छेद है जिसमें छल्ला पिरोया हुआ है। इस छल्ले के दोनों छोर संलग्न राजमुद्रा से जुड़े हुये थे। राजमुद्रा ढलवां है; उसका व्यास ३.३ से० मी० है। उस पर हंस की आकृति बनी है और नीचे 'राणक श्री पुंज' लिखा है। तीनों ताम्रपत्रों, छल्ले और मुद्रा का कुल वजन १३८० ग्राम है।

इस लेख में कुल ३६ पंक्तियां हैं जो प्रथम पत्र, द्वितीय पत्र के दोनों बाजू और तृतीय पत्र पर उत्कीर्ण हैं। लेख की लिपि ग्यारहवीं शती ईस्वी की नागरी लिपि है किन्तु अक्षरों की बनावट काफी भद्दी है। भाषा गद्यपद्य मय संस्कृत है जिसमें अशुद्धियों की बहुलता है।

यह दानपत्र कलिंगाधिपति महाभवगुप्त के तेरहवें राज्य वर्ष में मठरवंशीय थोड़ी के बेटे राणक श्री पुञ्ज ने वामाण्डापाटि शिविर से दिया था। इसमें बताया गया है कि उपर्युक्त पुञ्ज ने गिडाण्डा मण्डल में स्थित लोइसरा नामक ग्राम जनार्दन ब्राह्मण को दान में दिया था जो हस्तिपद से आये, कौण्डिन्य गोत्रीय (और) मित्रावरुण प्रवर (युक्त) कण्व शाखा के ब्राह्मण नारायण के बेटे थे। राणक श्री पुञ्ज पंद्रह गांवों के अधिपति माण्डलिक थे और उन्होंने पांच महाशब्द भी प्राप्त कर लिये थे। यह ऐश्वर्य उन्हें कालेश्वरी के वर के प्रसाद से मिला था। स्पष्ट है कि पुञ्ज महाभवगुप्त (द्वितीय) का सामन्त था। इस लेख को ताम्रपत्रों पर लेणपुर के सेठ श्री किरण के बेटे पूर्णदत्त ने लिखा था।

लेख में बताया गया है कि यह दानपत्र सोमवंशी त्रिकलिंगाधिपति महाभवगुप्त के राज्य के तेरहवें वर्ष में दिया गया था जो ययातिनगर में राज्य करते थे और महाशिवगुप्त के बेटे थे। उड़ीसा के सोमवंश में महाशिवगुप्त और महाभावगुप्त नाम के अनेक राजा हुये हैं

किन्तु उनकी उपाधियां अलग अलग थीं। जैसा कि ऊपर (लेख क्रमांक ११) बताया गया है यह महाभवगुप्त (द्वितीय) भीमरथ कहलाता था और उसके पिता महाशिवगुप्त ययाति। महाभवगुप्त द्वितीय का राज्यकाल ईस्वी १०००–१०१५ तक माना जाता है। प्रस्तुत लेख (जो तेरहवें वर्ष में दिया गया था) उसके राज्यकाल का अन्तिम ज्ञात लेख है।

लेख में आये भौगोलिक नामों में से ययातिनगर के बारे में ऊपर कहा जा चुका है। वामण्डापाटि, बड़गड़ तहसील में स्थित बामरा है। अन्य स्थानों का निश्चय नहीं हुआ है।

मूलपाठ

प्रथम पत्र

पंक्ति

१ ओं[1] स्वस्ति । श्रीययातिनगरे परममाहेश्वरपरमभट्टा—
२ रकमहाराजाधिराजप [र ❀] मेश्वरसोमकुलतिलकत्रिक—
३ लिंगाधिपतिश्रीमहाशिवगुप्तराजदेवपादानुध्यात । परममा—
४ हेश्वरपरमभट्टारकमहाराजाधिराजपरमेश्वरसोमकु—
५ लतिलकत्रि[2]त्रिकलिंगाधिपतिश्रीमहाभवगुप्तराजदेवस्य—
६ प्रवर्द्धमानकल्याणविजयराज्ये त्रयोदशसम्वत्सरे आषाढ़ि स—
७ स्वत् १३ वामण्डापाटी समावासकात्[3] परममाहेश्वरमठेर—
८ वंशोद्भव[4] कुलतिलककालेश्वरचिरलब्धप्रसाद पञ्चदशपल्लि [का]—
९ धिपतिसमधिगतपञ्चमहाशब्दमाण्डलिक राणक श्रीपुञ्ज

द्वितीय पत्र; प्रथम बाजू

१० ओडीसुत कुशलि [॥] सिडाण्डामण्डलप्रतिबद्धलोइसराग्राम्य—
११ समतोभार सजलस्थलाम्र मधूकविव दुविटपारम्य बा—
१२ वै: श्रीमद्यान्तिक्र ।[7] चाट्टभाट्टप्रवेश[8] सर्व्वकरविवर्जि—

---

१. प्रतीक द्वारा सूचित।
२. यह दण्ड अनावश्यक है।
३. 'समावासकात्' बाँचिये।
४. 'वंशोद्भव' बाँचिये।
५. 'सात्र' बाँचिये।
६. 'वाँ' बाँचिये। अथवा 'संवत्सरविंदव' इत्यादि होना चाहिये।
७. यह दण्ड अनावश्यक।
८. 'चाटभटप्रवेश' बाँचिये।

१३ तत्सर्व्वोपरिकरकरादासहितं ब्राह्मणान् सम्पूज्य तत्र प्रतिनिवा—
१४ सिनो राजपुत्रतलवर्गिसामवाजि च सर्व्वं जनपदान्
१५ समाज्ञापयति [। ❀] विदितमस्तु भवतां हस्तिपदविनिर्गतकौण्डिन्य—
१६ गोत्रमैत्रावरुणप्रवरकण्वशाखाध्यायिभट्टपुत्रश्री नारायणसुत द [अ] नार्दन—
१७ ससलिलधारापुरस्सरेणाचन्द्रतार्कार्कक्षितिसमकालोप—
१८ भोगार्थं मातापित्रोरात्मनश्च पुण्ययशोभिव्वर्द्धंय (वृद्धये) ताम्र [प] शा—

द्वितीय पत्र: द्वितीय बाजू

१९ सनेनाकरीकृत्य प्रतिपादितोस्माभिः [। ❀] शासनगौरगौर—
२० 'वा धर्म्मगौवणा' च भवद्भी प्रतिपालनीया । तथा चोक्तं धर्म—
२१ शास्त्रे [। ❀] बहुभिर्व्वसुधा दत्ता राजन (भिः) सगरादिभि यस्य यस्य यदा
२२ भूमि तस्य तस्य तदा फलम [॥ १ ॥ ❀] मा भूद् फलशङ्का व परदत्तेति
२३ पार्थिव स्वदानात्फलमत्यन्तं परदत्तानुपालने [॥ २ ॥ ❀] षष्ठिं (षष्टिं) वर्ष—
२४ सहस्राणि स्वर्गे मोदति भूमिद [आच्छेत्ता चानुमन्ता च तान्येव नरके वसेत्
[॥ ३ ॥ ❀] भूमिं यः प्रतिगृह्णाति यस्य (यश्च) भूमि
२५ प्रयच्छति उभौ तौ पुण्यकर्माणौ नियतौ स्वर्गगामिनौ । [४ ॥ ❀] आदित्यव—
रु—
२६ णो विष्णु ब्रह्मा सोमो हुताशन शूलपाणिस्तु भगवान् (वान) भिनन्दति भू—
२७ मिद [॥ ५ ॥ ❀] भूमिदाता कुले जाता (तः) स न्यस्त्राता भविश (ष्य) ति
उभौ पुण्य—

---

१. 'सुत' नीचे लिखा है।
२. 'आचन्द्रतारकार्कं' बांचिये।
३. 'शासनगौरवाद्' बांचिये।
४. "धर्म्मगौरवाद्" बांचिये।
५. "भवद्भिः" बांचिये।
६. ~~यह चिह्न अनावश्यक है।~~
७. ~~यह अनावश्यक है।~~
८. 'नस्त्राता' बांचिये।

तृतीय पत्र

२८ मांणो नियतं स्वर्गगामिनो ।[1] [६ ॥ ❀] तडागानां सहस्राणि वा—
२९ जपेयशतानि च गवां कोटिप्रदानेन भूमिहर्त्ता न शु—
३० ध्यति । [७ । ❀] हरते हारयेद् यस्तु मन्दबुद्धिस्तमावृतः स बद्धः वारु—
३१ णैः पाशैः तिर्यग्योनिं स गच्छति ।[2] [८ ॥ ❀] स्वदत्तां परदत्तां वा यो
३२ हरेद्वसुन्धरां स विष्ठायां कृमिर्भूत्वा पितृभिः सह प—
३३ च्यते । [९ ॥ ❀] इति कमलदलाम्बुबिन्दुलोलां श्रियमनुचिन्त्य मनुष्यजि (जी)
३४ वितं च सकलमिदमुदाहृतं बुद्ध्वा : न हि पुरुषैः परकीर्ति (कीर्तिः) विलो—
३५ प्यते ।। जैनपुर श्रेष्ठि श्री किरणसुत [पु] ण्यंदत्तेन [3]इदं ताम्रं[4] पत्र लिखि—
३६ तं । तत्प्रमाणमिति <प्रमाणमिति> [।]

मुद्रा

राणक श्री पुंज

अनुवाद

ओम् स्वस्ति । श्री ययातिनगर में परममाहेश्वर परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर सोमकुलतिलक त्रिकलिंगाधिपति श्री महाशिवगुप्तराज देव के चरणों का ध्यान करने वाले, परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर सोमकुलतिलक त्रिकलिंगाधिपति श्री महाभवगुप्तराज देव के पृथ्वी पर प्रवर्धमान कल्याण विजय राज्य के तेरहवें संवत्सर में, अंकन सम्वत् १३ (में)-

वामण्डापाटी शिविर से परममाहेश्वर, मठर वंश में उत्पन्न (और उस) कुल के तिलक माण्डलिक राणक श्री पुञ्ज, जो वोडी के बेटे हैं (और) जिन्होंने कालेश्वरी के प्रसाद (के रूप में) पंद्रह गांवों का आधिपत्य और पांच महाशब्द प्राप्त किये हैं, कुशल से हैं। (वे) गिडाण्डा मण्डल के लोइसरा ग्राम के ब्राह्मणों को पूज कर वहां निवास करने वाले राजपुत्र, तलवर्गी, सामवाजी और सभी जानपदों को समाज्ञापित करते हैं -

आपको विदित हो कि (यह ग्राम) इस की सीमा में स्थित खोह, ऊसर (भूमि), जल, स्थल, आम और महुवे के बगीचों, सभी वटवृक्षों (और) जंगलों समेत, चाटों और भटों के

---

१. यह श्लोकार्ध भूल से दुबारा उत्कीर्ण किया गया है। पूरा श्लोक इस प्रकार है।
आस्फोटयन्ति पितरः प्रवल्गयन्ति पितामहाः।
भूमिदाता कुले जातः स नस्त्राता भविष्यति॥

२. 'गच्छति' बांचिये।

३. "पूर्णदत्तेन" बांचिये।

४. 'ताम्र' बांचिये।

प्रवेश और सभी प्रकार के करों से विवर्जित तथा सभी करों और अतिरिक्त करों सहित, हस्तिपद से आये कौण्डिन्य गोत्र, मित्रावरुण प्रवर और कण्व शाखा के ब्राह्मण श्री नारायण के बेटे जनार्दन को, चन्द्र, तारा, सूर्य (और) भूमि जब तक हैं तब तक उपभोग करने हेतु जल-धारापूर्वक, माता पिता और अपने पुण्य तथा यश की अभिवृद्धि के लिये हमने ताम्रशासन से दिया है।

शासन के गौरव से और धर्म के गौरव से आप लोग इसको मानें। वैसा ही धर्मशास्त्र में कहा है —

"सगर इत्यादि बहुत से राजाओं ने भूमि (दान में) दी थी, (किन्तु) जब जिसकी भूमि होती है तब फल उसी को मिलता है।१। हे पार्थिव, दूसरे के द्वारा दान की हुई (भूमि) है, इसलिये फल नहीं मिलेगा, ऐसी शंका आपको न हो (क्योंकि) पराये दान के अनुपालन में अपने दान (की अपेक्षा) अत्यन्त फल (मिलता) है।२। भूमि दान करने वाला साठ हजार वर्ष तक स्वर्ग में आनन्द करता है (और) छुड़ानेवाला तथा उसका अनुमोदन करने वाले उतने ही (वर्षों तक) नरक में वास करते हैं, ।३। जो भूमि ग्रहण करता है और जो भूमि देता है, वे दोनों ही पुण्यकर्म करते हैं (और) निश्चय से स्वर्ग जाते हैं।४। आदित्य, वरुण, विष्णु, ब्रह्मा, सोम, अग्नि (और) शंकर भगवान भूमिदाता का अभिनंदन करते हैं।५। पिता-पितामह गद्गद होते हैं कि कुल में भूमिदाता उत्पन्न हुआ है वह हमारा तारने वाला होगा (त्राता होगा)।६। हजार तालाब खुदवाने, सौ वाजपेय (यज्ञ) करने और करोड़ गायों का दान करने से (भी) भूमि का हरण करने वाला शुद्ध नहीं होता।७। और जो मन्द बुद्धि-अज्ञानी (पापी) हरण करता है या करवाता है, वह वरुणपाश से बंधकर तिर्यंच योनि में जाता है।८। अपनी दी हुई या दूसरे के द्वारा दी गई भूमि को जो हरता है वह पितरों समेत विष्ठा का कीड़ा बनकर सड़ता है।९।

इस प्रकार, कमल दल पर पड़ी जल की बूंद के समान लक्ष्मी और मनुष्य जीवन को विचार कर तथा यह सब जो ऊपर बताया गया है (उसे) समझकर लोग दूसरों की कीर्ति का लोप नहीं करें।

लेनपुर के सेठ श्री किरण के बेटे पूर्णदत्तने यह ताम्र (लेख) लिखा। वह प्रमाण है ·········· ऐसा।

मुद्रा

रणक श्री पुन्ज (की मुद्रा)

त्रिपुरी के कलचुरियों के उत्कीर्ण-लेख

१३. लक्ष्मणराज ? के समय का कारीतलाई से प्राप्त शिलालेख

(चित्रफलक उन्तीस)

यह शिलालेख जबलपुर जिले की मुड़वारा तहसील में स्थित कारीतलाई नामक प्राचीन गांव के एक खेत में ईस्वी सन् १९५३ में प्राप्त हुआ था। इसे मैंने एपिग्राफिआ इण्डिका, जिल्द तेतीस (पृष्ठ १८६ इत्यादि) में प्रकाशित किया था।

लेखयुक्त शिलापट्ट की लम्बाई ८१ से० मी० और ऊंचाई ३६ से० मी० है। लेख में तेरह पंक्तियां हैं। पट्ट के उपरले बायें कोने के खण्डित होने से प्रथम पंक्ति के चार और द्वितीय पंक्ति के दो अक्षर लुप्त हो गये हैं। उसी प्रकार लेख के मध्यभाग तथा नीचे के भाग को भी क्षति पहुंची है। लेख की लिपि दसवीं शती ईस्वी की नागरी लिपि है जिसका प्रत्येक अक्षर बड़े खूबसूरत ढंग से और साफ साफ उत्कीर्ण किया गया है। भाषा संस्कृत है, अन्तिम दो शब्दों यथा 'शुभं' और मंगलं' को छोड़कर पूरा लेख विभिन्न छन्दों वाले १२ श्लोकों में निबद्ध है।

लेख में तिथि नहीं है किन्तु चौथे श्लोक में मुग्धतुंग के बेटे (कलचुरि राजा) प्रथम युवराजदेव का उल्लेख है और संभवतः खण्डित छठे श्लोक में (युवराजदेव के बेटे) लक्ष्मणराज का नामनिर्देश था। (लक्ष्मणराज द्वितीय) के मंत्री सोमेश्वर का नामोल्लेख दसवें श्लोक में है। लेख से विदित होता है कि सोमेश्वर ने सोमस्वामिपुर (कारीतलाई) के मध्यभाग में एक कुंआ खुदवाया था। कारीतलाई से प्राप्त एक दूसरे लेख में सोमेश्वर द्वारा विष्णु मंदिर बनवाने का उल्लेख है।[1] सोमेश्वर का पिता भाकमिश्र या भामिश्र लक्ष्मणराज के पिता युवराजदेव का

---

१. कारीतलाई में निम्नलिखित लेख और मिले हैं :—

(१) महाराज जयनाथ का ताम्रपत्रलेख, गुप्त संवत् १७४: का० इ० इ०, जिल्द तीन पृष्ठ १७७ इत्यादि।

(२) प्रथम लक्ष्मणराज का शिलालेख, कलचुरि संवत् ५९३ : एपिग्राफिआ इंडिका, जिल्द तेईस, पृ० २५६ इत्यादि और का० इ० इ० जिल्द चार, क्रमांक ३७।

(३) द्वितीय लक्ष्मणराज के समय का शिलालेख: एपिग्राफिआ इंडिका, जिल्द दो, पृष्ठ १७४ इत्यादि और का० इ० इ०, जिल्द चार, क्रमांक ४२।

(४) वीररामदेव का समय सतीलेख, विक्रम संवत् १४१२ : का० स० रि०, जिल्द नौ, पृष्ठ ११२ और हीरालाल: द्वितीय संस्करण, क्रमांक ४८।

२. का०इ० इ०, जिल्द चार, लेख क्रमांक ४२।

मंत्री था।[1]

प्रशस्ति विष्णु और लक्ष्मी की स्तुति से प्रारंभ होती है (श्लोक १) द्वितीय श्लोक में चन्द्रमा और तृतीय श्लोक में चन्द्रवंश में होने वाले राजाओं का कीर्तिगान है। इन राजाओं को चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब जैसा बताया गया है और श्लेष द्वारा कवि ने चन्द्रमा और उसके वंश के राजाओं की समानता बताई है। चौथे श्लोक में बताया गया है कि उन राजाओं में मुग्धतुंग का बेटा युवराजदेव हुआ। पांचवें श्लोक में युवराजदेव की गौड़, कोसल, दक्षिण और गूर्जर विजयों का उल्लेख है। यह विवरण बिलहरी के शिलालेख[2] के विवरण मे किञ्चित् भिन्न है। उस लेख में कहा गया है कि युवराजदेव प्रथम (केयूरवर्ष) ने काश्मीर तथा हिमालयतल के अन्य देशों की विजय-यात्रा की थी किन्तु इन विजयों का इस लेख में कोई उल्लेख नहीं है बल्कि युवराजदेव (केयूरवर्ष) द्वारा कोसल और गूर्जर देशों की विजय किये जाने की सूचना दी गई है जो बिलहरी के उपर्युक्त लेख में नहीं मिलती। छठा श्लोक खण्डित है, उसमें संभवतः युवराजदेव के बेटे लक्ष्मणराज का नामोल्लेख था। (लक्ष्मणराज) के गुणों का वर्णन सातवें, आठवें और नौवें श्लोकों में है। दसवें श्लोक में मंत्री सोमेश्वर और ग्यारहवें श्लोक में उसके पिता भामिश्र (भाकमिश्र) का नाम आता है। इन दोनों श्लोकों में सोमेश्वर के गुणों का वर्णन आलंकारिक शब्दों में किया गया है। अन्त में बारहवें श्लोक में सूचित किया गया है कि सोमेश्वर ने सोमस्वामिपुर में बावडी के आकार के कुंये का निर्माण कराया था। स्पष्ट है कि यह सोमस्वामिपुर वर्त्तमान कारीतलाई ग्राम है।

लेख में तिथि नहीं पड़ी है किन्तु युवराजदेव, (उसके बेटे लक्ष्मणराज) और लक्ष्मणराज के मंत्री तथा भाकमिश्र के बेटे सोमेश्वर का उल्लेख होने से स्पष्ट है कि यह लेख त्रिपुरी के कलचुरि राजाओं से संबंधित है जिनका राज्य विस्तार कारीतलाई तक था। कलचुरि वंश का संबंध हैहयकुल से बताया जाता है। छठी शती ईस्वी में माहिष्मती उनकी राजधानी थी, वहां से वे त्रिपुरी (वर्त्तमान तेवर, जबलपुर से १३ किलो) आये। कहा जाता है कि वामराजदेव त्रिपुरी के कलचुरि राज्य का संस्थापक था। उसके बाद प्रथम शंकरगण और प्रथम लक्ष्मणराज नामक राजाओं ने त्रिपुरी के राजसिंहासन को सुशोभित किया किन्तु वामराजदेव, (प्रथम) शंकरगण और (प्रथम) लक्ष्मणराज के संबंध में विशेष विवरण नहीं मिलता। यह भी संभव है कि इनके बीच दो-तीन पीढ़ियों ने और राज्य किया हो।

कलचुरियों का सर्वप्रथम प्रतापी राजा (प्रथम) कोकल्लदेव हुआ। उसने उत्तर और दक्षिण भारत के अनेक राजवंशों से वैवाहिक तथा अन्य संबंध जोड़कर अपने राज्य को सुदृढ़ कर लिया। उसके बाद उसका बेटा शंकरगण और तदनंतर बालहर्ष ने त्रिपुरी में राज्य किया।

---

१. प्रथम युवराजदेव के दूसरे मंत्री का नाम गोल्लाक (अपर नाम गौड़) था। वह भानु का बेटा था।

२. एपिग्राफिआ इण्डिका, जिल्द एक, पृ० २५६ इत्यादि और का० इ० इ० जिल्द चार, लेख क्रमांक ४५।

शंकरगण को अनेक उपाधियां थीं; वह मुग्धतुंग, प्रसिद्धधवल और रणविग्रह कहलाता था। उसने कोसल के सोमवंशी राजा को जीतकर उससे (रतनपुर के निकट स्थित) पाली छीन ली थी। राष्ट्रकूटों से मिलकर उसने पूर्वीय चालुक्यों से युद्ध किया किन्तु उसमें उसकी पराजय हुई। शंकरगण की बेटी लक्ष्मी राष्ट्रकूट जगत्तुंग को ब्याही गई थी। शंकरगण के बाद उसका जेठा बेटा बालहर्ष राजा हुआ किन्तु उसके राज्यकाल के समय की कोई विशेष सूचना नहीं मिलती। उसके बाद उसका छोटा भाई (प्रथम) युवराजदेव सिंहासन पर बैठा जो केयूरवर्ष भी कहलाता था। प्रस्तुत शिला लेख में इसी युवराजदेव के प्रताप का वर्णन है।

केयूरवर्ष जितना शूर-वीर था, उतना ही काव्य प्रेमी और धार्मिक प्रकृति का था। उसकी सभा में राजशेखर कवि रहते थे जिन्होंने 'विद्धशालभञ्जिका' और 'काव्यमीमांसा' जैसे अनमोल ग्रंथों की रचना की थी। इस धर्मात्मा राजा के आश्रय में गोलकी मठ तथा अन्य देवालयों का निर्माण हुआ और बड़े बड़े शैव आचार्य बाहर से बुलाये गये। युवराजदेव के दो मंत्री थे, एक तो भाकमिश्र और दूसरे गोल्लाक। भाकमिश्र सोमेश्वर के पिता थे और गोल्लाक ने बांधवगढ़ में मत्स्य, कूर्म, वराह, परशुराम और बलराम की उत्तुंग प्रतिमाओं का निर्माण कराया था।

जैसा कि प्रस्तुत लेख में बताया गया है, (प्रथम) युवराजदेव का बेटा लक्ष्मणराज था जिसे (द्वितीय) लक्ष्मणराज भी कहा जा सकता है। उसने भी अनेक प्रदेशों की विजययात्रा की थी और अनेक मठ-मंदिर बनवाये थे। उसके मंत्री सोमेश्वर ने कारीतलाई में उत्तुंग देवालय का निर्माण कराया और जैसा कि प्रस्तुत प्रशस्ति से विदित होता है वहां एक कूप भी खुदवाया था।

लक्ष्मणराज के बाद उसका बेटा शंकरगण त्रिपुरी के सिंहासन पर बैठा और उसके बाद उसका भाई (द्वितीय) युवराजदेव राजा हुआ। (द्वितीय) युवराजदेव के बाद क्रमशः (द्वितीय) कोकल्ल, गांगेयदेव, कर्णदेव, यशःकर्णदेव, गयाकर्णदेव, नरसिंह और उसके भाई जयसिंह के पश्चात् उसका बेटा विजयसिंह क्रमशः कलचुरि सिंहासन के अधिकारी हुये। विजयसिंह त्रिपुरी के कलचुरि वंश का अंतिम राजा था। यद्यपि छत्तीसगढ़ में संस्थापित इस वंश की शाखा काफी बाद तक जमी रही किन्तु त्रिपुरी में विजयसिंह के पश्चात् क्या हुआ, यह विदित नहीं है।

मूलपाठ

पंक्ति

१ [श्रीवत्सल] क्ष्मलक्ष्मीभ्यां सह साध्वजितायते। यत्स्मृतौ न द्विषां सैन्यं सहसाभ्य-
जितायते ॥ [१ ॐ] स्वर्गस्रोत ⌣ प्रवाहप्रथमहिम गिरिर्धातुपुत्रात्रिचक्षुस्सु
क्तिम—

२ [त्यग्र] मुक्ता त्रिपुरहरशिरश्शाश्वतश्वेतपद्मः (द्मम्) । कामान्तर्यामिवेहो वहनविवसकृत्मण्डलान्तोत्तिपुत्र ⌣ पुण्यज्योतिश्चकास्ति त्रिजगति कमलावा (बा) लव (ब) न्धुः

३ सुधाङ्शुः (सुधांशुः) ॥ [२ ❀] स्वच्छाशयस्फुरितनिर्म्मलमण्डलाप्रसंतोभिता-खिलदिशाश्रयवाहिनीशा । सोमात्सदुद्गतिरतीव्रकरा नरेन्द्रचन्द्रावली प्रववृते प्र—

४ तिवि (बि) म्बि (म्बि) तेव ॥ [३ ❀] तत्राभवद्भुवनभूषणभूतभूतिः श्रीमुग्धतुङ्गतनयो युवराजदेवः । यस्यांघ्रिवारिरुहि बा (बा) ढमलीयमानाः प्रापुर्द्विषत्सपदि सं—

५ पदमापदम्न ॥ [४ ❀] यंग्गौडाः परिपीडिताः सरभसं यैः कोसलाः शासिता यैः क्षुण्णाः गतवक्त्रिणं [: ❀] क्षितिभुतो यैर्गूज्जरा निर्ज्जिताः । विप्रेभ्यः प्रतिपा—

६ दिताः प्रतिदिनं ते येन च [न्या] ⌣ - - - - ⌣ ⌣ - - - पुरपुरं दर्प्पोद्ध [ताः] सि [न्धु] राः ॥ [५ ❀] इन्दोः सुन्दरतां बु (बु) धाद्विबु (बु) धतामंलात्कलाशालितामायोरायु—

७ रुदारमायुधविधावुत्साहि [तां] - ⌣ - [।] - - - ⌣⌣ - ⌣ - ⌣⌣⌣ — — [स्यापि वीरस्य (स्स) यस्तस्माल्लक्ष्मणराजदे] वनृपतिः श्रीमानभून्मा [न] भूः ॥ [६ ❀] मुन्म (न्म) ही

८ करिणः कीटाः पाषाण [। रत्नराशयः ।] ....
[रणे] यात्यें विलक्षता ॥ [७ ❀] मभू ⌣ पटकारिणां ⌣⌣ न - ⌣ - - ⌣ - ⌣ [भित्ति] तललेखिनां मधु—

९ विलिप्तचन्द्रार्प्पिणां । अहो सुमहदद्भुतं वचनमद्भुतोद्भाविनां न येन विनिवेशितं हृदि कथाप्रसंगादपि ॥ [८] नेत्रस्थाननिविष्टवारिविसरैरुन्मुक्तकेशोत्क—

१० रैर्हन्तालोढितयान्तरार्प्पितनृशस्तम्बै (म्बै) रणप्राङ्गणे । वर्षासून्नतिभाजिमेघपटले यद्वारणाक्षौहिणीत्रासेनेव पुराणशात्रव शिर ⌣ पिण्डास्थि—

११ कूटैः स्थितं (तम्) ॥ [९ ❀] पदेनवद्यो निपुणः प्रमाणे वाक्ये विपश्चः श्रुतिपार दृश्वा । वा (बा) लाग्निहोत्री कुशलः कलासु सोमेश्वरस्तस्य ब (ब) भूव मन्त्री ॥ [१० ❀] धिषणान्वितोपि

१२ काव्यप्रियोपि बु (बु) धसंगतोपि तच्चित्रं । यत्सकलग्रहरहितः श्रीमद्भामिश्रसुनुरसौ ॥ [११ ❀] सोमस्वामिपुरान्तरालतिलकं स (सु) व्यापकं वापिकारूपं कूपमथोल [न]—

१३ [ल] ⏑⏑ लावण्युसमं पावनं । पत्रिम्मर्पणकाल कर्म्मठदृष – – कइ – ⏑ – – वर्त्तं ⏑ समन्ततोपि कमठपृष्ठस्य पुष्टस्त [ट:][1] ॥ [१२ ❀][शुभं (भम्)] ॥ [मंगलं (लम्) ॥]

अनुवाद

(विष्णु और) लक्ष्मी के साथ रहने पर भलीभांति प्रजित हो जाता है, जिनके स्मरण (मात्र) से हमारे शत्रुओं की सेना सहसा मार्ग में ही जीत ली जाती है ।१। लक्ष्मी का बालबन्धु चन्द्रमा तीनों लोक में सुशोभित है, (वह) पुण्य ज्योति वाला है, अत्रि का बेटा है, अग्नि (और) सूर्य ने उसका मण्डल बनाया है, स्वर्गंगा के प्रवाह के लिये प्रथम हिमगिरि (के समान) है, ब्रह्मा के पुत्र अत्रि (मुनि) के नेत्र रूपी सीप से निकला हुआ मोती है, महादेव के मस्तक पर सदा (शोभित) श्वेत कमल है और इच्छानुसार देह को घटाने बढ़ाने वाला है ।२। (उस) चन्द्रमा से उसके प्रतिबिम्ब के समान नरेन्द्ररूपी चन्द्रावली निकली । चन्द्रमा के कर (किरणें) तीखे नहीं होते, इन राजाओं के कर (भूमिकर इत्यादि) कष्ट नहीं देते थे, चन्द्रमा की गति उच्च (आकाश में) होती है इनकी गति भी उच्चकोटि की थी, चन्द्रमा अपने स्वच्छ अलंकरण से चमकते हुये निर्म्मल मण्डल द्वारा सभी दिशाओं में वाहिनीशों (समुद्रों) को क्षुब्ध कर देता है इन राजाओं ने भी अपने स्वच्छ विचारों से निर्म्मल (पृथ्वी) मंडल को प्रकाशित कर सभी दिशाओं में रहने वाले राजाओं को क्षुब्ध कर दिया था ।३। उस (चन्द्रवंश) में संसार के भूषण और महा विभववाले युवराजदेव, श्री मुग्धतुंग के बेटे हुए, जिनके चरणों के जल में भलीभांति डूबने वाले शत्रु तुरन्त ही सम्पत्ति प्राप्त कर लेते थे और न डूबनेवाले (उसी प्रकार तुरन्त) आपत्ति प्राप्त करते थे ।४।

जिस राजा ने प्रतिदिन ब्राह्मणों को वे मतवाले हाथी दान में दिये जिनके द्वारा वेग-पूर्वक गौड़ लोग परिपीड़ित किये गये थे, कोसल देश के लोग शासित किये गये थे, दक्षिण जाकर (वहां के) राजा दबा दिये गये थे, और गूर्ज्जर लोक निर्जित किये गये थे ।५।

चन्द्रमा से सुन्दरता, बुध से विद्वत्ता, मंगल से कलाशालिता, आयु से उदार आयु और आयुध चलाने में उत्साह............(वह) श्रीमान् (वीर लक्ष्मणराज) राजा, मानवाला (उससे) हुआ ।६। (जिसके लिये दूसरों की) भूमि मिट्टी (के समान) थी, हाथी कीट (के समान) थे, रत्नराशि पाषाण (के समान) थी..................।७।..................अद्भुत कार्य करने वालों के वचन यदि कथाप्रसंगवश हृदय में न लाये जाएं तो यह बड़े आश्चर्य की बात है ।८।रणभूमि में जिसके हाथियों की अक्षौहिणी सेना के त्रास से ही मानों वर्षाकालीन मेघों ने पुराने शत्रुओं के सिर की सामने वाली हड्डियों के कूट पर स्थान प्राप्त किया है (क्योंकि शत्रुओं के) नेत्रों से पानी की बूंदे गिरती हैं, उनके (काले) केश समूह बिखरे हैं (और) उनकी दतौरी

---

१. खण्डित हो जाने से पाठ संदिग्ध है क्योंकि वह छन्द में भी ठीक नहीं बैठता ।

में तिनकों के गुच्छे दबे हुये हैं।९। पद में अनवद्य, प्रमाण में निपुण, वाक्य में विपक्व और श्रुति को भलीभांति समझने वाला, कलाओं में कुशल, बालाग्निहोत्री सोमेश्वर (नामक) उसका मंत्री हुआ।१०। वह श्री भामिश्र का बेटा, सकल ग्रहों (कष्टों) से रहित होने पर भी धिषण (बुद्धि-बृहस्पति) सहित था, काव्य (शुक्र) प्रिय था, बुध (विद्वान–बुधग्रह) से संगत था, यह आश्चर्य की बात है।११। उत्तम और पावन बड़े वापीरूपी कूप को जो सोमस्वामिपुर के अन्तराल में तिलक जैसा है, खुदवाया...... जिसके निर्माण काल में..............................
......................।शुभ हो। मंगल हो।

रत्नपुर के कलचुरियों के उत्कीर्ण लेख

१४. प्रथम पृथ्वीदेव का अमोदा में प्राप्त ताम्रपत्रलेख : (कलचुरि) संवत् ८३१

(चित्रफलक तीस)

ये दोनों ताम्रपत्र ईस्वी सन् १९२४ में बिलासपुर जिले में जांजगीर से १६ किलोमीटर दूर बसे अमोदा नामक गांव में एक मंदिर की नीव खोदते समय प्राप्त हुये थे। इस ताम्रपत्र-लेख को रायबहादुर डाक्टर हीरालाल ने एपिग्राफिआ इण्डिका, जिल्द उन्नीस (पृष्ठ ७५ इत्यादि) में महामहोपाध्याय वासुदेव विष्णु मिराशी ने कार्पस इंस्क्रिप्शनं इंडिकेरं, जिल्द चार (पृष्ठ ४०१-४०९) में प्रकाशित किया है।

दोनों ताम्रपत्रों में से प्रत्येक की चोड़ाई २८ से० मी० और ऊंचाई २० से० मी० है। दोनों के ऊपरी ओर पर छल्ला पिरोने के लिये एक छेद है किन्तु छल्ला और मुद्रा दोनों ही प्राप्त नहीं हुये हैं। लेख की लिपि नागरी और भाषा संस्कृत है जो २२ श्लोकों में है। कुल पंक्तियां ४१ हैं; उनमें से प्रथम पत्र पर २० और दूसरे पत्र पर शेष २१ पंक्तियां उत्कीर्ण हैं।

रत्नपुर के कलचुरि राजा प्रथम पृथ्वीदेव ने (कलचुरि) संवत् ८३१ की फाल्गुन कृष्ण सप्तमी, रविवार तदनुसार २७ फरवरी १०७९ ईस्वी को यह दानपत्र दिया था। लेख में सर्व-प्रथम ब्रह्मा की वंदना है; तत्पश्चात् सूर्य, मनु और कार्तवीर्य का गुणगान है जिसमें बताया गया है कि कार्तवीर्य ने रावण को बांध रखा था। कार्तवीर्य के वंशज हैहय कहलाये। हैहयों के कुल में चेदि राजवंश का संस्थापक प्रथम कोकल हुआ। उसने कर्णाटक, बंग, गुर्जर, कोंकण और शाकंभरी के राजाओं तथा तुरुष्कों और रघुवंशियों से उनका धन, घोड़, हाथी आदि छीनकर जयस्तंभ बनवाया था। कोकल्ल के अठारह बेटे हुये; उनमें से जेठा त्रिपुरी का राजा हुआ और उसने अपने अन्य भाइयों को निकटवर्ती मंडलों का मांडलिक बनाया। इन भाइयों में से छोटे भाई के परिवार में कलिंगराज हुआ। कलिंगराज के बेटे कमलराज ने उत्कल के राजा को हराकर उसकी लक्ष्मी (त्रिपुरी के) गांगेयदेव को लाकर दे दी थी। कमलराज का बेटा रत्नराज हुआ। उसने कोमोमंडल के शासक वज्जुवर्मा की बेटी नोनल्ला से विवाह किया। रत्नराज का बेटा पृथ्वीदेव इक्कीस हजार ग्रामों का स्वामी, सकल कोसल का अधिपति और महेश्वर का परम भक्त था। इस पृथ्वीदेव ने तुम्माण के वंकेश्वर मंदिर की चतुष्किका के निर्माण के अवसर पर हस्तियामठि से आये केशव ब्राह्मण को, अपर मंडल में स्थित वसहा नामक ग्राम दान में दिया था। प्रस्तुत ताम्रपत्रलेख इसी दान का दानपत्र है। ब्राह्मण केशव, यशोदेव का प्रपौत्र, उपाध्याय छिराइच का पौत्र और चांद का पुत्र था; वह ऋग्वेदी शाखा,

आंगिरस गोत्र और उतिथ्य, गौतम तथा वासिष्ठ, इन तीन प्रवरों वाला था। त्रिविक्रमराज, विक्रम और अर्जुन, ये तीनों (संभवतः राजकीय अधिकारी) दान के साक्षी थे। राजा के दान के अनंतर मंत्री विग्रहराज, नगर निगम के अध्यक्ष श्रेष्ठी यश और धोपाक ने भी उपर्युक्त ब्राह्मण को भूमि दी थी।

इस लेख को गर्भ नामक गांव के स्वामी सुकवि अल्हण ने लिखा और शिल्पी हासल ने उत्कीर्ण किया था। इसमें जिन स्थानों का नामोल्लेख हुआ है, उनमें से त्रिपुरी जबलपुर के निकट स्थित तेवर और रत्नपुर बिलासपुर से २८ किलोमीटर दूर बसा रतनपुर है। तुम्माण रतनपुर से ७२ किलोमीटर उत्तर में है। कोमोमण्डल वह क्षेत्र है जो रतनपुर से ४० किलोमीटर दूरवर्ती कोमो नामक ग्राम के आस पास है। वसहा गांव आज भी बिलासपुर से २० किलो की दूरी पर उसी नाम से ज्ञात है। किन्तु हथियामठ संभवतः आजकल का हाथमुड़ी ग्राम है जो मुंगेली तहसील में बिलासपुर से ७२ किलो पश्चिम की ओर बसा है।

मूलपाठ

पंक्ति

प्रथम पत्र

१ सिद्धिः[1]। ओं नमो ब्रह्मणे॥ निर्गुणं व्यापकं नित्यं शिवं परमकारणं। भावग्राह्यं परं ज्योतिस्तस्मै स—

२ द्ब्रह्मणे नमः॥ [१ ॥ ❀] यदेतदग्रेसरमम्बरस्य ज्योतिः स पुत्रा पुरुषः पुराणः। अथास्य पुत्रो मनु—

३ रादिराजस्तदन्वयेभूद्भुवि कार्त्तवीर्यः॥ [२ ॥ ❀] देवः श्रीकार्त्तवीर्यः क्षितिपति-रभवद्भूषणं भूतधात्र्या हे—

४ लो [त्क्षि] प्ताद्रिबिम्बस्तुहिनगिरसुता [श्ले] षसन्तोषितेशम्। दोर्द्दण्डाक(का)-ण्डसेतुप्रतिगमितम—

५ हावारिरेवाप्रवाहव्यापूत [प्य] त्पूजागुरुजनितरुषं रावणं यो बबन्ध॥ [३ ॥ ❀] लङ्कन्स (लङ्कंश) प्रभवा भूपा व (ब)—

६ भूवुर्भुवि हैहयाः। तेषां वन्स (वंशे) स वैद्यादिषि [ती] सः (शः) कोक्कलोभवत् ॥ [४ ॥ ❀] कार्ण्णाटवङ्गपतिगूर्ज्जरको—

७ ङ्कणेशला (शा) कंभरीपतितुरु [ष्कर] घूद्भवानाम्। श्रादाय कोस (श) हरिवन्त-श्चयं हठेन स्तंभो जय—

८ स्य विहितो भुवि येन राज्ञा॥ [५ ॥ ❀] अष्टादशारिकरिकुंभविभङ्गसिन्हाः (सिंहाः) पुत्रा बभूवुरतिसौ (शौ) र्य—

1. प्रतीक द्वारा सूचित।

९ पराख्य तस्य । तत्राग्रजो नृपवरस्त्रिपुरीश आसीत्पार्श्वे (र्श्वे) च मण्डलपतीन्स चकार बन्धून् ॥ [६ ॥ ❀] तेषा—

१० मनुजस्य कलिङ्गराजः प्रतापवह्निप्लुषितारिराजः । जातोन्वये द्विष्टरिपुप्रवीर-प्रियान—

११ नाम्भोरुहपार्व्वणेन्दुः ॥ [७ ॥ ❀] तस्मादपि प्रततनिर्म्मलकीर्तिकान्तो जातः पु- (सु) तः कमलराज इति

१२ प्रसिद्धः यस्य प्रतापतरणावुदिते रजन्यां जातानि पङ्कजवनानि विकासभांजि ॥ [८ ॥ ❀] श्रोणो (शो)

१३ वपु (मु) त्कलनृपं परिमथ्य वीरो गाङ्गेयदेवविभवे समवाञ्छितं यः । उच्चैः श्रिवः प्र ⌣ ⌣ – ⌣ ⌣

१४ रत्नवानसमतोषितासुरसुरः स हि मन्दराभः ॥ [९ ॥ ❀] मही भर्तुं विभूवाय (वे) पयोधिरिव कौस्तु—

१५ भं । जितसूरप्रतापं हि रत्नराजमसूत सः ॥ [१० ॥ ❀] दृप्तविद्विष्टसामन्त-ध्वान्तध्वंसनभास्करः ।

१६ यस्य प्रतापतप्स्येव सं (शी) त्यायाभिं श्रिता द्विषः ॥ [११ ॥ ❀] नोनल्लाख्या प्रिया तस्य सू (शू) रस्येव हि

१७ सू (शू) रता । कोमोमण्डलनाथस्य सुता या वज्जुवर्म्मणः ॥ [१२ ॥ ❀] पृथ्वीदेवः सकलधरणी

१८ भूषणमणिः समुत्पन्नः श्रीमान्बुधजनमनोम्भोजतरणिः । प्रतापाग्नौ यस्य ज्व—

१९ लति सततोत्तप्तहृदयैर्व्विलीनं सामात्यैर्मतुकुलतस (श) रीरैरिव परैः ॥ [१३ ॥ ❀] यस्मिन्मही—

२० भवति नीतिविचारस (सा) रे वातोप्यवर्त्मनि पदं न करोति कोप्यः । धर्म्मं (धर्म्मा) ध्वनि ष्ठि (स्थि) तमतो च न

द्वितीय पत्र

२१ दैवतो च न दैवतोपि लोकेषु गुनमुपघातलवोदयोस्ति ॥ [१४ ॥ ❀] अनेन समस्तप्रति-

२२ पतिसमूहसतु (मु) पेतस (त) र्व्वालङ्कारविभूषितेन सं (शं) खतुम्भध्वनिपूरित-जगज्जय — २ —

२३ रयत्रासितारातिचक्रेण समधिगताशेषपंचमहाशब्देन श्रीमद्रत्नेस्व (श्व) रलब्धप्रसा—

२४ देकविन्सतिग्रहलेकनाय (देकविंशतिसहस्रग्रामैकनाय) महाप्रचण्डसकलकोसलाधिपतिना परममाहेस्व (श्व) रेण कल—

२५ चुरिवन्सो(वंशो)द्भवेत्यादिसमस्तराजावलीविराजमानमहामण्डलेश्वरेण हस्तिग्रामठिनि

२६ ग्गंताय श्राङ्गिरसगोत्राय उतिथ्यगौतमवसिष्ठेति त्रिः (त्रि) प्रवराय बहूवृचसा (शा) खिने यसोदे-

२७ वप्रणवे (प्त्रे) उपाध्यायधिराइचनप्त्रे वा [न्द] सुताय रिसि केसवाय (हृषिकेशवाय) घ (फा) ल्गुनकृष्णसप्तम्यां रविदि—

२८ ने तुमाणके देवश्रीवङ्केस्व (श्व) रचतुष्किकाप्रतिष्ठायां श्री मङ्कुके [श्वर ❀] स्य प्रभावितस्न (स्नो) दों (द्वौ) पादौ प्रक्षा—

२९ ल्य कुत्ता (शा) क्षतहिरण्यसमन्वितवारिचुलुकमापूर्य य (अ)परमंडले वसहाग्रामस्च— तुः सीमा—

३० विसु (शु) द्धो मातापित्रोरात्मनस्च पुण्ययसो (शो) भिवृद्धये [ह] स्तोदकसा (शा) सनतया [प्र] दत्तस्तवयं

३१ चन्द्रदिवाकरक्षितिपायोधिपवनाम्बराणि यावत् न (अ) विच्छिन्नभुक्त्या का (भा) य वा (भो) गकरम (हि)रण (ण्य) क्व—

३२ रसवती डंढ (दंड) [प्र ❀] भृत्यम्यंतरसिद्ध्या अजे (ने) नैत रधुरघशशादिभिरस्च भोक्तव्य : ॥ त्रिपुर्य्यको विक—

३३ मराजबेयः सौ(शौ)र्याङ्कितो विक्रमराजनामा । तयार्जुनो वीरवरो जितारिरेभिः प्रद—

३४ त्ताः (त्ताः) खलु ग (स) त्यवाचः ॥ [१५ ॥ ❀] प्रथा [प्यसौ ❀] विग्रहराज-मन्त्री श्रेष्ठी यसो (शो) रत्नपुरप्रधानः । धोषा—

३५ क श्राद्य द्विजकेस [वाय] ददौ धरां सि (सं) श्रितसत्यधर्म्मः (र्म्माः) ॥ [१६ ॥ ❀] बहुभिर्व्वसुधा र (भु) क्ता राज—

३६ भिः सगरादिभिः । यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा फलं ॥ [१७ ॥ ❀] भूमि यः प्रतिगृह्णाति य—

३७ श्च भूमि प्रयच्छति । उभौ तौ [पुण्यकर्म्मा] णौ नियतं स्त (स्व) र्गगामिनौ ॥ [१८ ॥ ❀] संखं (शंखो) भद्रासनं छत्रं वर (रा) स्वा (श्वा) वरवारणाः ।

३८ भूमिदानस्य चिह्नानि फलमेत [त्पु] रन्दर ॥ [१९ ॥ ❀] हरते हारयते यो मन्दबुद्धिस्तमोवृतः । स य (ब) द्धो वारुणैः पासै (शैः) स्तिर्यग्यो—

३९ नि च गच्छति ॥ [२० ॥ ❀] न विषं विषमित्याहुर्ब्रह्मस्वं विषमुच्य (च्य) ते ।

विषमेकाकिनं हन्ति स्व (ब) ह्मस्वं पुत्रपौत्रिकं (कम्) ॥ [२१ ॥ ॐ] गर्भस्व (स्थ) ः सुक—

४० विरल्हन इ (ई) शभक्तस्ताम्रे (स्ताम्रे) चके (को) रत्नमनं लिखितं सुवाक्यैः ॥ यो ह्यासल: सकलसि (शि) ल्पनिधि: सुबुद्धिरुत्कीर्णवा—

४१ स नु (शु) भपंक्ति सव (ब) र्णं च ॥ [२२ ॥ ॐ] च ॥ च ॥ च ॥ चेदीस (श) स्य सं ८३१ [। ॐ]

अनुवाद

सिद्धि। ओम् ब्रह्म को नमस्कार। उस सद् ब्रह्म को नमस्कार है जो निर्गुण है, व्यापक है, नित्य है, (संसार का) परमकारक है तथा वह परमज्योति है जो (केवल) भावग्राह्य है।१। आकाश में बढ़ती हुई वह जो ज्योति है वह सूर्य आदि पुरुष है। उसका बेटा मनु पहला राजा हुआ जिसके परिवार में पृथ्वी पर कार्तवीर्य हुआ।१२। देव श्री कार्तवीर्य राजा पृथ्वी के आभूषण थे ; उन्होंने रावण को बांध लिया था (उस रावण को) जिसने कैलास पर्वत को आसानी से उठा कर उस (उठाने) से डरी हुई पार्वती के आलिंगन द्वारा शिव को संतुष्ट कर दिया था तथा जिसने अपनी शक्तिशाली भुजाओं के सेतु से बहुत जल वाली रेवा (नदी) का प्रवाह प्रतिगामी कर दिया था क्योंकि उस रेवा ने शिवजी की पूजा-सामग्री बहा दी थी जिस कारण वह (रावण) अत्यन्त रुष्ट हो गया था।३। उस (कार्तवीर्य) के वंश में उत्पन्न हुये राजा पृथ्वी पर हैहय कहलाये। उनके वंश में चेदि लोगों का वह पहला राजा कोकल्ल हुआ।४। उस राजा ने कर्णाटकपति, बंगपति, गुर्जरेश, कोंकणेश, शाकंभरीपति, तुरुष्कों और रघुवंशियों के कोष, घोड़े और हाथियों को हठपूर्वक छीन कर पृथ्वी पर (अपनी) जीत का स्तंभ बनवाया।५। उसके अठारह बेटे हुये जो अत्यन्त शौर्य वाले थे ; उन्होंने अपने शत्रुओं को ठीक वैसे ही नष्ट कर डाला जैसे सिंह हाथियों के कुंभ को फोड़ डालता है। उनमें से जेठा त्रिपुरी का स्वामी हुआ और उसने अपने भाइयों को अपने पास के मण्डलों का स्वामी बनाया।६। इनके छोटे भाई के परिवार में कलिंगराज हुआ जिसने अपने प्रताप की आग से शत्रु राजाओं को जला डाला और जो शत्रुओं के बड़े बड़े वीरों की पत्नियों के मुख रूपी कमलों के लिये पूर्णचन्द्र जैसा था।७। उससे भी एक बेटा हुआ जो कमलराज के नाम से प्रसिद्ध हुआ। वह फैलती हुई निर्मल कीर्ति से चमकता था ; जब उसके प्रतापरूपी सूर्य का उदय हुआ तो रात में भी कमलों के समूह विकसित हो उठे।८। उस वीर ने उत्कल के राजा को मथ कर (उसकी) लक्ष्मी गांगेयदेव को दे दी। और इस प्रकार मंदार गिरि बन गया। क्योंकि मंदार पर्वत ने क्षीर समुद्र को मंथकर गांगेय (भीष्म) के देव (विष्णु) को लक्ष्मी दी तथा देवों और असुरों को उच्चैःश्रवा (तथा वारुणी) आदि रत्न देकर संतुष्ट किया था।९। उसने, जो सूर्य के प्रताप को जीतता था, पृथ्वी भर के राजाओं की विभूषा के लिये रत्नराज को जन्म दिया जिस प्रकार समुद्र ने पृथ्वी के भर्ता (विष्णु) को विभूषित करने के लिये कौस्तुभ (मणि) उत्पन्न किया

था।१०। जिस प्रकार सूर्य अंधकार को नष्ट करता है, उसी प्रकार इस (रत्नराज) ने विद्वेषी और घमंडी सामन्तों को नष्ट कर दिया था। उसके प्रताप के ताप से शत्रुओं ने शीतलता प्राप्त करने के लिये समुद्र की शरण ली थी।११। उसकी नोनल्ला नाम की (पत्नी) उतनी ही प्रिय थी जितनी शूर को शूरता प्रिय होती है। वह कोमोमंडल के स्वामी वज्रुवर्मा की बेटी थी।१२।

समस्त पृथ्वी के शृंगार का मणि और बुधजनों के मन रूपी कमलों को (प्रफुल्ल करने वाला) सूर्य श्री पृथ्वीदेव उत्पन्न हुआ जिसके प्रताप की आग जलने पर शत्रु (अपने) उन अमात्यों के साथ, जिनके हृदय उस (अग्नि) से लगातार तप रहे थे, विलीन हो गये मानों उनके शरीर लाख के बने थे।१३। नीति विचार वाले उस (पृथ्वीदेव) के राज्यकाल में पवन भी गलत मार्ग में नहीं जाता फिर दूसरा कौन (वैसा करने की हिम्मत करता) क्योंकि उसकी मति धर्ममार्ग में लगी है, इसलिये दैवी संकट लेशमात्र भी नहीं होते।१४।

इस महामण्डलेश्वर (प्रथम पृथ्वीदेव) ने-जो सभी प्रकार के लाभों से प्राप्त सभी अलंकारों से विभूषित है, जिसने संसार को जीतने की जल्दबाजी में उसे दो शंखों की ध्वनि के शोर से भर दिया है, जिससे शत्रुओं की सेना त्रस्त हो गई है, जिसने पांच महाशब्द प्राप्त कर लिये हैं, जो श्री वंकेश्वर के प्रसाद से इक्कीस हजार (ग्रामों) का एकमात्र स्वामी और समूचे कोसल का महाप्रचण्ड अधिपति है, परम माहेश्वर है, कलचुरि वंश में जन्मा है, इत्यादि विशेषताओं से राजाओं में श्रेष्ठ है-हस्तियामठि से आये आंगिरस गोत्रीय, उतिथ्य, गौतम, और वासिष्ठ, इन प्रवरों वाले, ऋग्वेदी शाखा के यशोदेव के प्रपौत्र, उपाध्याय थिराइच के पौत्र, चान्द के पुत्र ऋषि केशव को, फाल्गुन कृष्ण सप्तमी रविवार को तुम्माण में देव श्री वंकेश्वर की चतुष्किका की प्रतिष्ठा के अवसर पर, श्री वंकेश्वर के प्रभायुक्त दोनों चरणों को प्रक्षाल कर, कुश, अक्षत और सोना सहित जल अंजलि में देकर अपर मंडल में (स्थित) वसहा ग्राम, चारों सीमाएं भलीभांति निश्चित करके, माता पिता तथा अपने पुण्य और यश की वृद्धि के लिये (दान लेने वाले के) हाथ पर जल (डालने) के शासन द्वारा दिया। इसलिये, जब तक चन्द्र, सूर्य, पृथ्वी, वायु और आकाश हैं (तब तक) यह (ब्राह्मण) और इसके पुत्र-पौत्रादिक इस स्वयं सम्पन्न गांव को भोग, भाग, कर, हिरण्य, गैर कानूनी ढंग से रस निकालने के कारण किये गये दण्ड, इत्यादि के साथ अविच्छिन्न रूप से भोगें।

जिनके नाम के आगे त्रि है वे विक्रमराज (याने त्रिविक्रमराज), अद्भुत शौर्य वाले विक्रमराज और शत्रुओं को जीत लेने वाले श्रेष्ठ वीर अर्जुन—इन लोगों ने वास्तव में (अपनी) साक्षी दी है।१५। इसके बाद मंत्री विग्रहराज, श्रेष्ठी यश और धनी धोवाक ने सत्यधर्म को मानकर, ब्राह्मण केशव को भूमि (दान में) दी।१६। सगर इत्यादि बहुत से राजाओं ने पृथ्वी का भोग किया; जब जिसकी भूमि होती है तब फल उसको ही मिलता है।१७। जो (दान में) भूमि ग्रहण करता है और जो देता है; वे दोनों पुण्यकार्य करते हैं और निश्चय से स्वर्ग जाते हैं।१८। हे पुरंदर! शंख, भद्रासन, छत्र, अच्छे घोड़े और हाथी, ये भूमिदान के चिह्न हैं।१९।

जो मन्दबुद्धि (अज्ञान) अंधकार से घिरा होने के कारण, हरण करता है या करवाता है वह वरुण के पाश से बंधकर तिर्यंच योनि में जाता है।२०। विष को विष नहीं कहते बल्कि ब्राह्मण के धन को विष कहा जाता है ; विष तो अकेले को मारता है किन्तु ब्राह्मण का धन पुत्रपौत्रादि को नष्ट कर देता है।२१।

गर्भ (नामक ग्राम) के स्वामी ईशभक्त सुकवि अल्हण ने सुन्दर वाक्यों से चकोर के नयन (जैसे सुन्दर अक्षर) ताम्र (पत्रों) पर लिखे जिसे सभी शिल्पों के ज्ञाता सुबुद्धि हासल ने शुभ पंक्ति और अच्छे अक्षरों में उत्कीर्ण किया। चेदीश का संवत् ८३१।

१५. प्रथम जाजल्लदेव का रतनपुर में प्राप्त शिलालेखः (कलचुरि) संवत् ८६६

(चित्रफलक इकतीस)

लाल रंग के बलुवा पत्थर पर उत्कीर्ण यह लेख रतनपुर में प्राप्त हुआ था। इसे डाक्टर किलहार्न ने एपिग्राफिया इण्डिका जिल्द एक (पृष्ठ ३३ इत्यादि) और महामहोपाध्याय वासुदेव विष्णु मिराशी ने कार्पस इंस्क्रिप्शनं इंडिकेरं, जिल्द चार (पृष्ठ ४०६-४१७) में प्रकाशित किया है।

शिलालेख वर्गाकृति है और इसकी चौड़ाई तथा ऊंचाई ६६ से० मी० है किन्तु उपरला बायां तथा निचला दायां भाग खण्डित है, उसी प्रकार उपरला दायां और निचला बायां कोना भी किञ्चित् खण्डित है। लेख में ३१ पंक्तियां उत्कीर्ण हैं जिनके अक्षर बहुत साफ और पर्याप्त गहरे हैं। लिपि नागरी और भाषा संस्कृत है। सम्पूर्ण लेख छन्दोबद्ध है और इसमें ३४ श्लोक हैं।

यह प्रशस्ति कलचुरि वंश के राजा प्रथम जाजल्लदेव के समय में लिखी गयी थी जिसकी वंशावली चन्द्रमा से प्रारंभ होती है। कार्तवीर्य और हैहयों के बाद चेदीश्वर (प्रथम) कोकल्ल का वर्णन चौथे श्लोक में मिलता है। तत्पश्चात् बताया गया है कि कोकल्ल के अठारह बेटों में जेठा तो त्रिपुरी का राजा हुआ और उसके अन्य भाई विभिन्न मण्डलों के अधिपति बनाये गये। उन भाइयों में से छोटे भाई के परिवार में कलिंगराज हुआ जिसने पूर्वजों की भूमि छोड़-कर दक्षिण कोशल को जीता और तुम्माण को अपनी राजधानी बनाया। कलिंगराज का बेटा कमलराज और उसका बेटा (प्रथम) रत्नराज हुआ। रत्नराज ने तुम्माण में वंकेश और रत्नेश्वर आदि मंदिरों का निर्माण कराया तथा मंदिर, उद्यान, आम्रवन और अन्य विशाल इमारतों से उस नगर की शोभा बढ़ाई। उसने रत्नपुर नामक नये नगर की रचना की और बहुत से मंदिरों का निर्माण कर उसे अलंकृत किया। इसके आगे श्रेष्ठी यश का उल्लेख है। फिर बताया गया है कि उपर्युक्त रत्नदेव ने कोमोमण्डल के राजा वज्जूक की बेटी नोनल्ला से विवाह किया जिससे (प्रथम) पृथ्वीदेव नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।

यह पृथ्वीदेव अपने पिता रत्नदेव का उत्तराधिकारी हुआ। उसने तुम्माण में पृथ्वीदेवेश्वर तथा अन्य अनेक मंदिरों का निर्माण कराया तथा रत्नपुर में समुद्र के समान गहरा तालाब खुदवाया। पृथ्वीदेव की रानी राजल्ला थी। उससे (प्रथम) जाजल्लदेव नामक पुत्र हुआ। जाजल्लदेव की महत्ता का वर्णन बीसवें से लेकर अट्ठाईसवें श्लोक तक किया गया है जिसमें बताया गया है कि चेदि के राजा के साथ उसकी मैत्री थी ; कान्यकुब्ज और जेजाभुक्ति के राजाओं ने उसे शूर माना था। (चक्रकोट के) सोमेश्वर को उसके मंत्री और रानियों समेत युद्ध में जाजल्लदेव ने कैद कर लिया था किन्तु सोमेश्वर की माता के अनुरोध से बाद में छोड़ दिया। कोसल,आंध्र, खिमिडी वैरागर, लांजिका, भाणार,तलहारी, दंडकपुर, नन्दावली और कुक्कुट के राजा जाजल्लदेव को वार्षिक भेंट या कर देते रहते थे। इस राजा के द्वारा जाजल्लपुर नामक नगर बसाने की सूचना भी इस प्रशस्ति में दी गयी है जहां उसने तपस्वियों के लिये मठ, उद्यान, आम्रवन और मनोहर सरोवर का निर्माण कराया था।

आगे बताया गया है कि राजा जाजल्लदेव ने जाजल्लपुर के देव (मंदिर) को सिरली और अर्जुनकोणसरण तथा अन्य ग्राम भेंट कर दिये थे और उसी प्रकार (वहां के) मठ को पाटलवृक्षों का बगीचा लगा दिया था।

इस जाजल्लदेव के गुरु रुद्रशिव दिङ्नाग तथा अन्य न्यायों और शैव सिद्धान्तों के ज्ञाता थे। विग्रहराज नामक सांधिविग्रहिक का उल्लेख भी यहां किया गया है। शिलालेख (कलचुरि) संवत् ८६६ मार्गशीर्ष सुदि ६ रविवार तदनुसार ८ नवम्बर १११४ ईस्वी को लिखागया था किन्तु कवि का नाम खण्डित हो गया है। केवल इतना ही ज्ञात होता है कि वह कायस्थ जाति और गौड़ परिवार का था। प्रशस्ति का लेखक वास्तव्य वंश का था ; उसके नाम के अंतिम दो अक्षर 'धर' मात्र बच रहे हैं।

प्रशस्ति में अनेक स्थानों का उल्लेख आया है। उनमें त्रिपुरी, तुम्माण और रत्नपुर के संबंध में ऊपर बताया जा चुका है। कान्यकुब्ज कन्नौज को कहा जाता था और जेजाभुक्ति बुंदेलखड का प्रदेश है जहां चंदेल वंश राज्य करता था। आंध्र, गोदावरी और कृष्णा नदी के बीच में स्थित भूभाग है ; खिमिडी उसी नाम से गंजाम जिले में स्थित है। वैरागर और लञ्जिका क्रमश: चांदा और बालाघाट जिलों में स्थित वैरागढ़ तथा लांजी हैं। भाणार आज का भंडारा जिला हो सकता है। मल्लार (बिलासपुर जिला) के आसपास का क्षेत्र तलहारि-मण्डल के नाम से ज्ञात था। दण्डकपुर संभवत: मिदनापुर जिले में था। जाजल्लपुर वर्तमान जांजगीर है। उससे २२ किलो पश्चिम में बसा अर्जुनी ग्राम अर्जुनकोणसरण और १२ किलो दूर बसा सिरली ग्राम तत्कालीन सिरली है। गर्भग्राम जांजगीर तहसील का ही गोबरा गांव हो सकता है।

मूलपाठ

पंक्ति

१ [ओं नमः शिवाय ॥] [शशि] शकलकला [कि] – ⏑ – नामृतांभःप्लवर्होह
क्तिनीरस्व [[न्तहीतीर] वृत्तिः किमु कृत म (श) करोति स्व:धि [ता]
....

२ सि (शि) रसि यस्य स्यात् स ईशः शिवाये ॥ १ ॥ एतद्यत्परमं विहंतु तिमिरं
त्रैलोक्यनेत्रद्युति ज्योतिस्तत्पुरुषं सुधाकर इति प्राहुस्तमन्त ....

३ श्रो न चरमः साम्राज्यसूत्रं यतः क्षात्रस्यापि तदन्वये समभवत् श्रीकार्तवीर्यः क्षितौ
॥ २ ॥ तद्वंश्यो हैहय श्रासीद्यतो जायन्त हैहयाः । ....

४ त्यसेनप्रिया सती ॥ ३ ॥ तेषां हैहयभूभुजां समभवद्वंसे (शे) स चेदीश्वरः
श्रीकोकल्ल इति स्मरप्रतिकृतिर्व्विस्व (श्व) प्रमोदो यतः येनायंत्रित [सौ (शौ)
र्यं] ....

५ मेन मातु यशः स्वीयं प्रेषितमुच्चकैः कियदिति ब्रह्मांडमन्तः क्षिति ॥ ४ ॥ अष्टाद-
शास्य रिपुकुंभविभंगसिंहाः पुत्राः बभूवुरभिवर्द्धित [वं] ⏑ — —

६ : । तेषामथाग्रजसुतस्त्रिपुरीश श्रासीत् शेषांश्च मंडलपतीन्स चकार भूपान् ॥ ५ ॥
प्रापतेषु कलिंगराजमसमं वंशः क्रमादानुजः पुत्रं शत्रुकलत्रनेत्रसलिलस्फी—

७ तप्रतापद्रुमः । येनायंत्रितसौ (शौ) र्यं / कोस (श) महच्चोकर्तुं विहायान्वयक्षोणीं
दक्षिणकोशलो जनपदो बाहुद्वयेनार्ज्जितः ॥ ६ ॥ राजधानी स तुंमाणः पूर्व्वजैः
कृत इत्य—

८ तः । तत्रस्थोरिक्षयं कुर्व्वन्वर्द्धयामास स श्रियम् ॥ ७ ॥ जातस्ततः प्रततनिर्म्मलकीर्त्ति
कान्तः शीतांशुवत्कमलराज इतीह सिंधोः । नृणां मनः कुमुदषंडमधिश्रि—

९ सो (शो) भं यस्मादभूदरिजनांधुसमिश्र (स्र) नाश: ॥ ८ ॥ महीभर्तुर्विभूषार्थं
पयोधिरेव कौस्तुभम् । जितसूरप्रतापं हि रत्नराजमसूत सः ॥ ९ ॥ श्रीवंकेशसुरालय-
प्रभृतयो [र]

१० [त्ने] श्वराद्यास्तथा यत्रोद्यानमसंख्यपुष्पसुफलं चाम्रवमाम्बं (म्रं) वनम् ।
रत्नेशेन ससौधसद्मनिचितस्वाराश्रिया भूषितस्तुंमाण: समकारि लोचनसुख:
संवीक्ष्यमा—

११ [णो] जनैः ॥ १० ॥ एतद्यत्विपुलं धनेश्वरपुरप्रख्यं महेशान्वितं नानावर्ण्णविचित्र-
रत्ननिचितं रत्नालयाभं यतः । नानादेवकुलैश्च भूषितमिति स्वर्ग्गाभिमातप्यते श्रीम-

१२ द्रत्नपुरं दिशि श्रुतयशो रत्नेश्वरो यद्व्यधात् ॥ ११ ॥ व्यधापयत्सा भुवि रत्नराजः

श्रेष्ठी यशस्येवधितिष्ठति स्म । बक्तीत्यदो रत्नपुरं समन्तान्मत्तोऽन्यपोर्मातु य [श]-

१३ स्त्रिलोकम् ॥ १२ ॥ कोमोमंडलभूभर्त्तुर्व्वज्जूकस्य श्रुता सुता । नोनल्ला रत्नराजेन परिणीता नृपश्रिया ॥ १३ ॥ तस्यामजनि पृथ्वीशं धर्म्मंशौर्यगुणान्वितम् स्वर्ग्गिम्ये

१४ [प] र्म्मतो वंश्यान् सो (शौ) र्याच्च युधि विद्विषः ॥ १४ ॥ सौ (शौ) [र्य] रत्नराजे युधि रिपुजयिनि स्वर्गते स्वर्गकृत्यात्पृथ्वीदेवः क्षितोशस्तदनु समभवत्तत्सुतः क्षात्रशूरः ।

१५ ऐश्वर्यौदत्यशौर्यप्रमुखगुणस (श) तैस्त्रैलोक्यपालः स ए [वं] क्षात्रं ब्रस्तं हि तस्मै कुरुत इति नमो येन पृथ्व्याः स देवः ॥ १५ ॥ पृथ्वीदेवसमाश्रिता भवति च स्व—

१६ र्गो हि लोकस्थितिश्चित्रं चैतदतः स्फुरति यत्सर्व्वत्र शूराश्रिता । सुरस्त्रीविततता शतक्रतुकृता भास्वन्महेशाच्युता वित्वा (त्वा) नंदिवृया प्रसर्प्पितसुधासमाश्रिता

१७ [नि] र्द्विषा ॥ १६ ॥ तुमाणे धर्म्मकीर्त्यर्थं पृथ्वीदेवेश्वरालयः । रत्नपुरे समुद्राभ-स्तेनाकारि च सागरः ॥ १७ ॥ उपयेमे स राजल्लां या कान्त्येंदुसप्रभा । लक्ष्मी-रिवाच्युत—

१८ प्रीतिः सौभाग्येनेव पार्व्वती ॥ १८ ॥ ऐन्द्रिरंन्ध्रामिवेंद्रेण स्वःश्रियामब्धिनेंदुवत् पृथ्वीदेवेन तस्यां तु जाजल्लोऽजनि कीर्त्तिमान् ॥ १९ ॥ चित्रं यस्य यशो व्यधावनु—

१९ ⏑ – सौ (शौ) तांशुसो (शो) चिःप्रभं रक्तं स्त्रैण्यशतं शि (सि) तं जगदिदं कुर्व्वंश्च कृष्णानरीन् । श्रीजाजल्ल उदेति यः प्रतिदिनं शूरः प्रतापद्वितश्चेदीशेन स ऐनसंत्यकृता मैत्र्य—

२० ⏑ – – – ⏑ [त] : ॥ २० ॥ कन्यकुब्जमहीपेन जेजामुक्तिकभूभुजा । शूर इति प्रतापित्वार्दाहतो मित्रवत्श्रिया ॥ २१ ॥ लक्ष्मीः सन्तविधापि यस्य जगृहे युद्धे च सोमेस्व (श्व) रो

२१ – – – ⏑ ⏑ – ⏑ दग्धममितं सैन्यं निहित्यामुना । बद्धं मंत्रिकलत्रसार्थमर्थ तन्मातुर्गिरा मोचितं येन द्रुत स ईदृशः क्षितिपतिर्दृष्टः क्षितौ वा श्रुतः

२२ [॥ २२] — — — ⏑ षकोशलांध्रखिमिडिवैरागरं लंजिका भाणारस्तलहारि दंडकपुरं नंदावली कुक्कुटः । यस्यैषां हि महीपमंडलभृतो मंत्रेण केचिन्मुदे केचि—

२३ — ⏑ ⏑ – ⏑ – ⏑ ⏑ मकात्यन्तस्य (त्व) [क्तु] प्तं वसु ॥ २३ ॥ यत्र प्रतापिनि व्यक्तमेकमेव सि (शि) रोघृतम् । चित्रं कुर्व्वंज्जने शैत्यं कुर्यात्तापं हृदि द्विषाम् ॥ २४ ॥ उदारता सौ (शौ) र्य्यगांभीरिमा

२४ ⏑ – ⏑ ⏑ – – ⏑ ⏑ – ऽस्य वर्त्तते । भुवेत्यनापि प्रततं समुच्छ्रितंपंशः
सुशुभेः सुरसपसद्भुवैः ॥ २५ ॥ किं कामोयमसावसेचनतनुस्त्यक्ताखिवृष्टो न यः
किं वैकुंत (ठ)—

२५ ⏑ – ⏑ – ⏑ ⏑ ⏑ – – – ⏑ – – [श्रि]या । शूरः सौ (शौ) र्यंत इंदुरि-
वितरश्चा श्रीदः किमर्थिप्रिय एवं मर्य [प] ता जनेन विदितो जाजल्लदेवश्चिरात्
॥ २६ ॥ श्रीजाजल्लपुरं

२६ ⏑ – ⏑ ⏑ ⏑ – – – ⏑ – – ⏑ – – – – [तसि (शि) वत्व] ताप-
समठः सोद्यानप्रांवं (त्रं) वनम् । तुल्यं स्वःश (स) रसः सरोपि रुचिरं यत्कारितं
श्रीमता जाजल्लेन तदस्तु कीर्त्तिरुचिरं

२७ – – ⏑ – – ⏑ –[॥ २७ ॥] ⏑ ⏑ ⏑ ⏑ ⏑ – – प दिग्नागादिप्रमाणवित्
स्वान्यसिद्धान्तविच्चास्य श्रीमान् रुद्रशिवो गुरुः ॥ २८ ॥ सांधिविग्रहिकोप्यस्य विग्र
[ह] राज इत्यभूत् ।

२८ ....[॥ २९ ॥ ❁] ददौ देवाय जाजल्लः सिरली-
ग्राममुत्तमम् । मठाय पाटलासार्धं सा (शा) सनं सा (शा) स्व (श्व) तं नृपः
॥ ३० ॥ अर्जुनकोणसरणं स दे—

२९ .... वे ॥ ३१ ॥ श्रीम [त्कार्ण] ⏑
– ⏑ [निजे] रगुवप्रस्पर्धिमंत्रामणीः कायस्थोऽस्प्रसा (शा) स्त्रसारसुमतिः
श्रीमान्स गौडान्वये । श्री

३० ....
[प्रस (श) स्तिम] समां जाजल्लदेवे व्यधात् ॥ ३२ ॥ चक्रे प्रस (श) स्तिसारस्य
[म ❁] भेंशो विमलान्गुणान् । उत्तमं हलदी—

३१ ....[॥ ३३] ....धरो (कीर्तिधरो)
बुधः । प्रस (श) स्तिं प्राप्त [स] र्व्वासां (शां) वास्त — — [नु] को लिखत्
॥ ३४ ॥ संवत् ८६६ मार्ग्ग सुदि ९ रवौ ॥ जाज . . . . .

अनुवाद

(ओम् । शिवजी को नमस्कार) । वह ईश (आपको) कल्याण दें जिनके मस्तक (की वस्तुओं के विषय में बहुत सी शंकाएं की जाती हैं जैसे कि) यह चन्द्रमा के खण्ड की कला है (अथवा) नहीं............स्वर्ग की नदी के तट पर पड़ा (मोती).........जिस नदी का ....अमृत जल की बाढ़ से भरा हुआ है.........बताइये कि यह क्या है ? क्या स्वर्ग पहुंची मछली है ? । १ । यह जो तीनों लोकों की आंखों की ज्योति वाली, अंधकार को नष्ट

करने वाली परम ज्योति है, उस पुरुष को सुधाकर कहा जाता है......वह चरम नहीं है, उससे क्षत्रियों का आदि साम्राज्य-सूत्र (निकला)......उसकी परंपरा में पृथ्वी पर श्री कार्तवीर्य हुये । २ । उनके वंश में हैहय हुआ जिससे हैहयवंशी हुये. ...... । ३ । उन हैहय राजाओं के वंश में वह चेदीश्वर श्री कोकल्ल हुआ जो कामदेव की प्रतिमा के समान था, जिससे संसार को आनन्द मिलता था, जिसने अपने अनियंत्रित (शौर्य से) अपने यश को यह नापने के लिये भेजा था कि ब्रह्माण्ड ऊपर कितना है और भूमि के नीचे कितना है । ४ । (वंश का वैभव) बढ़ाने वाले उस (कोकल्ल) के अठारह बेटे हुये जिन्होंने शत्रुओं को वैसे ही नष्ट कर दिया जिस प्रकार सिंह हाथियों को (नष्ट करता है) । बाद में उनमें सबसे जेठा त्रिपुरी का राजा हुआ । उसने शेष भाइयों को मण्डलपति बनाया । ५ । उन भाइयों में से छोटे भाई के वंश में यथासमय अद्वितीय पुत्र कलिंगराज हुआ । वह शत्रुओं की स्त्रियों की आंखों से बहते जल से पुष्ट हुआ प्रताप का वृक्ष था, उसने (अपने) शौर्य और कोश को बढ़ाने के लिये पूर्वजों की भूमि छोड़ (अपने) दोनों बाहुओं से दक्षिण कोशल जनपद को अर्जित किया । ६ । पूर्वजों के द्वारा बनाये गये तुम्माण को उसने राजधानी बनाया । वहां रह कर और शत्रुओं का नाश कर उसने अपनी लक्ष्मी बढ़ाई । ७ ।

उससे कमलराज हुआ जैसे समुद्र से चंद्रमा होता है । वह फैलती हुई निर्मल कीर्ति से कान्त था जिससे शत्रुरूपी अंधकार नष्ट हुआ और जो मनुष्यों के मन रूपी कुमुदों की श्री और शोभा को बढ़ाती थी । ८ । समुद्र महीभर्त्ता (विष्णु) को विभूषित करने के लिये रत्न उत्पन्न करता है उसी प्रकार कमलराज ने महीभर्त्ताओं (राजाओं) को विभूषित करने के लिये रत्नराज को जन्म दिया जिसका प्रताप सूर्य के प्रताप से बढ़कर था । ९ । रत्नेश ने तुम्माण को सुन्दर बनाया, वहां वंकेश तथा अन्य देवालय और उसी प्रकार रत्नेश्वर आदि मंदिरों और असंख्य फूलों और फलों से भरे उद्यान, सुन्दर आम्रवन तथा और भी इमारतों से सुसज्जित वह (नगर) दर्शकों की आंखों को सुख देता था । १० । यह जो कुबेर के नगर के समान चारों दिशाओं में प्रसिद्ध है, नाना वर्ण के रत्नों से भरा होने के कारण रत्नालय की शोभावाला है, विभिन्न देवकुलों से भूषित होने के कारण स्वर्ग की कान्ति वाला है (और) जिसमें महेश रहते हैं उस (रत्नपुर) की रचना रत्नेश्वर ने की थी । ११ । रत्नपुर चारों तरफ यह कह रहा है कि रत्नराज ने मुझे पृथ्वी पर स्थापित होने का आदेश दिया और श्रेष्ठी यश मेरा नगर-प्रमुख है, इसलिये मेरे निमित्त से इन दोनों का यश तीनों लोकों में फैले । १२ ।

कोमोमण्डल के राजा वज्जूक की बेटी नोनल्ला को राजलक्ष्मी के साथ रत्नराज ने ब्याहा । १३ । धर्म और शूरता युक्त पृथ्वीश (पृथ्वीदेव) उससे हुआ । उसने धर्म से अपने वंश के लोगों को और युद्ध में शौर्य से शत्रुओं को स्वर्ग पहुंचाया । १४ । शौर्य आदि (गुणों) से युद्ध में शत्रुओं को जीत लेने वाले. रत्नराज जब स्वर्ग के कार्य करने के लिये स्वर्ग चला गया तो उसका क्षत्रियों में शूर बेटा (प्रथम) पृथ्वीदेव उसके बाद राजा हुआ । वह प्रभुता,

दान (और) शौर्य प्रमुख सैंकड़ों गुणों से लोकपाल (के समान) था और भयभीत नृप उसे नमस्कार करते थे यह मानकर कि वह पृथ्वी का देव है। १५। पृथ्वीदेव के आश्रय में संसार की स्थिति स्वर्ग सी हो गई। वह विचित्रता इस प्रकार प्रकट होती है कि (पृथ्वी) सर्वत्र शूरों से भरी थी, खूब लक्ष्मी फैली हुई थी, सैंकड़ों यज्ञ होते थे, प्रभावशाली महाराजा से दृढ़ थी, सब को आनंद देने वाले बुद्धिमान लोग रहते थे, विस्तृत भवनों से भरी थी और अद्वितीय थी। (स्वर्ग में श्री, शतक्रतु, इन्द्र, सूर्य, महेश, अच्युत देवता, चन्द्र रहते हैं)। १६। उस (पृथ्वी-देव) ने धर्म की कीर्ति के लिये तुम्माण में पृथ्वीदेवेश्वर इत्यादि (मन्दिर) और रत्नपुर में समुद्र के समान (गहरा) सागर बनवाया। १७। उसने राजल्ला से विवाह किया जो अपनी कांति से चन्द्रमा की प्रभा जैसी थी। वह लक्ष्मी के समान अत्युतप्रीति वाली (लक्ष्मी के पक्ष में विष्णु और राजा के पक्ष में दृढ़) थी और सौभाग्य में पार्वती (सी) थी। १८।

जैसे इन्द्र ने शची में जयन्त (उत्पन्न किया) और समुद्र ने स्वर्गश्री में चन्द्रमा (उत्पन्न किया) उसी प्रकार (प्रथम) पृथ्वीदेव ने उस (राजल्ला) में कीतिम.न (प्रथम) जाजल्ल उत्पन्न किया। १९। आश्चर्य की बात है कि उसके चन्द्रमा की प्रभा के समान सफेद यश ने सैंकड़ों स्त्रियों को लाल (अनुरागी), जगत को सफेद और शत्रुओं को (शर्म से) काला कर दिया। जो प्रतिदिन सूर्य के समान ओजस्वी होता जाता है, उस जाजल्ल को राजाओं का संग्रह करने वाले चेदिपति ने अपना (परम) मित्र बना लिया। २०। कान्यकुब्ज के राजा और जेजाकभुक्ति के राजा इन दोनों ने (ही) उस (जाजल्ल) को प्रतापी होने के कारण 'शूर' मानकर मित्र के समान लक्ष्मी (की भेंट) से सम्मानित किया। २१। जिसके सातों प्रकार के ऐश्वर्य हैं (उसने) सोमेश्वर को युद्ध में.........उसकी अपार सेना को मार कर......जलाकर मंत्रियों और रानियों समेत कैद कर लिया किन्तु बाद में उसकी माता के कहने पर छोड़ दिया। बताइये-आपने संसार में ऐसा राजा (कोई और) देखा या सुना है। २२। (दक्षिण) कोसल, आंध्र, खिमड़ी, वैरागर, लञ्जिका, भाणार, तलहारि, दण्डकपुर, नन्दावली और कुक्कुट, इन मण्डलों के शासक उसे प्रतिवर्ष निश्चित.........देते थे, कुछ तो मित्रता से और कुछ प्रसन्न करने के लिये। २३। जिस प्रतापी के मस्तक पर तना एक छत्र लोगों के हृदय में शीतलता और शत्रुओं के हृदय में ताप उत्पन्न करता था, आश्चर्य (की बात है)। २४। उदारता, शौर्य, गंभीरता............इसमें हैं, इस प्रकार पृथ्वी यश के समान स्वच्छ देवमंदिरों रूपी हाथों को ऊपर उठाकर घोषित करती है। २५। क्या यह वह सुन्दर तन वाला कामदेव है जिसे शंकर की आंख ने देखा नहीं है? क्या यह श्री (समेत) वैकुण्ठ (पति विष्णु) है? शौर्य से क्या यह सूर्य है? मांगने वालों को लक्ष्मी देने वाला कुबेर है? इस प्रकार चर्चा करते हुये लोग जाजल्लदेव को बहुत समय से जानते हैं। २६।

श्री जाजल्लपुर............तापस मठ, उद्यान सहित आम्रवन, स्वर्ग के सरोवर जैसा मनोहर सरोवर............श्रीमान् जाजल्लदेव ने बनवाये। वे उसकी मनोरम कीर्ति हैं

। २७ । इसके गुरु श्रीमान् रुद्रशिव दिग्नाग आदि के न्याय के और अपने तथा अन्य सिद्धान्तों के जानकार हैं । २८ । इसका सांधिविग्रहिक विग्रहराज हुआ............ । २९ । जाजल्लदेव ने देव को सिरुली नामक उत्तम गांव दिया (और) मठ को शाश्वत शासन के रूप में पाटल (वृक्षों) का स.र्ग ।३०। अर्जुनकोणसरण ....। ३१ । समस्त शास्त्रों के सार के ज्ञाता (और) देवताओं के गुरु से प्रतिस्पर्धा करने वाले मन्त्रियों में श्रेष्ठ ...... गौडान्वय में उत्पन्न उस कायस्थ श्रीमान् .... जाजल्लदेव की प्रशस्ति रची ।३२। उसके विमल गुणों को गर्भेश .... ने प्रशस्ति का रूप दिया .... उत्तम हलदी .... ।३३। बुद्धिमान् (कीर्ति) धर ने प्रशस्ति लिखी जो सभी दिशाओं में पहुंच गई ।

संवत् ८६६ मार्ग (शीर्ष) सुदि ६ रविवार को ।

१६. द्वितीय पृथ्वीदेव के समय का कोटगढ़ में प्राप्त शिलालेख

(चित्रफलक बत्तीस)

लाल रंग के बलुवा पत्थर पर उत्कीर्ण यह लेख कोटगढ़ में प्राप्त हुआ था । इस लेख की खोज मिस्टर बेग्लर ने की थी जिन्होंने आर्कलाजिकल सर्वे रिपोर्टस, जिल्द सात (पृष्ठ-२११) में इस का विवरण दिया था । महामहोपाध्याय मिराशी ने कार्पस इंस्क्रिप्शनं इंडिकेरं, जिल्द चार (पृष्ठ ४३६–४२) में इसे सम्पादित किया है।

लेख खण्डित है; दायें ओर का भाग टूट जाने से प्रायः सभी पंक्तियां अपूर्ण बच रही है । लेख की लिपि नागरी और भाषा संस्कृत है । अंतिम दो पंक्तियों में देवपाणि और रूपकार पाल्हू का उल्लेख है जिन्होंने प्रशस्ति को क्रमशः रचा और उत्कीर्ण किया था ।

प्रशस्ति के प्रारंभ में शंकर जी की स्तुति है । तत्पश्चात् कलचुरि वंश का वर्णन है । तदनंतर वल्लभराज के पूर्वजों का उल्लेख है जिनमें से हरिगण का ही नाम बच रहा है । पंक्ति ८ में वल्लभराज का गुणगान प्रारंभ होता है । उसका नाम पंक्ति १६ में मिलता है । सोलहवें श्लोक में बताया गया है कि द्वितीय रत्नदेव की माता लाच्छल्लादेवी वल्लभराज को अपने दत्तक पुत्र जैसा मानती थी । वल्लभराज के धर्म कार्यों में.से.(कोटगढ़ में) शिवमंदिर का निर्माण कराने का इसमें उल्लेख है ।

मूलपाठ

पंक्ति

१ ओं नमः शिवाय ॥ श्रिये तद्भूवतामस्तु शंभोः पादरज ... ...

२ कुलचूडापीडमाणिक्यमासीतुलिततरणितेजा ... ... [१:]

३ ॥ ३ ॥ जातः संगरसोमसंवरवरिक्षोणीन्द्रवृन्दारक... ... ...

४ त्नदेवस्ततः ॥ ४ ॥ तस्य पूर्वजराजानामभून्नीतिविदां ... ...

५ करः । जानस्याः सवनं भुवो भवहरः स्वस्वामिविद्वेषिणां ... ...

६ वापधिनीराजहंसो हरिगण इति नाम्ना तस्य सूनुर्बभूव ... ...

७ विनता बभूव ॥ ८ ॥ तस्यामरातिकुलकैरवकाननश्रीलुण्टाक... ... ...

८ सापरिचये चिकित्सायामुच्चैर्गुणगणपरिज्ञानविषये । स ... ...

९ रुर्वीतले निर्म्मातिंगमखण्डविन्ध्यविपिनं पत्या पति दन्तिनां । ... ...

१० रतः प्रत्यर्थिपृथ्वीपतौ सद्यःकृतमदेभकुम्भविगलन्मुक्ताफलैः ... ...

११ न दुर्द्दमबलिध्वन्सा(स्ता)य दूरं गतो लोकेशेन पुनर्न्वितः सुमनसा ... ...

१२ स्नातेव क्षीरसिन्धौ स्फटिकगिरिसि (शि) लानिर्म्मितेव प्रकामं शुद्धश्री ... ...

१३ विज्ञि जगती राजते यस्य कीर्तौं ॥ १४ ॥ जलावोन्याहतुं कलयति ... ...

१४ न्वितरति वसुन्धर्यार्पूते ॥ १५ ॥ कृत्नं यशोदेव गुहं शिवेव लाञ्छल्लदेवी ... ...

१५ तः प्राक्पौलस्त्यभुजाटवीविघटितप्रावाणमाकर्ण्य च । दायादः ... ...

१६ टुकेश्वरपुरी ख्याता हि लोके पुनर्म्मर्त्ये वल्लभराजनिर्म्मितमिदं प्रार्त्ती [क्य ❀]

....

१७ ॥ १८ ॥ कृत्वा मानससलिलक्रीडामुत्थाय तीरविश्रान्तः ऐरावत इव... ... ...

१८ च्चारुसरोजराजितं स च त्रिलोकीमुकुरं सरोवरम् ॥ २० ॥ दयदखिलस ... ...

१९ धीरस्थानमदभ्रः प्रियं वातोद्धूतपरागपूगमहिकाविभ्यस्तसूरप्रभम् । जन्मस्था... ... ...

२० नं यदवाप पुन्यं भक्त्या तदर्द्धमवदातविवेकधीरः श्रीरत्नदेव धरणीपतये कृत ... ...

२१ त्नदेवनृपतिः संडेन्दुचूडामणेः । प्राचन्द्रार्क्कमपारपुण्यपदले पूजार्थमन्यचितो ... ...

२२ नं राजशासनात् ॥ २५ ॥ इदानीमस्यायं प्रथितपृथुकीर्त्तिः प्रियसुतः कृतार्थं नानार्थैः
सव ... ...

२३ नुजो विजयधाम कृती कृतज्ञः कौमारविक्रम [परो] जयसिंहदेवः । यस्येव पालनप-

....

२४ मालाभिरामं त्रिनयनशिरसि त्र्यम्बगा यावदास्ते । त्रैलोक्ये त्र्यम्बकस्य त्रिपुरजययशो
गी...................

२५ केतनानाम् । श्रीदेवपाणिरमिताममृताम्बुधारा [सा] रामिरामजननीमकरोत्प्रशसि
(स्ति) म् ॥ २६ ॥ ....

२६ न्ताक्षरसंदोहैर्मन:प्रभूतविकारिभि: ॥ [३० ॥ ❀] रूपकारपाल्हूकेनोत्कीर्णेति ॥ ❀ ॥

अनुवाद

ओम् । शिव को नमस्कार ।

शंभु के चरणों की वह धूल आप की शोभा के लिये हो....................... ! (पंक्तियों के खण्डित हो जाने से अर्थ देना संभव नहीं है) पंक्ति १६ में वल्लभराज द्वारा निर्मित हट्टकेश्वरपुरी का उल्लेख है। पंक्ति १८ में सरोवर बनवाने की सूचना। पंक्ति २० और २१ में द्वितीय रत्नदेव का उल्लेख है। पंक्ति २२ में द्वितीय पृथ्वीदेव का और पंक्ति २३ में उसके अनुज जयसिंह का उल्लेख है। पंक्ति २५ में बताया गया है कि देवपाणि ने इस प्रशस्ति की रचना की। पंक्ति २६ में रूपकार पाल्हू का नाम है जिसने प्रशस्ति को उत्कीर्ण किया था।

१७. द्वितीय पृथ्वीदेव का डैकोनी में प्राप्त ताम्रपत्रलेख: (कलचुरि) संवत् ८९०

(चित्रफलक तेतीस, चौंतीस (क))

मुद्रा समेत ये दोनों ताम्रपत्र ईस्वी सन् १९४४ में जांजगीर से १२ किलोमीटर उत्तर में स्थित डैकोनी नामक गांव में मिले थे। इस लेख को श्री वेंकटरामैया ने एपिग्राफिग्रा इण्डिका जिल्द अट्ठाईस (पृष्ठ १४६ इत्यादि) में और महामहोपाध्याय वासुदेव विष्णु मिराशी ने कार्पस इंस्क्रिप्शनं इंडिकेरं, जिल्द चार (पृष्ठ ४४३-४४६) में प्रकाशित किया है।

प्रत्येक ताम्रपत्र की चौड़ाई ३० से० मी० और ऊंचाई १७ से० मी० है। दोनों पत्रों पर बने छेद में छल्ला पिरोया हुआ है जिसके दोनों छोर राजमुद्रा से जुड़ जाते हैं। राजमुद्रा वृत्ताकार है और उसका व्यास २·४ से० मी० है। उसके उपरले भाग में गजलक्ष्मी की प्रतिमा है और निचले भाग में दो पंक्तियों में राजश्रीमत्पृथ्वीदेव लिखा है। दोनों ताम्रपत्रों का वजन २६२५ ग्राम और मुद्रा का वजन ४३५ ग्राम है। लेख नागरी लिपि में लिखा है और उसमें १८ संस्कृत श्लोक हैं।

प्रारंभ में ब्रह्मा की स्तुति की गई है। तत्पश्चात् कार्तवीर्य से लेकर द्वितीय रत्नदेव तक कुलचरि राजाओं की वंशावली दी है। बारहवें श्लोक में (द्वितीय) पृथ्वीदेव का वर्णन है जिसने प्रस्तुत दानपत्र को लिखवाया था। आगे बताया गया है कि (द्वितीय) पृथ्वीदेव ने मध्यदेश में स्थित बुदुकुनी नामक ग्राम सोत्तम के नाती, शिवदास के बेटे, पांच प्रवर युक्त वत्सगोत्रीय ब्राह्मण विष्णु को, कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की पंचमी को चन्द्रग्रहण के समय दान में दिया था। ताम्रपत्र (कलचुरि) संवत् ८९० मार्गशीर्ष वदि ११ रविवार तदनुसार

१७ अक्टूबर ११३९ ईस्वी को उत्कीर्ण किये गये थे। दान दिया गया ग्राम बुदुकुनी वर्तमान ढेंकोनी हो सकता है।

मूलपाठ

पंक्ति

१ सिद्धिः[1] ओं नमो ब्रह्मणे ॥ निर्ग्गुणं व्यापकं नित्यं शिवं परमकारणम् । भावग्राह्यं परं ज्योतिस्तस्मै सद्ब्रह्मणे नमः ॥ १ ॥

२ यदेतत्प्रेसरमंबरस्य ज्योतिः स पूषा पुरुषः पुराणः । अथास्य पुत्रो मनुरादिराजस्तवन्व- येऽभूद्भुवि का—

३ र्तवीर्यः ॥ २ ॥ देवः श्रीकार्त्तवीर्यः क्षितिपतिरभवद्भू‿पं मूलधाम्ना हेलोत्क्षिप्ताद्रि- भ्रिम्यत्तुहिन—

४ गिरिसुताश्लेषसन्तोषितेशम् । दोर्द्दंडाकांडसेतुप्रतिनमितमहावारिरेवाप्रवाहव्याधूतत्र्य—

५ म्बुजागुरुजनितदयं रावणं यो बबंध ॥ ३ ॥ तद्वंशप्रभवा नरेन्द्रपतयः ख्याताः क्षितौ हैह—

६ यास्तेषामन्वयभूषणं रिपुमनोविन्यस्ततापानलः । धर्म्मध्यानधनानुसंचितयशाः सस्वत्सतां (शश्वत्सतां) सौख्य—

७ कृत्प्रेयान्सर्व्वगुणान्वित : समभवच्छ्रीमानसौ कोक्कलः ॥ ४ ॥ अष्टादशारिकरिकुंभ- विभंगसि—

८ हाः पुत्रा बभूवुरतिसौ (शौ) र्यपराश्च तस्य । तत्राग्रजो नृपवरस्त्रिपुरीश आसीत्पा- र्श्वे च मंडलपतीन्स

९ चकार बंधून् ॥ ५ ॥ तेषामनुजस्य कलिंगराजः प्रतापवह्निज्वलितारिराजः । जातोऽन्वये ह्रिष्टरि—

१० पुप्रवीरप्रियाननांभोरुहपार्व्वणेन्दुः ॥ ६ ॥ तस्मादपि प्रततनिर्म्मलकीर्तिकान्तो जातः सुतः कमलरा—

११ ज इति प्रसिद्धः । यस्य प्रतापतरणावुदिते रजन्यां जातानि पंकजवनानि विकासभांजि ॥ ७ ॥ तेना—

१२ प चंद्रवदनोऽजनि रत्नराजो विस्वो (श्वो) पकारकरणाञ्चितचेष्टः । येनपुमाय स्वबाहुयुगनि—

---

१. प्रतीक द्वारा सूचित।

१३ न्मितविक्रमेण नीतं यशस्त्रिभुवने विनिहत्य स (श) त्रून् ॥ ८ ॥ नोनल्लाख्या प्रिया तस्य शूरस्ये—

१४ व हि शूरता । तयोः सुतो नृपश्रे (ष्ठः) पृथ्वीदेवो बभूव ह ॥ ९ ॥ पृथ्वीदेवसमुद्भवः समभवज्जाजल्लदे—

१५ वोसुतः शूरः सज्जनवांछितार्थफलदः कल्पद्रुमः श्रीफलः सर्व्वेषामुचितोऽर्च्चने सुमनसां

१६ तीक्ष्णद्विषत्कंटकः यस्य (श्य) कांततरांगनांगमदनो जाजल्लदेवो नृपः ॥ १० ॥ तस्यात्मजः सकलकोसलल—

१७ ब्धश्रीः श्रीमान्समाहृतसमस्तनराधिपश्रीः सर्व्वक्षितीश्वरसि (शि) रोविहिताङ्घ्रि-सेवः स (से) वाभृतां निधिरसौ भु—

१८ वि रत्नदेवः ॥ ११ ॥ तस्यैव तनयो धात्रीं प्रसा (शा) स्ति नयसंपदा । पृथ्वीदेवो महीपालो विसा (शा) लो—

१९ ज्ज्वलपौरुषः ॥ १२ ॥ वत्सस्य गोत्रेऽतिपवित्रमूर्त्तिर्द्विजोत्र पंचप्रवरो बभूव । समस्त-शास्त्रा—

२० गमवेदवेत्ता ब्रह्मोपमः सुडोरामनामधेयः ॥ १३ ॥ अनुकुर्वंति (न्ति) जपितरं सकलगुणोर्घैरत (न)—

२१ थंगुणरासि (शिः) । शिवदासनामधेयस्तस्य नमस्यः सुतो भूतः ॥ १४ ॥ प्राप्तस्त्रिवेदी विदुषामसे (शे)—

२२ षसा (शा) स्त्रागमज्ञानमनोज्ञसी (शी) लः । विष्णूपमो विष्णुरिति प्रसिद्धस्ततः सुतः प्रादुरभूत्प्रस (श) स्यः ॥

२३ १५ ॥ राहुग्रस्ते रजनितिलके कार्त्तिकि पंचदस्यां (श्यां) कृत्वा हस्तोदकमिह महाश्र-द्धया मध्यदेसे (शे) सर्व्वा—

२४ दायैः सह बुडुकुनीग्राममत्यंतरम्यं पृथ्वीदेवो नरपतिरदाद्विष्णवे ऽस्मै द्विजाय ॥ १६ ॥ सं (शं) खं (खो) भद्रा—

२५ सनं छत्रं गजास्व (श्व) वरवाहनम् । भूमिदानस्य चिह्नानि फलं स्वर्गः पुरंदर ॥ १७ ॥ स्वदत्तां परदत्तां वा

२६ यो हरेत वसुंधराम् । स विष्ठायां कृमिर्भूत्वा पितृभिः सह मज्जति ॥ १८ ॥ संवत् ८९० मार्ग्ग वदि

२७ ११ रवौ ॥

मुद्रा

१ राजश्रीमत्पृथ्वीदे—

२ वः।

अनुवाद

सिद्धि। श्रोम् ब्रह्म को नमस्कार। उस सद्ब्रह्म को नमस्कार है जो निर्गुण है, व्यापक है, नित्य है, शिव है, (संसार का) परम कारण है तथा वह परमज्योति है जो (केवल) भावग्राह्य है। १। आकाश में बढ़ती हुई यह जो सूर्य नामक ज्योति है वह आदि पुरुष है; उसका बेटा मनु पहला राजा हुआ जिसके परिवार में पृथ्वी पर कार्तवीर्य हुआ। २। देव श्री कार्तवीर्य राजा पृथ्वी के आभूषण थे उन्होंने रावण को कैद कर लिया था (उस रावण-को) जिसने कैलास को आसानी से उठा लिया और उस (उठाने) से डरी हुई पार्वती के आलिंगन द्वारा शिव को संतुष्ट किया था तथा जिसने अपनी शक्तिशाली भुजाओं के सेतु से बहुत जलवाली रेवा (नदी) का प्रवाह प्रतिगामी कर दिया था क्योंकि (रेवा ने) शिवजी की पूजा (सामग्री) बहा दी थी जिससे वह (रावण) अत्यन्त रुष्ट हो गया था। ३। उस (कार्त्तवीर्य) के वंश में उत्पन्न राजा पृथ्वी पर हैहय कहलाये। उस वंश का भूषण वह श्रीमान् (प्रथम) कोकल्ल हुआ जो सब गुणों से युक्त था; जिसने शत्रुओं के मन में तापरूपी अग्नि सुलगा दी थी; धर्मध्यान रूपी धन से यश संचित किया था (और) जो सज्जनों को सदा प्रिय और उन्हें सुखकारी था। ४। उसके अठारह बेटे हुये जो अत्यन्त शौर्य वाले थे; उन्होंने अपने शत्रुओं को ठीक वैसे ही नष्ट कर डाला था जैसे सिंह हाथियों के कुम्भ को फाड़ डालता है। उनमें से जेठा त्रिपुरी का स्वामी हुआ और उसने अपने भाइयों को निकटवर्ती मण्डलों का स्वामी बनाया। ५। उनके छोटे भाई के परिवार में कलिंगराज हुआ जिसने अपने प्रताप की आग से शत्रुओं को जला डाला था और जो शत्रुओं के बड़े-बड़े वीरों की पत्नियों के मुखरूपी कमलों के लिये पूर्णचन्द्र था। ६। उससे भी एक बेटा हुआ जो कमलराज के नाम से प्रसिद्ध था। वह फैलती हुई निर्मल कीर्ति से प्रकाशित था; जब उसके प्रताप सूर्य का उदय हुआ तो कमलों के समूह रात में विकसित हो गये। ७।

उसके बाद उस (कमलराज) से (प्रथम) रत्नराज हुआ जिसका मुख चन्द्रमा जैसा था, जिसने विश्व के उपकार और करुणा द्वारा भारी पुण्य कमाया था और अपने बाहुयुगल से निर्मित विक्रम द्वारा शत्रुओं को मारकर दोनों लोकों में (अपना) यश फैलाया था। ८। उसकी नोनल्ला नाम की (पत्नी) उतनी ही प्रिय थी जितनी शूर को शूरता होती है। उन दोनों का बेटा नृपश्रेष्ठ (प्रथम) पृथ्वीदेव हुआ। ९। पृथ्वीदेव से उत्पन्न राजल्लादेवी का बेटा राजा (प्रथम) जाजल्लदेव हुआ जो शूर था; सज्जनों को इच्छित वस्तुयें देने वाला और लक्ष्मीरूपी-फल युक्त कल्पवृक्ष था; सब देवताओं की उचित पूजा करता था, तीक्ष्ण शत्रुओं के

लिये कांटा था (और) सुन्दर स्त्रियों के लिये सशरीर कामदेव था। १०। उस (प्रथम जाजल्लदेव) का बेटा श्रीमान् (द्वितीय) रत्नदेव हुआ, वह पृथ्वी पर सेवा करने वालों के लिये निधि था; उसकी लक्ष्मी समस्त कोसल को सजाने के लिये थी; उसने सभी राजाओं की श्री छीन ली थी और उसके चरणों की सेवा (अन्य) राजाओं के मस्तक करते थे। ११।

उस (द्वितीय रत्नदेव) का ही यह बेटा (द्वितीय) पृथ्वीदेव नीतिरूपी संपत्ति से पृथ्वी का पालन कर रहा है, इसका पौरुष विशाल और उज्ज्वल है। १२।

पांच प्रवर युक्त ओत्तम नामक ब्राह्मण यहां वत्स गोत्र में हुआ। वह अत्यन्त पवित्र और ब्रह्मा के समान समस्त शास्त्रों, आगमों और वेदों को जानता था। १३। उसके शिवदास नामक बेटा था जो अपने गुणों के समूह से पिता का अनुकरण करता था। १४। उस शिवदास से विष्णु नाम से प्रसिद्ध श्रेष्ठ पुत्र हुआ जो विष्णु के समान है, विद्वानों में श्रेष्ठ है, तीनों वेदों का ज्ञाता है (और) सभी शास्त्रों और आगमों के ज्ञान से मनोज्ञ शील युक्त है। १५। इस विष्णु नामक ब्राह्मण को राजा (द्वितीय) पृथ्वीदेव ने कार्तिकमास की पूर्णिमा को चन्द्रग्रहण के समय, बड़ी श्रद्धा के साथ हाथ में जलदान पूर्वक, इस मध्यदेश में (स्थित) अत्यन्त रमणीक बुड़ुकुनी नामक ग्राम सभी आदायों के साथ दान में दिया। १६।

हे पुरंदर ! शंख, भद्रासन, छत्र, श्रेष्ठ घोड़े और हाथी, ये भूमिदान के चिन्ह हैं और स्वर्ग फल है। १७। अपनी दी हुई या दूसरों की दी हुई भूमि का जो हरण करता है, वह विष्ठा में कीड़ा बन कर पितरों सहित डूबता है। १८।

संवत् ८९० मार्ग (शीर्ष) वदि ११ रवि (वार) को।

मुद्रा

राजा श्रीमान् पृथ्वीदेव।

१८. द्वितीय पृथ्वीदेव का बिलैंगढ़ में प्राप्त ताम्रपत्रलेखः (कलचुरि) संवत् ८९६
(चित्रफलक चौंतीस (ख), पैंतीस)

मुद्रा समेत ये दोनों ताम्रपत्र ईस्वी सन् १९४५ में रायपुर जिले के बिलैंगढ़ नामक गांव में प्राप्त हुये थे। इन पर उत्कीर्ण प्रस्तुत लेख को महामहोपाध्याय वासुदेव विष्णु मिराशी ने कार्पस इंस्क्रिप्शनं इंडिकेरं, जिल्द चार (पृष्ठ ४५८-६२) में प्रकाशित किया है।

दोनों पत्रों में से प्रत्येक की चौड़ाई २६ से० मी० और ऊंचाई १६ से० मी० है। उनके तीन ओर बेलें बनाई गई हैं। और छल्ला पिरोने के लिये एक-एक छेद है। छल्ले से जुड़ी हुई राजमुद्रा के ऊपरी भाग में राजलक्ष्मी की प्रतिमा है और उसके नीचे दो पंक्तियों में

राजा श्रीमत्पृथ्वीदेव लिखा है। प्रत्येक पत्र पर अठारह-अठारह पंक्तियां उत्कीर्ण हैं, इस प्रकार पूरे लेख में ३६ पंक्तियां हैं। लेख की लिपि नागरी और भाषा संस्कृत है। श्लोकों की संख्या २४ है।

लेख ब्रह्मा की स्तुति से प्रारम्भ होता है। दसवें श्लोक तक कलचुरि राजाओं की वंशावली (द्वितीय) रत्नदेव तक दी गई है। ग्यारहवें श्लोक में (द्वितीय) पृथ्वीदेव का वर्णन है जिससे विदित होता है कि उसने चक्रकोट (वर्तमान चित्रकूट, जिला बस्तर) को जीतकर गंग राजा को डरा दिया था। वह गंग राजा संभवतः अनंतवर्मा चोड़गंग था। उसने (द्वितीय) पृथ्वीदेव के पिता (द्वितीय) रत्नदेव के समय में कलचुरि साम्राज्य पर आक्रमण किया था जिसमें उसकी पराजय हुई थी। बारहवें श्लोक से दान प्राप्त करने वाले ब्राह्मण देल्हुक की वंशावली प्रारम्भ होती है जिसमें बताया गया है कि वत्स गोत्र में हापुक हुआ, उसका बेटा जीमूतवाहन था, जीमूतवाहन का बेटा देल्हुक वेदान्त और शाकंभरी विद्या में निपुण था। इस कारण (द्वितीय) पृथ्वीदेव का ब्रह्मदेव नामक सामन्त उसे बहुत मानता था। सोलहवें श्लोक में सूचना दी गई है कि इस देल्हुक ब्राह्मण को राजा (द्वितीय) पृथ्वीदेव ने सूर्यग्रहण पर्व में एवडि मण्डल में (स्थित) पण्डरतलाई नामक ग्राम (कलचुरि) संवत् ८९६ तदनुसार ११४४-४५ ईस्वी में दान दिया।

इस प्रशस्ति की रचना शुभंकर के बेटे मल्हण ने की थी; ताम्रपत्र वामन ने बनाये थे, कीर्ति (धर) के बेटे ने उन पर लेख लिखा और लक्ष्मीधर के बेटे ने उत्कीर्ण किया।

दान में दिया गया ग्राम पण्डरतलाई आजकल का पंडरिया है जो शिवरीनारायण से १२ किलोमीटर पर बसा है।

मूलपाठ

पंक्ति

प्रथम पत्र

१ सिद्धिः[1] ओं नमो ब्रह्मणे ॥ निर्गुणं व्यापकं नित्यं शिवं परमकारणं[।] भावग्राह्यं परं ज्योतिस्तस्मै सद्ब्रह्म-

२ णे नमः ॥१॥ यदेतदेतरमंबरस्य ज्योतिः स पूषा पुरुषः पुराणः। अथास्य पुत्रो मनुरा

३ विरासत्तदन्वये भूद्भुवि कार्त्तवीर्यः ॥२॥ तद्वंशप्रभवा नरेन्द्रपतयः ख्याताः क्षितौ हैहया-

४ स्तेषामन्वयभूषणं रिपुमनोविन्यस्ततापानलः। धर्म्मंध्यानधनानुसंचितयशाः तत्व[ ] (अत्व)[ ]त्सतां सौख्य-

---

१ प्रतीक द्वारा सूचित।

५ कृत्प्रेवान्तर्गुणान्वितः समभवच्छ्रीमानसौ कोक्कलः ॥३॥ अष्टादशारिकरिकुंभवि-
भंगसिंहा

६ पुत्रा बभूवुरतिसौ (शौ) र्यपराश्च तस्य । तत्राग्रजो नृपवरस्त्रिपुरीश आसीत्पार्श्वे
(र्श्वे) च मंडलपतीन्स

७ चकार बंधून् ॥४॥ तेषामनूजस्य कलिंगराजः प्रताप [व] ह्निप्लुषितारिराज : ।
जातोन्वये द्वि-

८ ष्टरिपुप्रवीरप्रियाननांभोरुहपार्व्वणेन्दुः ॥५॥ तस्मादपि प्रततनिर्म्मलकीर्त्तिकान्तो जा-

९ तः सुतः कमलराज इति प्रसिद्धः । यस्य प्रतापतरणावुदिते रजन्यां जातानि पंकज-

१० वनानि विकासभांजि ॥६॥ तेनाथ चंद्रवदनोजनि रत्नराजो विश्वोपकारकरुणार्जि-

११ तपुण्यभारः । येन स्वबाहुयुगनिर्म्मितविक्रमेण नीतं यशस्त्रिभुवने विनिहत्य श-

१२ त्रून् ॥७॥ नोनल्लाख्या प्रिया तस्य शूरस्येव हि शूरता । तयोः सुतो नृपश्रेष्ठः पृथ्वीदेवो

१३ बभूव ह ॥७॥ पृथ्वीदेवसमुद्भवः समभवद्राजल्लदेवीसुतः शूरः सज्जनवांच्छि (छि)
तार्थफल-

१४ दः कल्पद्रुमः श्रीफलः । सर्व्वेषामुचितोर्च्चने सुमनसां तीक्ष्णद्विषत्कंटकः यस्य (स्य)
त्कान्त-

१५ तरांगनांगमदनो जाजल्लदेवो नृपः ॥९॥ तस्यात्मजः सकलकोसलमंडनश्रीः श्रीमा-

१६ न्समाहृतसमस्तनराधिपश्रीः । सर्व्वक्षितीश्वरशिरोविहितांह्रिसेवः सेवामृतां नि-

१७ धिरसौ भुवि रत्नदेवः ॥१०॥ पुत्रस्तस्य प्रथितमहिमा सोऽभवद् भूपतीन्द्रः पृथ्वीदे-

१८ वो रिपुनृपशिरः श्रेणिवर्त्तांह्रिपद्मः । यः श्रीगंगं नृपतिमकरोच्चक्रकोटीपम-

द्वितीय पत्र

१९ ह्रीश्चिन्ताक्रान्तं जलनिधिजलोल्लंघनेकाम्युपाये ॥११॥ॐ॥ गोत्रे वत्समुनेरनल्पम-
हिमा हा-

२० पूकनामा पुरा विप्रोऽभूद्भुवनप्रियः श्रुतिविदामाद्योऽनवद्योन्नतिः । यस्यासो (शो)
भि यशोभि-

२१ रम्बरतलं कर्प्पूरपारिप्लवश्रीखंडद्रवसोदरैरिव सदा लिप्तं समन्तादपि ॥१२॥ जीमूतवा

२२ हन इति प्रथितस्तदीयः पुत्रः पवित्रितचरित्रि वचस्त्वचरित्रं । आसीदसीमगुणगौरवगुं-

२३ फितश्रीः श्रीरेव यत्र च मुमोच निजं चलत्वं ॥१३॥ देल्हूक इत्यभवदस्य सुतो मनीषी वे-

२४ दान्ततत्त्वनिपुणा धिषणा यदीया । स्फूर्त्तिः स्मृतावनुपमा महिमा च यस्य विश्वो-
पकार [करणे]

२५ चतुरोन्नतस्य ॥१४॥ सा (शा) कंभरीमनुपमां भुवनेषु विद्यां ज्ञात्वाग्रतो युधि विजित्य समस्त-

२६ शत्रून् यं ब्रह्मदेव इति विश्रुतमांडलीको जानाति निर्ज्जरगुरुप्रममेकमुर्व्व्याः ॥१५॥

२७ पंडरतलाईग्रामं ख्यातमेवडिमंडले । पृथ्वीदेवो ददौ तस्मै सूर्य्यग्रहणपर्व्वणि ॥१६॥

२८ ॥ सि (शि) रस्तंभसहस्रेण यावद्धत्ते महिर्महिः । तावत्ताम्रमिदं पाल्यमेतदन्वयज- न्मभिः ॥१७॥ का-

२९ लान्तरेपि यः कश्चिन्नृपोऽमात्योऽथवा भवेत् । पालनीयः प्रयत्नेन धर्म्मोयं मम तैरपि

३० ॥१८॥ ꣸ बहुभिर्व्वसुधा भुक्ता राजभिस्सगरादिभिः । यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य त

३१ स्य तदा फलं ॥१९॥ पूर्व्वदत्तां द्विजातिभ्यो यत्नाद्रक्ष पुरंदर । महीं महीभृतां श्रेष्ठ दाना-

३२ च्छ्रेयो हि पालनं ॥२०॥ स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेत वसुंधरां । स विष्ठायां कृमि- र्भूत्वा पितृ-

३३ भिः सह मज्जति ॥२१॥ तडागानां सहस्रेण वाजपेय स (श) तेन च । गवां कोटि- प्रदानेन भूमि-

३४ हर्त्ता न सु (शु) ध्यति ॥२२॥ ताम्प्रस (श) स्तिरचनेयम [का] रि तेन श्रीमत्सु (च्छु) भंकरसुतेन बहु [श्रु]—

३५ तेन । श्रीमल्हणेन कविकैरवषट्पदेन भूरिप्रबंधरचितार्थलभ (स) त्पदेन ॥ २३ ॥ घटितं वा-

३६ मनेनात्र लिखितं श्रीरिसूनुना । लक्ष्मीधरसुतेनेदमुत्कीर्ण्णं ताम्रमुत्तम (मम्) ॥२४॥ संवत ८९६ श्वमिने¹ [५]

मुद्रा

१ राजश्रीम-

२ त्पृथ्वीदेवः ।

अनुवाद

सिद्धि । ओम् ब्रह्मा को नमस्कार । (श्लोक क्रमांक १ से १० के अर्थ के लिये लेख क्रमांक १७ देखिये) । (द्वितीय रत्नदेव) का बेटा, राजाओं का राजा, प्रसिद्ध महिमा वाला वह (द्वितीय) पृथ्वीदेव हुआ जिसने शत्रु राजाओं के शिरों की पंक्ति पर अपने चरणकमल रखे

१ 'आश्विने' पढ़िये।

और चक्रकोट का मर्दन करके श्री गंग राजा को (ऐसा) आक्रान्त कर दिया कि उसे समुद्र के जल को पार कर जाना मात्र ही (जीवन रक्षा का) एक उपाय दिखा । ११ । पूर्व काल में वत्स मुनि के गोत्र में बड़ी महिमावाला हापूक नामक ब्राह्मण हुआ; वह वेदज्ञों में श्रेष्ठ और संसार को प्यारा था; उसकी उन्नति निर्मल थी, उसके यश से अम्बरतल इस प्रकार शोभित था जैसे (उस पर) कपूर और चन्दन का लेप लगा हो । १२ । उसके बेटे जीमूतवाहन ने अपने चरित्र से पृथ्वी को पवित्र कर दिया था, असीम गुणों के गौरव से लक्ष्मी का संग्रह किया था (यहां तक कि) उसके मामले में लक्ष्मी ने अपना चंचलपन (भी) छोड़ दिया था । १३ । उसका मनीषी बेटा देल्हुक हुआ; उसकी बुद्धि वेदान्त में निपुण और स्मृति में अनुपम स्फूर्ति वाली थी, उसकी अनुपम महिमा विश्व का उपकार करने में चतुर तथा उन्नत थी । १४ । उसने संसार में अनुपम शाकंभरी विद्या को सीखकर युद्ध में शत्रुओं को आसानी से सामने जीत लिया था जिससे (प्रभावित होकर) सुप्रसिद्ध माण्डलीक ब्रह्मदेव उसे देवताओं के गुरु (बृहस्पति) के बराबर बहुत मानता था । १५ ।

उसे (द्वितीय) पृथ्वीदेव ने सूर्यग्रहण पर्व में प्रसिद्ध एवडिमण्डल में (स्थित) पण्डरतलाई गांव दिया । १६ । इस वंश में जन्म लेने वाले इस ताम्र (लेख) का पालन तब तक करें जब तक (शेष) नाग स्तंभों जैसे हजार मस्तकों पर पृथ्वी को धारण करता है । १७ । कालान्तर में भी जो कोई राजा या मन्त्री हो, वे भी मेरे इस धर्म का जतन से पालन करें ।१८। (आगे शापाशीर्वादात्मक चार श्लोक हैं) तांबे पर खुदी इस प्रशस्ति की रचना श्रीमान् शुभंकर के बेटे उस मल्हण ने की जो बहुश्रुत है, कवि रूपी कमलों के लिये भौंरा है (और) जिसने विशिष्ट अर्थ वाले पदों से बहुत से प्रबन्धों की रचना की है । २३ । ये उत्तम ताम्र (पत्र) वामन ने तैयार किये । इन पर कीर्ति के बेटे ने (लेख) लिखा, जो लक्ष्मीधर के बेटे ने उत्कीर्ण किया । २४ ।

संवत् ८९६ (आश्विन)

मुद्रा

राजा श्रीमान् पृथ्वीदेव ।

१९. द्वितीय पृथ्वीदेव का घोटिया में प्राप्त ताम्रपत्रलेख : कलचुरि संवत् १००० (९००)

(चित्रफलक छत्तीस, सैंतीस (क))

मुद्रा सहित ये दोनों ताम्रपत्र रायपुर जिले की बलोदा बाजार तहसील में स्थित घोटिया नामक गांव के एक खेत में प्राप्त हुये थे । इस लेख को रायबहादुर डाक्टर हीरालाल

ने इंडियन एंटिक्वरी, जिल्द चौवन (पृष्ठ ४१ इत्यादि) और बाद में महामहोपाध्याय वासुदेव विष्णु मिराशी ने कार्पस इंस्क्रिप्शनं इंडिकेरं, जिल्द चार (पृष्ठ ४७८-८३) में प्रकाशित किया है।

प्रत्येक पत्र की चौड़ाई ३४.५ से० मी० और ऊंचाई २१.५ से० मी० है। वे छल्ले में पिरोये हुये हैं जिसके छोर मुद्रा से जुड़े हैं। मुद्रा पर गजलक्ष्मी की प्रतिमा और दो पंक्तियों में 'राजश्रीमत्पृथ्वीदेव' यह लेख है। दोनों पत्रों, छल्ले और मुद्रा का कुल वजन ३४४० ग्राम है।

लेख नागरी लिपि और संस्कृत छन्दों में है। किञ्चित् भाग गद्य में भी है।

इसमें (द्वितीय) पृथ्वीदेव तक कलचुरि राजाओं की वंशावली दी है और बताया गया है कि इस पृथ्वीदेव ने (किसी) संक्रान्ति के अवसर पर, सागत्त (सामन्त) मंडल में स्थित गोठवा नामक ग्राम आलवायन गोत्र और वसिष्ठ, मैत्रावरुण तथा कौडिन्य, इन प्रवरों युक्त, हरि के नाती और रिहिल के बेटे गोपाल नामक ब्राह्मण को दान में दिया था। दानपत्र को जडेरागांव के वास्तव्य वंश के कीतिधर के बेटे वत्सराज ने लिखा था और चान्दोक (चांद्रार्क) ने उत्कीर्ण किया था।

लेख में जो संवत् १०००, भाद्रपद शुदि गुरुवार तिथि पढ़ी है वह विश्वसनीय नहीं है क्योंकि न तो विक्रम के और न ही कलचुरि संवत् के १००० वें वर्ष में (द्वितीय) पृथ्वीदेव शासन करता था। इसलिये रायबहादुर हीरालाल इन ताम्रपत्रों को जाली मानते थे किन्तु महामहोपाध्याय मिराशी का मत है कि दानपत्र जाली तो नहीं है किन्तु पूर्व में दिये गये ताम्रपत्रों की बाद में बनाई गई प्रति है और संवत् ९०० ठीक न पढ़ा जाने के कारण प्रतिलिपि बनाने वाले ने संवत् १००० लिख दिया। तदनुसार इसकी तिथि २७ अगस्त ११४८ ईस्वी मानी जा सकती है।

दान में दिये गये ग्राम गोठवा को वर्तमान घोटिया माना जा सकता है।

मूलपाठ

पंक्ति

प्रथम पत्र

१ सिद्धिः ओं नमो ब्रह्मरा (रो) ॥ निर्गुणं व्यापकं नित्यं शिवं परमकारणम (म्)। म्य (भा) वग्राह्यं पर (रं) जोंति (ज्योति)

२ स्तस्मै सव (ब्र) ह्मणे नमः ॥१॥ यदेतदप्र (ग्रे) सरमस (म्ब) ब (र) स्य वा (ज्यो) तिः स पूपा (षा) पुरुषः प (पु) राणः ॥ अभास्य पत्रा (पुत्रो) मन (नु) राव (दि) राजस्तदन्वये-

३ भू ति का वीर्यः (भूद्भुवि कार्त्तवीर्यः) ॥२॥ तद्वसकसवा (तद्वंश प्रभवा) रेन्द्र (नरेन्द्र) पतयः गा (ख्या) ताः न्कि (कि) ता (तो) बे (हं) हया गेपासन्य पए[1] रिपुमरो (नो) विन्यस्त सा (ता) पा—

४ ल:[2] धर्म्मंत्यानदरनसचितपसा वसस्वलतां सौरपहृत[3] प्रेयान्स व्व (र्व्वं) गुणान्वितः समतव श्रीमानसो केक्कल:[4] ॥३॥ ग्रष्टा—

५ दसा (शा) रिकर (रि) कुल (कुम्भ) विभग (विभङ्ग) सिंहाः पुत्रा बकबुरति सौयपरा (बभुवुरतिशौर्यपराश्च) तस्य । तत्राग्रजो नृपवर (रः) पुरोम (त्रिपुरीश) सीत्पस्वे च (श्चासीत्पार्श्वे च) मडलपतीत स (मण्डलपतीन्स)

६ चकरव न (चकार बन्धून्) ॥ ४ ॥ त (ते) षामनु (नु) प (ज) स्य कलिंगराजः प्रतापव (व) ह्निः क्षपितारिराज; ॥ जातोऽन्वये द्वि [ष्ट] रिपुप्रवीरभियाननां [भो] रु–

७ गर्व्वेणेंदुः (हपार्व्वणेन्दुः) ॥ ५ ॥ तम्मा (स्मा) दपि प्रततनिर्म्मलकीर्तिकान्तो जातः सुतः कमलराज इति प (प्र) सि–

८ द्धः । यस्य प्रतापतरणावुदते रजन्यां जातानि पंकजवनावि (नि) विकासभांजि ॥ ६ ॥ ने (ते)

९ नास्य वं (चं) द्रवदनोऽजनि रत्नराजो विस्वो (श्वो) पकारकरणार्ज्जितपुन्यसा (भा) रः । येन स्वबाहु–

१० युगनिर्म्मितविक्रमेण नीतं यशस्त्रिभुवने विनिहत्य सत्रून (शत्रून्) ॥ ७ ॥ नोनल्ला-ख्या प्रि–

११ या तस्य शूरस्येव हि रा (सू) रता । तयो सुतो नृपसे (श्रे) ष्ठः पृथ्वीवेवो बभूव ह ॥ ८ ॥ पृ ॥

१२ ठव (थ्वीदेव) श (स) मुह (द्भू) वः सन (म) भवज्राजल्लदेवी (वो) सुतः शुरः सज्जनवांच्छितार्थदा (क) ल्पः कल्प —

१३ द्रु (द्रु) मः शीपालः (श्रीफलः) सर्व्वेषा (षा) गु (नु) वि (चि) तो ऽर्व्वने सुमनस्त्रां तीव्रगड्डितकंटकः यस्य (स्य) त्कान्ततरो—

१४ गना (णो) ग [म] वना (नो) जाजल्लदेवो नृपः ॥ ९ ॥ तस्यात्मजः सकलकोसल-मंडु (ड) [न] श्रीः श्रीमास्त (न्स)—

---

१. 'स्तोषामन्तयमूवनो' बांचिये।
२. 'नलः' बांचिये।
३. 'धर्म्मध्यानधनानुसंचितयशाः शश्वत्सतां सौख्यकृत्' बांचिये।
४. 'सममवच्छ्रीमानसौ कोक्कलः' बांचिये।

१५ माहुलसमस्तनराधि [पत्नीः]॥ सर्व्वक्षितीश्वरसि (शि) रा (रो) विहितांह्रिसेवः सेपलृता (सेवामृतां)

१६ ने (नि) धिरसौ भुवि रह्र (त्न) देवः ॥ १० ॥ पृथ्वीदेवस्ततो जातः पा (पो) तः वां (कं) ठीरवादिव सिंहतं

१७ हनना (नो) या (यो) ऽरिकरियूथमपोथयत् ॥ ११ ॥ तस्यैव तनयो [य]त्रीं (धात्रीं) प्रशासि (स्ति) पसंद (नयसम्पदा)

१८ पृथ्वीदेवो महीवाला (महीपालो) विसा (शा) लोज्वलपौरुषः ॥ १२ ॥ प्रभूत स्व (च्छ्) तिनदीसिंधुः पु (पू)—

१९ ता (तो) हरिरिति द्विजः । रिहिलाख्यस्य (स्त) ता (तो) जातः च (क) ल्पवृक्ष इवार्थिनाम् ॥ १३ ॥

द्वितीय पत्र

२० स (त) तो गोपालनामुर्व्वांत (ब) ल्यमूखरा; ॥ सु (श्रु) वि (ति) स्मृतिपुराणादावधीतो द्रुहिणोपमः ॥ १४ ॥ वसिष्ठम (मै)—

२१ त्रावरुणकौंडिन्यप्रवरत्रये ॥ शालंकायनगोत्राय श्रीमद्गोपाल स (श) र्म्मणे ॥ १५ ॥ प्रक्षाल्य चव (र) णा (णौ)—

२२ भोजद्वयं सागतमण्डल ॥ ददौ संका (क्रा) न्तिसमये मोठवाणा (ग्रा) मसंज्ञकं ॥१६॥ संखं (शंखो) भद्रासनं छ—

२३. त्रं गजाश्व (श्व) वरवाहनम् । भूमिदानस्य चिह्नानि फलं स्वर्ग्गः पुरंदर ॥१७॥ ब-

२४. हुभिर्व्वसुधा भुक्ता राजसि (भि): सगरादिभिः । यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा

२५. फलम् ॥१८॥ भूमिं यः प्रतिगृह्णाति यसु (स्तु) भूमिं प्रयच्छति । उभौ तौ पुण्यकर्म्मा-

२६. णौ नियतौ स्वर्ग्गगामिनौ ॥१९॥ पूर्व्वदत्तां द्विजातिभ्या (भ्यो) यत्नाद्रक्ष पुरंदर । म-

२७. हीं महीभृतां श्रेष्ठ दानाच्छ्रेयो हि पालनम् ॥२०॥ स्वदत्तां परदत्तां वा य (यो) हरेत

२८. वसुंधरां । स विष्ठायां कृमिर्भूत्वा पितृभिः सह मज्जति ॥२१॥ तडागानां सहस्रेण वा-

२९. य (ज) पेयस (श) तेन [च] । गवां का (को) टिप्रदानेन भूमिहर्ता न सु (शु) ध्यति ॥२२॥ प (ष) ष्टिर्व्वर्षसहस्रा (ष्टिं वर्षसहस्रा)

३०. णि स्वर्गे वसति भूमिदः । आच्छेत्ता चानुमन्ता च तान्येव नरके वसेत (त्) ॥३०॥

३१. इष्टं दत्तं हुतं चैव यत्किंचिद्धम्म (र्म्म) संचितम् । [अ] र्द्धांगुलेन [सी] माया हृणन (हरणेन) प्र –

३२. णस्य (श्य) ति ॥२४॥ यथा [प्सु] पतितं (तः) स (श) क्रतैलबिन्दुर्व्विसर्प्पति । एवं भूमिकृतं दानं

३३. सस्ये सस्ये प्ररोहति ॥२५॥ वास्तव्यवंस (श) कुमुदप्रविकासचंद्रः श्रीमानभू–

३४. दिह हि कीत्तिधरो मनीषी ग्रामो जडेर इति [य ❀] स्य सुता (तो) ऽस्य विद्वा (द्वा) न (न्) श्रीवत्स–

३५. राज इति ताम्रमिदं लिलेख ॥२६॥ चादोकेनोत्कीर्ण्णं (चांद्राकेणोत्कीर्णम्) । संवत् १००० भाद्र द (भाद्रपद) सुदि

३६. गुडौ (रौ)॥

मुद्रा

१. राजश्रीम –

२. त्पृथ्वीदेव [: । ❀]

अनुवाद

सिद्धि । ओम् ब्रह्मा को नमस्कार । (श्लोक १-१० के अर्थ के लिये लेख क्रमांक १७ देखें) । उस (द्वितीय रत्नदेव) से (द्वितीय) पृथ्वीदेव हुआ जैसे सिंह से पोत होता है ; उसका शरीर सिंह जैसा मजबूत है, उसने शत्रु रूपी हाथियों के झुंड को नष्ट कर दिया है ।११। उस (द्वितीय रत्नदेव) का यह बेटा महीपाल (द्वितीय) पृथ्वीदेव, जो विशाल और उज्ज्वल पौरुष युक्त है, नीति रूपी सम्पत्ति से पृथ्वी का शासन कर रहा है ।१२।

वेद रूपी नदियों के लिये सागर के समान, पवित्र ब्राह्मण हरि था । उसका रिहिल नामक (बेटा) याचकों के लिये कल्पवृक्ष था ।१३। उससे पृथ्वी मण्डल का भूषण गोपाल हुआ जो ब्रह्मा के समान वेद, स्मृति और पुराणों का ज्ञाता था ।१४। वसिष्ठ, मित्रावरुण (और) कौडिन्य-इन तीन प्रवरयुक्त, आलवायन गोत्र के श्रीमान् गोप्रम्ल शर्मा को (उसके) दोनों पैर धोकर (द्वितीय पृथ्वीदेव ने) सामन्तमण्डल का गोठदउ नामक ग्राम संक्रान्ति के समय दान में दिया । १५-१६ । (श्लोक १७-२५ शापाशीर्वादात्मक हैं) श्रीमान् कीर्तिधर यहां वास्तव्य वंश रूपी कुमुद को विकसित करने वाला चन्द्रमा हुआ ; उसका गांव जडेर था । उसके बेटे विद्वान् वत्सराज ने इस ताम्र को लिखा ।

चादोक (चांद्राक) ने उत्कीर्ण किया । संवत् १००० भाद्रपद सुदि गुरुवार

मुद्रा

राजा श्रीमान् पृथ्वीदेव

२०. गोपालदेव का पुजारीपाली में प्राप्त शिलालेख

(चित्रफलक अड़तीस)

काले पत्थर पर उत्कीर्ण यह शिलालेख रायगढ़ जिले के सारंगढ़ से ३५ किलोमीटर दूर स्थित पुजारीपाली के महाप्रभु के पुराने मंदिर के सामने रखा पाया था जहां से वह संग्रहालय में लाया गया। महामहोपाध्याय मिराशी ने कार्पस इंस्क्रिप्शनं इंडिकेरं, जिल्द चार (पृष्ठ ५८८-९४) में इसे सम्पादित किया है।

यह प्रशस्ति नागरी लिपि में संस्कृत श्लोकों में लिखी गई है। पंक्ति ३ में एक वाक्य तथा पंक्ति २५ में लेखक और उत्कीर्ण करने वाले के नाम गद्य में हैं। प्रशस्ति का मुख्य उद्देश्य गोपालदेव नामक सामन्त के धर्म कार्यों के संबंध में सूचना देना है।

प्रथम पंक्ति में ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर की वंदना है। तत्पश्चात् ३७ वें श्लोक तक विभिन्न शक्तियों तथा गोपाल द्वारा उनकी भक्ति का वर्णन है। इन श्लोकों में देवियों के आयुध, वाहन, रूप आदि का विवरण है। उन्नीसवें श्लोक में बताया गया है कि देवी गोपाल से प्रसन्न हुई और उसे वर दिया। चौबीसवें श्लोक में गोपाल द्वारा एक लाख मंत्रों से देवी की आराधना करने की सूचना है। श्लोक ३५-३७ में, युद्ध में गोपालदेव के विजयी होने का उल्लेख है। श्लोक ३८-४० में उन स्थानों के नाम गिनाये गये हैं जहां गोपाल ने विभिन्न निर्माण कार्य कराये थे। वे स्थान ये हैं, केदार, प्रयाग, पुष्कर, पुरुषोत्तम, भीमेश्वर, नर्मदा, गोपालपुर, वाराणसी, प्रभास, गंगासागर, वैराग्यमठ, शौरीपुर और पेंडराग्राम हैं।

इस प्रशस्ति के रचयिता कवि नारायण को रामाभ्युदय नामक काव्य का रचयिता बताया गया है। देदू ने इस प्रशस्ति को लिखा और धनपति ने उत्कीर्ण किया था। लेख में तिथि नहीं है किन्तु शिवरीनारायण में मिले (कलचुरि) संवत् ९१९ (११६७-६८ ईस्वी) के एक लेख में गोपालदेव का उल्लेख मिलता है इसलिये इस लेख का समय उसके लगभग किन्तु कुछ पूर्व होना चाहिये।

इस लेख में जिन स्थानों का उल्लेख हुआ है उनमें से केदार, प्रयाग, वाराणसी, नर्मदा और पुरुषोत्तम (जगन्नाथपुरी) सर्वविदित हैं। पुष्कर तीर्थ राजस्थान में है, प्रभास सौराष्ट्र में स्थित प्रभासपट्टन है, भीमेश्वर तीर्थ गोदावरी जिले में द्राक्षाराम के नाम से भी प्रसिद्ध है, और शौरीपुर उत्तरप्रदेश में है। पेंडराग्राम सारंगढ़ के निकट स्थित आधुनिक पेंडरी हो सकता है। उसी प्रकार पुजारीपाली से लगभग १५ किलोमीटर दूर मांड नदी के दाहिने तट पर बसा आधुनिक गोपालपुर इस प्रशस्ति का गोपालपुर हो सकता है।

मूलपाठ

पंक्ति

१ ......ता ब्रह्म [वि] ष्णु [महेश्वराः]..................म्मुका वारा [ही]

२ ......सा स्वयं ॥२॥ शंखचक्रधरा देवी वैष्णवी गरुडासना गोपालेन महाभक्त्या पुष्पधूपैश्च पूजिता ॥३॥ भुजङ्गवलया देवी महावृषभ [वाहना] । ... ...

३ ... ...॥४॥ नाम्ना त्रयीयं सा घोरा मत्प्रभावो रणाङ्गणे । नन्वेतस्याः सुगंभीरचित्त गोपाल ते नुतं ॥५॥ आद्यन्तदोषोयं द्वितीयश्लोकश्च ॥०॥ षण्मुखा शक्तिहस्ता... ...

४ [गोपालेन] स्तुता नित्यं सर्व्वपापप्रना (णा) स (श) नी ॥६॥ वाराही घोरसंरावा दंष्ट्रोद्धृतवसुन्धरा । स्तुता गोपालवीरेण भक्तिभावेन सर्व्वदा ॥७॥ नारसिंही सटा-क्षेपपातितोडगणा भुवि । चिन्ति ⏑ ⏑ ⏑ – – ⏑

५ गोपालेन बलाधिका ॥ ८ ॥ ऐन्द्री गजवरारूढा वज्रहस्ता महाबला । सहस्रलोचना देवी गोपालेन सुपूजिता ॥ ९ ॥ नीलोत्पलदलश्यामा चामुंडा प्रेतवाहना । गोपालेन रणेरीणां भयदान

६ – ⏑ ⏑ ॥१०॥ इन्द्रगोपकवर्ण्णाभा त्वरिता विद्युदुज्वला (ज्ज्वला)। मता सिन्दूरव-र्ण्णाभा गोपालेनाभिवन्दिता ॥ ११ ॥ निकला त्रिपुरा देवी निष्कला सुकला पुरा । त्रिकोणमंडला नित्यं गोपालहृदये स्थिता ॥१२॥ धनुष [श ❀]

७ [अय] करी [स] मयामत्तविग्रहा । मारीचा त्रिमुखी भीमा गोपालहृदये स्थिता ॥१२॥[1] जया रिपुप्रमथनी विजया जयवर्द्धनी । पथि क्षेमंकरी देवी गोपालेनार्च्चिता सदा ॥१३॥ सा वरा [स]—

८ सनामध्ये तु तारा भीममहार्ण्णवे । गोपालस्य प्रसन्नास्तु स्ता (ता) रणे [नैव] वारणा ॥ १४ ॥ ... ... पर्व्वते विन्ध्यवासिनी । महाकाली महामाया गोपालेन प्रपूजिता ॥१५॥ तोतला वि [प्र ❀]—

९ दोषेषु त्रैलोक्या विजया रणे । चर्च्चिका भूतदोषेषु सा गोपालेन [विश्रुता] ॥ १६ ॥ ⏑ ⏑ ⏑ [देवी च कामाक्षी महालक्ष्मीः] क्षमा दया । श्रीगोपालेन वीरेण भक्तिभावेन रंजिता ॥१७॥ सिद्धिः सरस्व [ती]

१० गौरी कीर्त्तिः प्रज्ञापराजिता । [आराधिता] महाभक्त्या गोपालेन दिने दिने [॥१८॥] ⏑ ⏑ ⏑ ⏑ ⏑ – – ⏑ ⏑ ⏑ ⏑ ⏑ ⏑ – ⏑ ⏑ । तास्य गोपालवीरस्य प्रसन्ना वरदाभवत् ॥१९॥ उवाच परम [प्री]—

११ ता देवी प्रत्यक्षरूपिणा । भो गोपाल महावीर [सत्पुत्रस्त्वं] न संशयः [॥२२॥] ⏑ ⏑ ⏑ ⏑ ⏑ – – ⏑ ⏑ ⏑ ⏑ ⏑ ⏑ – ⏑ ⏑ [।] गोपाल ⏑ ⏑ भद्रस्त्वं शूद्र-कप्रतिमो भुवि ॥२१॥ यथा नन्दी महेशस्य

१२ विष्णोश्च गरुडो यथा । तथा गोपाल वाराहदे [वीपुत्रो] न संशयः [॥२२॥] ⏑ ⏑

---

1. यह श्लोक क्रमांक १३ होना चाहिये । उसी प्रकार आगे भी एक एक अधिक होना चाहिये ।

⌣⌣⌣ – – ⌣ [संस्कृते] प्राकृते चैव न गोपालसमः परः ॥२३॥ या सिद्धिः सर्व्वकार्येषु या विद्या

१३ कथ्यते बुधैः । तस्या प्रभावा [द् गोपालो] ⌣⌣⌣⌣ – ⌣⌣ [॥२४॥]
⌣⌣⌣⌣ – – ⌣⌣⌣⌣⌣ – ⌣⌣ [।] ⌣⌣⌣⌣ – –
⌣⌣⌣⌣ सदाभवत् ॥२५॥ चरणांगुष्ठपातेन निहितं महि—

१४ षासुरं । दृष्ट्वा गोपालवीरेण [स्तुता तेनांबिका भवत्] ॥ २६ ॥ ⌣⌣⌣⌣
– – ⌣ ⌣ ⌣ ⌣ ⌣ – ⌣ ⌣ [।] ⌣ ⌣ ⌣ ⌣ ⌣ – – ⌣
⌣⌣⌣⌣ – ⌣⌣ ॥२७॥ रक्तबीजो यथाघाति सर्व्वदेवापराजि—

१५ तः । तां स्तुत्वा सर्व्वसंप [त्ति] र्गोपालस्य [गृहं स्थिता ॥२८॥] ⌣⌣⌣⌣ –
– ⌣⌣⌣⌣⌣ – ⌣⌣ [।] ⌣⌣⌣⌣ – – ⌣⌣⌣⌣
तथाभवत् ॥२९॥ [नि] शुंभशुंभमथनी महावीर्यपराक्रमा । चं-

१६ डिका चण्डविक्रान्ता गोपालेन [पुनः स्तुता] ॥३०॥ धाम ⌣⌣⌣ – – ⌣⌣⌣
⌣⌣⌣ – ⌣⌣ [।] ⌣⌣⌣⌣ – – ⌣⌣ [गोपालेन पूजिता]॥३१॥
कंसदैत्यवधार्थाय विष्णुना या स्तुता स्वयं

१७ तां समाराध्य गोपालो वर्ण्णनीयः सतामभूत् ॥३२॥ पुत्रं प्रति ममत्वं हि ⌣⌣⌣
⌣⌣ – ⌣⌣ [।] ⌣⌣⌣⌣ – – ⌣⌣⌣⌣ – ⌣⌣ ॥ ३३ ॥
कोटिमन्त्रप्रभावेन पुनर्द्देवी वरं द—

१८ दौ । अतुलं तव गोपाल बलं वीर्यं पराक्रमः ॥ ३४ ॥ ⌣⌣⌣⌣ – – ⌣⌣
⌣⌣⌣ – ⌣⌣ । ⌣⌣⌣⌣ – – ⌣⌣ कोटिलक्षसहस्रशः ॥३५॥
गृध्रगोमायुसंकीर्ण्णा रौद्रा रक्तनदीं तथा ।

१९ नाभिमात्रान्तरन्ति स्म राक्षस्यो रक्तमोहिताः ॥३६॥ – – – ⌣⌣ – ⌣ – ⌣
⌣⌣ – – – ⌣ – – ⌣ –, – – – रविसारिसम्परिपतद्बाणान्धकारे रणे ।
श्रीगोपालसमोपरः क्षिति—

२० ले यद्यद्भू तैर्व्विकर्मैरासीद [स्ति भविष्यति] ⌣⌣⌣ दाधारस्तदा कथ्यताम्॥३७॥
श्रीकेदारे प्रयागे च पुष्करे पुरुषोत्तमे । भीमेश्वरे नर्म्मदायां श्रीगोपालपुरे तथा॥३८॥
वाराणस्यां

२१ प्रभासे च गंगासागरसंगमे । वरलौसी [ध] त [स्था] ने श्रीवैरागमठ [ठे] तथा॥३९॥
चम्पद्वारे शौरिपुरे पेडरागाम एव च । कीर्त्तिर्गोपालवीरस्य शरच्चंद्रसमा भुवि॥४०॥

२२ कंदर्प्प इव रूपेण गोपालः शौर्यशूद्रकः । स्थाने स्थाने ह्याकल्पो रेवन्त इव दृश्यते॥४१॥
यो मम कुल परवन्से (वंशे) सुमतिः संभवति मण्डले लोकः । पालयतु कीर्त्तिमेतां

२३ शरणगतो वदतिगोपाल : ॥४२॥ श्रीवत्सश्चरणाब्जपूजनरतिर्न्नारायणः सत्कविः श्रीरामाभ्युदयाभिधं रसमयं काव्यं स भव्यो व्यधात् । स्मृत्वास्त्वयदीयवाक्यरचना प्रादुर्भव—

२४ न्निर्भरप्रेमोल्लासितचित्तवृत्तिरभवद्वाग्देवता वल्लकी ॥ ४३ ॥ ❀ ॥ व (ग) च्छाधिम [। ❀] यच्चंद्रिकायां [। ❀] गोपालेन नमस्कृता ॥ [ठ] ॥ अगस्त्यश्च पुलस्त्यश्च जैमिनिर्लोमशादयः । मार्कंडेयोप दुर्व्वासा व्यासः का—

२५ लवशा (शा) यतः ॥४४॥ अन्ये दैववशाः सर्व्वे काले क्षयविनाशि (शि) नि । इति दृष्ट्वा जना नित्यं परमा [यें] ममोस्तु (मनोस्तु) वः ॥४५॥ पंडितदेद्दूलिखिता धनपतिन (नो) त्कीर्ण्णा ॥

अनुवाद

ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर.........वह वाराही.........स्वयं । २ । गोपाल ने शंख और चक्र धारण करनेवाली (और) गरुड़ पर बैठी वैष्णवी देवी की पूजा बड़ी भक्ति से पुष्प और धूप से की । ३ । बड़े बैल पर बैठी (और) सांपों के कंकड़ पहनने वाली देवी.........। ४ । यह वह त्रयी नामक देवी है जिसका प्रभाव युद्ध के मैदान में (देखा जाता) है; हे गम्भीरचित्त वाले गोपाल, यह वही है जिसे तू प्रणाम करता है । ५ । यह श्लोक और दूसरा श्लोक आदि अन्त दीपक है । छह मुख वाली (और) हाथ में शक्ति धारण करने वाली, सभी पापों का नाश करने वाली............(देवी की) स्तुति गोपाल नित्य करता है । ६ । घोर स्वर वाली (उस) वाराही की स्तुति गोपालवीर सदा भक्ति भाव से करता है जिसने अपनी दाढ़ से पृथ्वी को उठा लिया था । ७ । अपनी श्रयालों से पृथ्वी पर नक्षत्र फैलाने वाली अत्यन्त बलवती नारसिंही.........गोपाल ने.........। ८ । गोपाल ने (उस) ऐंद्री देवी की पूजा की (जो) हजार आंखों वाली है, ऐरावत हाथी पर बैठी है, महान बलवाली है (और) जिसके हाथ में वज्र है । ९ । नीलकमल के समान श्याम (वर्णवाली) चामुण्डा प्रेत पर बैठकर युद्ध में शत्रुओं को भयकारी है; गोपाल ने......। १० । गोपाल ने त्वरिता (नामक देवी) की अभिवन्दना की जो विद्युत् के समान उज्ज्वल तथा इन्द्रगोप और सिन्दूर जैसे रंग वाली है । ११ । त्रिपुरा नामक देवी तीनों कलाओं को जानती है, त्रिकोणमण्डल में पहले (उसकी पूजा करने से) गोपाल के हृदय में नित्य स्थापित है । १२ । मारीची नाम की तीन मुखवाली भयंकर देवी गोपाल के हृदय में स्थित है (वह) शत्रुओं की सेना का नाश करने वाली (और) सफेद वर्ण है (उसका नाम) समया है । १२ ।[1] शत्रुओं का नाश करने वाली जया और जय बढ़ाने वाली विजया, (दोनों) देवियां मार्ग में कल्याण करने वाली हैं, गोपाल सदा (उनकी) पूजा करता है । १३ । भयंकर समुद्र में बैठने वाली वह तारा गोपाल पर प्रसन्न हो.........

---

१ यह क्रमांक १३ होना चाहिये । इसी प्रकार आगे भी एक एक क्रमांक अधिक होना चाहिये ।

। १४ । पर्वत पर रहने वाली विन्ध्यवासिनी, महाकाली और महामाया (इनकी) पूजा गोपाल ने की । १५ । विप्रों के दोषाचरण करने पर जो तोतला कहलाती है, रण में तीन लोक को जीतती हैं, प्राणियों के दोषाचरण करने पर चर्चिका कहलाती है, वह (देवी) गोपाल ने देखी है । १६ । कामाक्षी, महालक्ष्मी, क्षमा, दया, ये देवियां गोपालवीर के भक्तिभाव से प्रसन्न हुईं । १७ । गोपाल ने प्रतिदिन बड़ी भक्ति के साथ सिद्धि, सरस्वती, गौरी, कीर्ति (और) अपराजिता की आराधना की । १८ । .... गोपालवीर से प्रसन्न होकर उसने वर दिया । १९ । (गोपाल के मन्त्रों के) प्रत्येक अक्षर से परम प्रसन्न होकर देवी बोली, हे गोपाल महावीर, तू सत्पुत्र है इसमें (कोई) संशय नहीं । २० ।...............गोपालभद्र, तू पृथ्वी पर शूद्रक के समान है । २१ । जैसे महेश का नन्दी और विष्णु का गरुड़, उसी प्रकार वाराही देवी का पुत्र गोपाल है, इसमें संशय नहीं । २२ ।...........संस्कृत और प्राकृत में गोपाल के समान (कोई) दूसरा नहीं है । २३ । जो सभी कार्यों में सिद्धि है (और) विद्वान लोग जिसे विद्या कहते हैं, उसके प्रभाव से गोपाल......... । २४ ।............सदा हुआ । २५ । यह देख कर कि पैर के अंगूठे से दबाकर महिषासुर को मार डाला, गोपालवीर ने अंबिका की स्तुति की । २६ । (श्लोक २७ नष्ट हो गया है) सभी देवों से अपराजित रक्तबीज (राक्षस) को जिसने मारा उसकी स्तुति करने से गोपाल के घर में सभी संपत्ति आ गई । २८ । (श्लोक २९ खंडित है) शुंभ और निशुंभ को मारने वाली चण्डिका की गोपाल ने फिर स्तुति की; वह महान शक्ति वाली है और उसका चरण प्रचण्ड है । ३० । (श्लोक ३१ खंडित है) कंस राक्षस को मारने के लिये स्वयं विष्णु ने जिसकी स्तुति की, उसकी भली भांति आराधना करके गोपाल सज्जन लोगों द्वारा वर्णन करने योग्य हो गया । ३२ । पुत्र के प्रति ममता...... । ३३ । करोड़ मन्त्रों के प्रभाव से देवी ने फिर वर दिया कि हे गोपाल, तेरा बल, वीर्य (और) पराक्रम अतुल हो । ३४ । करोड़, लाख, हजार...... । ३५ । रक्त से मोहित राक्षसी रक्त की भयावनी नदी को जो नाभि तक गहरी है तथा गिद्धों और सियारों से भरी है, तैरती थी । ३६ । बतलाइये कि पृथ्वी पर गोपाल के समान (और कौन) दूसरा हुआ था, है, या होगा, जिसने अपने अद्भुत विक्रम से (उस) रण में—जिसमें चारों ओर से छूटते बाणों से अंधकार छा गया है.........। ३७ ।

श्रीकेदार, प्रयाग, पुष्कर, पुरुषोत्तम, भीमेश्वर, नर्मदा तथा श्रीगोपालपुर । ३८ । वाराणसी, प्रभास, गंगासागर संगम, वरली और श्री वैराग्यमठ । ३९ । अष्टद्वार, शौरिपुर तथा पेढराग्राम (इन स्थानों में) पृथ्वी पर गोपालवीर की कीर्ति शरत्कालीन चन्द्रमा के समान (सुशोभित है) । ४० । गोपाल, रूप में कामदेव, शौर्य में शूद्रक और घोड़े पर बैठकर रेवन्त के समान जगह जगह देखा जाता है । ४१ । मेरे कुल में या अन्य वंश में जो माण्डलीक हों, वे इस कीर्ति की रक्षा करें, गोपाल ऐसी प्रार्थना करता है । ४२ ।

विष्णु के चरणकमलों की पूजन में जिसकी बुद्धि है उस नारायण कवि ने सुन्दर

(और) रसभरा श्रीरामाभ्युदय नामक काव्य रचा है। उस कवि की बाक्य रचना को स्मरण कर वाग्देवी का चित्त प्रेम से प्रसन्न हो गया (और वह) वीणा बन गई (प्रशस्ति रची)। ४३। गरुडाधिप जिनको गोपाल ने चंद्रिका में नमस्कार किया।

अगस्त्य, पुलस्त्य, जैमिनि, लोमश इत्यादि और मार्कण्डेय, दुर्वासा, व्यास सभी काल के वश हुये। ४४। और जो दूसरे हैं वे भी इस काल में भाग्य के वश हैं जो क्षण में नष्ट हो जाता है; ऐसा देखकर, भाइयो आप का मन नित्य परमार्थ में लगा रहे। ४५।

पंडित देदू ने लिखी। धनपति ने उत्कीर्ण की।

२१. द्वितीय पृथ्वीदेव का रत्नपुर में प्राप्त शिलालेख: (विक्रम) संवत् १२०७

(चित्रफलक उन्तालीस)

काले पत्थर पर उत्कीर्ण यह लेख मेजर जनरल कनिंघम के सहायक बेग्लर को रत्नपुर के किले में प्राप्त हुआ था। उन्होंने आर्कलाजिकल सर्वे रिपोर्टस, जिल्द सात (पृष्ठ-२१५) पर इसका वर्णन किया है। उनके अलावा राजेन्द्रलाल मित्र ने जनरल आफ एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल, जिल्द बत्तीस (पृष्ठ २७७-७८) में, डाक्टर किलहार्न ने एपिग्राफिग्रा इण्डिका, जिल्द एक (पृष्ठ ४५ इत्यादि) में और महामहोपाध्याय मिराशी ने कार्पस इंस्क्रिप्शनं इंडिकेरं, जिल्द चार (पृष्ठ ४८३-९०) में इसे प्रकाशित किया है।

लेख दायें और बायें ओर किञ्चित खण्डित है। इसमें चौबीस पंक्तियां नागरी लिपि में संस्कृत छन्दों में लिखी हुई हैं।

शिव को नमस्कार करते के साथ प्रशस्ति प्रारम्भ होती है। प्रथम तीन श्लोकों में क्रमश: शिव, गणपति और चन्द्रमा की स्तुति है। फिर बताया गया है कि चन्द्रवंश में (प्रथम) जाजल्लदेव हुआ। उसका बेटा (द्वितीय रत्नदेव) चेदि देश के राजा की दुर्दम सेना रूपी समुद्र के लिये बडवाग्नि जैसा था। उसने (अनंतवर्मा) चोडगंग की सेना को नष्ट कर दिया था। इस (द्वितीय) रत्नदेव का बेटा (द्वितीय) पृथ्वीदेव हुआ। उसके राज्यकाल में (विक्रम) संवत् १२०७ तदनुसार ११४९-५० ईस्वी में यह लेख लिखा गया था।

इस प्रकार १५ श्लोकों में कलचुरि वंश के राजाओं का वर्णन है। तत्पश्चात् देवगण की प्रशंसा की गई है जिसने सांबा नामक ग्राम में बिल्वपाणि शंकर का मन्दिर बनवाया था। देवगण ने वास्तव्य वंश में जन्म लिया था। उसका प्रपितामह गोविंद चेदिदेश से तुम्माण आया था। गोविंद के बेटे थे मामे और राघव। मामे की पत्नी रम्भा थी, उसका बेटा रत्नसिंह था और इस रत्नसिंह से देवगण हुआ। प्रशस्ति से आगे विदित होता है कि देवगण की दो पत्नियां थीं, प्रभा और जाम्हो; उसके जगतसिंह और रायरसिंह नामक दो बेटे और भोपा नामक बेटी थी। पश्चात् बाल्हू और देवदास का नाम मिलता है किन्तु देवगण से उनका क्या रिश्ता था यह विदित नहीं होता।

प्रशस्ति की रचना स्वयं देवगण ने की थी. इसे अवनिपाल के बेटे कुमारपाल ने शिला पर लिखा और सांपुल ने उत्कीर्ण किया ।

मूलपाठ

पंक्ति

१ (सिद्धिः) ओं नमः शिवाय ॥ भोगीन्द्रो नयनश्रु [ति :] कथमसौ द्रष्टुं क्षमो नौ भवे-देषा चन्द्रकला [पि शैशववशामातात्र नो] – ⏑⏑ । ....

२ त्वं शैलसुता प्रबोधनपरो रुद्रो रते पातु वः ॥१॥ सत्सिन्दूरविशालपांशुपटलाभ्यक्तंक-कुम्भस्थलः सु (शु) म्भत्ताण्डवमण्डिताखिलनभोदिङ्मण्डपा [डम्बर :] ....

३ शोत्तुङ्गव्यूहोन्मूलनकेलिरस्तु भवतां भूत्ये गणग्रामणीः ॥२॥ देवः पीयूषधाराद्रवकरनि-कराकान्तदिक्चक्रवालस्त्रैलोक्याकान्तिनिर्यन्मदनन्नृपचमूवर्ण्यणाभोगल[क्ष्मी :]......

४ मति सुरवधूरत्नकर्णावतंसः शुभ्रांशुः प्रौढरामाहृदयगिरिगुहामानसत्वंकचश्रीः ॥३॥ तद्वंशे भुजदण्डमण्डलमदाकान्तत्रिलोकीतलो बिभ्राणः सुरसार्थनाथपदवीमुद्दा......

५ निधिमेखलावलयितक्षोणीवधूवल्लभो भूपालो भुवनैकभूषणमणिर्ज्जाजल्लदेवोऽभवत् ॥ ४ ॥ तस्माच्चेदिनरेन्द्रदुर्द्दमचमूचक्रकवारांनिधेस्तीव्रौर्व्वज्वलनोऽजनिष्ट तनय...

६ र्व्वासर्व्वितचोडगङ्गसुभटस्फारेन्दुबिम्बग्रहग्रासे राहुरनन्तसौ (शौ) र्य्यमहिमाश्चर्यो महीमण्डले ॥ ५ ॥ सप्पत्पूर्ण्णशशाङ्कधामधवलस्फारद्यशोजन्मभूरद्यलीव्रतरप्रताप-तरणिः सत्क्षा [त्र] ....

७ पार्तविगलद्वन्दिनिवहाभीष्टार्थचिन्तामणिः पृथ्वीदेवनरेश्वरोस्य तनयः श्रीमानभूद्-भूतले ॥ ६ ॥ राज्ये भूमिभुजोऽस्यैव नयमार्ग्गानुसारिणि । क्षीणोपसर्गसंसर्ग्गप्रजा-नन्दविधायिनि ॥ ७ ॥ वा................

८ ग्गोविन्दश्चेदिमण्डलात् । कृती कालक्रमेणासौ देशान्तुम्माणमागतः ॥ ८ ॥ पुत्रस्तस्य जनानुरागजलधिर्भूत्सभाभूषणो ज्यायान्पण्डितपुण्डरीकतरणिर्म्मनिरभिधानोऽभवत् । यो धात्रीतिलको [नि]............

९ तालङ्कारहारोपमो विख्यातस्त्रिपुरान्तकैकचरणाम्भोजैकभृङ्गो भुवि ॥ ९ ॥ भ्राता श्रीराघवोऽमुष्य कनीयान्गुणसागरः । नागरो भुवनाभोगभूषा पृथ्वीपमो बभौ ॥ १० ॥ श्रीमामेतनयः समस्त जग [ती]—

१० न्मंकीर्ण्णसंस्फुरत्कुन्देन्दुद्युतिकीर्तिसंसन्ततिलताभ्यासक्तविङ्मण्डपः । राजत्पुम्मदवादि –

बुन्ददलनो लीलाविहारः श्रियः शीलाचारविवेकपुण्यनिलयः श्रीरत्नसिंहः कविः ॥ ११ ॥ स (श) चीव जिष्णोर्गिरिजे —

११ म्भोर्दुग्धाब्धिपुत्रीव च चक्रपाणेः। साध्वी सदा बंधुजनाभिपूज्या रम्भेतिनामाऽभवदस्य पत्नी ॥ १२ ॥ ताभ्यामजायत जगत्त्र [य] घुष्टकीर्त्तिराखण्डितारिबुधमण्डलचण्डदर्पः। चण्डीशचारुचरणाम्बुजचञ्च (ञ्च) रीकः प्रताप [सो]—

१२ सिंह देवगणस्तनूजः ॥ १३ ॥ एतद्यस्य जगद्यशोभिरभितो डिण्डीरपिण्डप्रभैराक्रान्तन्त्ववलम्बिलोक्य निखिलं गोपाङ्गनावीक्षितः। कालिन्दीहृदकालनेमिदलनप्रारम्भ – क्रीतावरस्तीरे ताम्यति वारिराशितनया—

१३ स्तोपि जातभ्रमः ॥ १४ ॥ पीयूषद्रवसान्द्रबिन्दुवसतिर्यस्यास्य वाक्च न्द्रिका विद्वच्चकचकोरचञ्चुपुटकैरापीयमानानिशम् । किञ्चा (ञ्चा) यं करपञ्जरोऽखिलमिलन्नानाविगन्तार्थितां भूयोऽभीष्टफलप्रदानचतुरस्त्यागी [न] [क]

१४ ल्पद्रुमः ॥ १५ ॥ चन्द्रिकेव शिशिरांशुमालिनो मञ्जरीव सुरमेदिनीरुहः। कान्तिनिर्जितसुराङ्गनागणा तस्य साधुचरिता वधूः प्रभा ॥ १६ ॥ जा [ल्हो] नाम्नी द्वितीयास्य विलासवसतिः प्रिया। प्रमितप्रेमबाहुल्या — —

१५ यं प्राणमन्दिरम् ॥ १७ ॥ लावण्यप्रतिमल्लतामदभरा मौलीन्दुना क्रोधतो दग्धस्यापि मनोभवस्य भुवने विद्येव सञ्जीवनी। सत्सौभाग्यगुणैकगर्व्ववसतिः प्राणाधिका प्रेयसी यां निर्म्माय सरोजभूः प्रमुदि [त:]

१६ प्राप्तः परां निर्वृतिम् ॥ १८ ॥ प्रबोधध्वान्तसन्तानकवि (रि) कुम्भविदारणः। जगत्सिंहोऽस्य तनयः सिंहवद्भुवि राजते ॥ १९ ॥ तारकारिरसौ शैलसुतासूनुरयं पुनः। सुतो रायरसिंहोऽस्य बन्धुवर्गस्य तारकः ॥ २० ॥

१७ भोपास्य दुहिता साध्वी कलिकालविचेष्टितैः अस्पृष्टा स्वर्द्धुनीवेयं भुवनत्रयपावनी ॥ २१ ॥ बाल्हूश्रीदेवदासाख्यौ बद्धसख्यौ परस्परम् जगदुद्यो (द्द्यो) तको भातः पु प (पुष्प) वन्ताविवाम्बरे ॥ २२ ॥ वातोद्धूति [वि]

१८ लोलतूलतरलं नृणामिव जीवितं लक्ष्मीं घोरघनान्तरालविलसद्विद्युद्विलासोपमाम् मत्त्वैतद्वपुरितीयवारवहनप्रोद्दामदावानले श्रद्धामुद्धतधर्म्मबुद्धिरकरोच्छ्रेयः पथे सा (शा) श्वते ॥ २३ ॥ चक्रे देव [ग]—

१९ णो धाम बिल्वपाणिपिनाकिनः। सांबाग्रामे तुषाराद्रिसि (शि) खिराभोगभासुरम् ॥ २४ ॥ नानाभूपालभुक्तक्षितिजघनघनाऽश्लेषतोषादिवाढो बिम्बामाकामपीडातरलतनुगुरुश्लेषलिप्सं सम [न्ता] [त्]

२० कामीवेदम्बिदग्धो विरचितपरमप्रेमहासं त्वरावत्स्वर्व्वामाणां समक्षं गगनपरिसर–

श्रीमुखं चुम्बतीव ॥ २५ ॥ निःशेषागमशुद्धबोधविभवः काव्येषु यो भ [व्य] श्रीः सत्तर्क्काम्बुधिपारगो भुगु [सु] [तो]

२१ [यो] दण्डनीतौ मतः । च्छन्दोऽलङ्कृतिशब्दमन्मथकलाशास्त्राब्जषण्डद्युतिर्वत्के देवगणः प्रशस्तिममलां श्रीरत्नसिंहात्मजः ॥ २६ ॥ यः काव्यकैरवविकासनशीतर- [श्मि] र्वहामबुद्धिनिलयो ऽ [व]—

२२ [नि] पालसूनुः । विद्याविलासवसतिर्व्विमलां प्रशस्तिं श्रीमानिमां कुमरपाल बुधो लिलेख ॥ २७ ॥ प्रशस्तिरियमुत्कीर्ण्णा रुचिराक्षरपंक्तिभिः धीमता सूत्रधारेण सांपुलेन मनोरमा ॥ [२८ ॥]

२३ ⏑⏑ [देव] गणावेतौ रूपकारशिरोमणी वक्तुघंटनान्धाम्नो बिल्वपाणिपिनाकिनः ॥ २९ ॥ चन्द्रार्क्कौ किरणावलीवलयितं यावद्विपक्षाज्जगद्दिङ्मातङ्गघटोप- बृंहितधराचक्रञ्च (स्त्र) कू—

२४ – ⏑⏑ । नक्षत्रप्रकरोरुहारलतिकाऽलङ्कारसारं नभस्त्वत्कीर्त्तिम्मंदनारिमन्दिर- मियात्तावच्चिरं नन्दतु ॥ ३० ॥ संवत् [१२०७]

अनुवाद

सिद्धि । ओम् शिव को नमस्कार । (वे) रुद्र आपकी रक्षा करें जो रति समय पार्वती को (इस प्रकार) फुसलाने में तत्पर हैं 'नागराज जो आंखों से कान का काम लेते हैं, वे भला हम दोनों को कैसे देख सकते हैं और यह चन्द्रकला भी अभी बच्ची है (कैसे समझ सकती है ?) ……………' ।१। गणसमूह में श्रेष्ठ गणपति आप की विभूति के लिये हों (वे गणपति) जिनके अद्वितीय कुंभस्थल पर सिंदूर के सुन्दर चूर्ण की मोटी परत है जो अपनी सूंड के ताण्डव से सभी दिशाओं और आकाश को मण्डित करते हैं (और) जो वृक्षों की पंक्ति को उखाड़ फेंकने के खेल में लगे हैं……………।२। वह स्वच्छ किरणों वाला देव (चन्द्रमा)…………जो अमृत की धारा को बहाने वाली किरणों के समूह से दिशाओं के चक्र को भर देता है, तीन लोक की विजय करने निकले राजा कामदेव की सेना के लिये बड़े दर्पण की सुन्दरता वाला है…… ………देवांगनाओं का रत्न से बना कर्णावतंस है (और) जिसकी शोभा प्रौढ़ा स्त्रियों के हृदय रूपी पर्वतगुफाओं के मान को बिलकुल तोड़ देती है।३। उस (चंद्रमा) के वंश में राजा (प्रथम) आजल्ल हुआ, वह संसार का एक ही भूषण था, उसने (अपने) बाहुओं के मद से त्रैलोक्य को आक्रान्त कर दिया था, देवताओं के नाथ की पदवी प्राप्त कर ली थी……………(सात) समुद्र रूपी मेखला पहने पृथ्वी रूपी वधू का वल्लभ…………।४। उससे (द्वितीय रत्नदेव) पुत्र हुआ जो चेदि नरेश की दुर्दम सेना समूह रूपी समुद्र के लिये तीव्र वडवाग्नि था; जिस प्रकार राहु चन्द्रमा के विशाल बिम्ब को पकड़ कर निगल जाता है वैसे ही उसने दर्प से भरे चोड़गंग के योद्धाओं को…………… अनन्त शौर्य और महिमा वाला (और) जिसके शौर्य की महिमा के आश्चर्य का पृथ्वीमण्डल पर अन्त नहीं था।५। पूर्ण शशांक की फैलती हुई आभा जैसा धवल

और बढ़ते हुये यश की जन्मभूमि (यह द्वितीय) पृथ्वीदेव पृथ्वी पर उस (द्वितीय रत्नदेव) से हुआ; (यह) तीव्रतर प्रताप का उगता हुआ सूर्य, सत्पात्र............ (विभिन्न) दिशाओं से आये वन्दिजनों को अभीष्ट वस्तु देने वाला चिन्तामणि................।६। नीति मार्ग का अनुसरण करने वाले और प्रजा के कष्टों को दूर कर आनंद देने वाले इसके राज्यकाल में...... ....।७। कालक्रम से.................. वह कृती गोविन्द चेदि देश से तुम्माण देश आया।८। उसका मामे नामक जेठा बेटा लोगों के प्रेम का समुद्र, राजाओं की सभा का भूषण और पण्डितों रूपी कमलों के लिये सूर्य था; वह पृथ्वी का तिलक था................. शिव के चरणकमलों का प्रसिद्ध भौंरा था।९। इस का छोटा भाई श्री राघव गुणों का समुद्र था; वह पृथ्वीमण्डल का आभूषण सूर्य के समान चमकता था।१०। श्री मामे का बेटा श्री रत्नसिंह कवि था (और) शील, आचार, विवेक (तथा) पुण्य का घर था; उसकी कीर्ति रूपी लता सभी दिशाओं में ऐसे व्याप्त थी जैसे कुन्द और इन्दु की द्युति सारी जगती पर फैली रहती है; उन्मत्त वादियों के मद को नष्ट करने वाला वह लक्ष्मी का क्रीडास्थल बना हुआ था।११। रम्भा नाम की उसकी साध्वी और बंधुजनों से सम्मानित पत्नी वैसी ही थी जैसे इन्द्र की शची, शंकर की पार्वती, (और) विष्णु की लक्ष्मी।१२। उन दोनों के देवगण पुत्र हुआ, वह विद्वत्ता का समुद्र और शिव के चरणकमलों का भौंरा था, उसने विपक्षी विद्वानों के प्रचण्ड घमण्ड को भलीभांति चूर कर अपनी कीर्ति तीनों लोकों में घोषित कर दी थी।१३। फेन के समान जिसका यश संसार में चारों ओर फैल गया है, उससे सारा जगत सफेद देखकर कृष्ण—जो यमुना के गहरे पानी में कालनेमि को दलने के लिये तैयार ही हुये थे, अब भ्रमवश अनुत्सुक होकर तीर पर ही (खड़े खड़े) दुखी हो रहे हैं और गोपांगनायें उन्हें देख रही हैं।१४। उस (देवगण) की वाणी को विद्वान् लोग उत्सुकता के साथ सुनते हैं क्योंकि वह अमृत रस की बूंदों से भरी चन्द्रिका जैसी है जिसे चकोर पक्षी की गोल चोंचें पिया करती हैं। और विभिन्न दिशाओं से आने वाले याचकों को अभीष्ट वस्तु देने में चतुर उसका हाथ स्वाधीन कल्पवृक्ष है।१५। जैसे चांद में चांदनी (और) कल्पवृक्ष में मंजरी होती है (वैसी) इसकी पत्नी प्रभा है; उसका चरित्र अच्छा है (और) उसने अपनी कांति से सुरांगनाओं को जीत लिया है।१६। जाम्हो नाम की इस की दूसरी पत्नी विलास का घर है, अमित प्रेम की अधिकता से वह (उसके) प्राणों का मंदिर है।१७। अद्वितीय लावण्य के मद से भरी होने के कारण वह उस कामदेव को पृथ्वी पर पुनर्जीवित कर देने वाली विद्या के समान थी जिसे शंकर के क्रोध ने जला दिया था। निष्कलंक सौभाग्य गुणों के गर्व का एकमात्र स्थान होने से वह (पतिको) प्राण से भी अधिक प्यारी थी — उसका निर्माण करके ब्रह्मा आनंदित और परमसुखी हो गये थे।१८।

अज्ञानांधकार के समूह रूपी हाथियों के कुम्भ को फोड़ने वाला सिंह जैसा इसका बेटा जगत्सिंह पृथ्वी पर सुशोभित है।१९। पार्वती का बेटा तो तारकारि है किन्तु उसका बेटा रायरसिंह बंधुवर्ग का तारक है।२०। इस (देवगण) की साध्वी बेटी भोपा है; वह कलिकाल के छलछंदों से अछूती गंगा के समान तीनों लोकों को पवित्र करने वाली है।२१। वाल्ह और देवदास

परस्पर बड़े मित्र हैं; वे चन्द्र और सूर्य के समान संसार को प्रकाशित करते हुये सुशोभित हैं ।२२।

यह समझकर कि 'मनुष्यों का जीवन वायु के झकोरों से उड़ जाने वाली कपास की नाव जैसा है और लक्ष्मी घोर बादलों के बीच चमकती बिजली के विलास सी है' उस अत्यन्त धर्म बुद्धि वाले (देवगण) ने अपनी श्रद्धा श्रेय के शाश्वत मार्ग में लगाई जो कि पाप के समूह को वैसे ही नष्ट करता है जैसे प्रचण्ड दावानल काष्ठ को जलाता है ।२३। देवगण ने सांबा ग्राम में हिमालय के ऊंचे शिखर के समान शोभावाला बिल्वपाणि पिनाकी का मंदिर बनवाया ।२४। पहले तो अनेक राजाओं द्वारा भोगी गई पृथ्वी की मोटी जंघाओं के आलिंगन से तुष्ट के समान (फिर) दिशा रूपी स्त्रियों के काम की पीड़ा से तरल शरीर से खूब लिपटने की लिप्सा से, यह कामी के समान चतुर (मंदिर) अत्यन्त प्रेम की हंसी हंसता है (और) शीघ्रता से देवांगनाओं के समक्ष ही आकाश की शोभा के मुख को चूम लेता है (ऐसा जान पड़ता है) ।२५।

समस्त आगमों के (अध्ययन से) शुद्ध ज्ञान संपत्ति वाले, काव्यों में भव्य बुद्धि वाले निष्कलंक तर्क रूपी समुद्र को पार करने वाले, दण्डनीति में शुक्र के समान माने जाने वाले, छन्द, अलंकार, शब्दशास्त्र और कामशास्त्र रूपी कमलों के लिये सूर्य के समान (और) श्री रत्नसिंह के बेटे देवगण ने यह निष्कलंक प्रशस्ति रची ।२६। जो काव्य रूपी कुमुदों का विकास करने के लिये चन्द्रमा के समान है, प्रखर बुद्धि का घर है, विद्या के विलास का स्थान है, अवनिपाल का बेटा है, उस श्रीमान् कुमारपाल (नामक) विद्वान् ने इस विमल प्रशस्ति को लिखा ।२७। यह मनोरम प्रशस्ति अच्छे अक्षरों की पंक्ति में बुद्धिमान् सापुल (नामक) सूत्रधार ने उत्कीर्ण की ।२८।..................(और) देवगण, शिल्पियों के शिरोमणि इन दोनों ने बिल्वपाणि पिनाकी के धाम का निर्माण किया ।२९। जब तक चन्द (और) सूर्य अपनी किरणों को जगत में फैलाये हुये हैं, (कछुये की पीठ पर) दिग्गज पृथ्वीमण्डल को सम्हाले हुये हैं; आकाश में नक्षत्र समूह के लम्बे हार रूपी लता का सुन्दर अलंकार है; तब तक तुम्हारी कीर्ति (इस) शिवमंदिर के बहाने चिर काल तक बढ़ती रहे। संवत् १२०७

२२. द्वितीय पृथ्वीदेव का अमोदा में प्राप्त ताम्रपत्रलेख : (कलचुरि) संवत् ६०५

(चित्रफलक सैंतीस (ख) और चालीस)

राजमुद्रा समेत ये दोनों ताम्रपत्र बिलासपुर जिले की जांजगीर तहसील के अमोदा गांव में प्राप्त हुये थे। इस लेख को रायबहादुर डाक्टर हीरालाल ने इंडियन हिस्टारिकल क्वारटरली, जिल्द एक (पृष्ठ ४०५ इत्यादि) में और महामहोपाध्याय वासुदेव विष्णु मिराशी ने कार्पस इंस्क्रिप्शनं इंडिकेरं, जिल्द चार (पृष्ठ ४६१-६५) में प्रकाशित किया है।

दोनों पत्रों में से प्रत्येक की चौड़ाई ३६ से० मी० और ऊंचाई २२·५ से० मी० है। दोनों में बने छेदों में छल्ला पड़ा हुआ है और वह राजमुद्रा से जुड़ता है। राजमुद्रा के ऊपरी

भाग में गजलक्ष्मी की प्रतिमा है और नीचे राजा का नाम लिखा है। लेख नागरी लिपि में संस्कृत श्लोकों में है किन्तु प्रारंभ में और अन्त में कुछ वाक्यांश गद्य में हैं।

लेख से विदित होता है कि राजा (द्वितीय) पृथ्वीदेव ने चन्द्रात्रेय गोत्रीय और चन्द्र, अत्रि तथा श्यावन, इन तीन प्रवर युक्त सीलण, पीथन और लक्ष्मण, इन तीन भाइयों को जो ब्राह्मण मिहिरस्वामी के नाती और देवशर्मा के बेटे थे, अक्षय तृतीया के दिन मध्यमंडल में स्थित वुड्वुड् नामक ग्राम दान में दिया था। लेख (कलचुरि) संवत् ९०५ की आश्विन सुदि ६, मंगलवार को लिखा गया था। तदनुसार महामहोपाध्याय मिराशी ने इसे १४ सितम्बर ११५४ ईस्वी का माना है किन्तु उस वर्ष अक्षय तृतीया १७ अप्रेल को पड़ी थी। इस प्रकार ये दानपत्र दान देने के लगभग पांच महीने बाद दिये गये थे।

लेख को जड़ेर गांव के कीतिधर के बेटे वल्लभराज ने लिखा और चान्द्राक ने उत्कीर्ण किया था। इसमें जिन स्थानों का उल्लेख आया है उनमें से मध्यमंडल जांजगीर तहसील के चारों ओर का प्रदेश था, उसमें स्थित वुड्वुड् को वर्तमान बुरबुर माना गया है जो बिलासपुर जिले में ही पाली से ३ किलो दूर पर बसा है। जड़ेर, जांजगीर तहसील की सीमा से सात किलो दूर शिवनाथ नदी के तट पर बसा जोंडरा हो सकता है।

मूलपाठ

पंक्ति प्रथमपत्र

१ सिद्धिः ॐ नमो ब्रह्मणे ॥ निर्गुणं व्यापकं नित्यं शिवं परमकारणम् ॥ भावग्राह्यं परं ज्ये (ज्यो) तिस्त—

२ स्मै सद्ब्रह्मणे नमः ॥ १ ॥ यदेतत्प्रेसरमम्बरस्य ज्योतिः स पूषा (षा) पुरुषः पुराणः। अथास्य पुत्रो

३ मनुरादिराजस्तदन्वय (ये) ऽभद्भुवि कार्त्तवीय (र्यः) ॥ २ ॥ तद्वं शप्रभवा [न] रेन्द्रपतयः ख्याताः क्षितौ हैह—

४ या [स्ते] षा (षा) मन्वयभूषणं रिपुमनोविन्य [स्त] तापानलः। धर्म्मध्यानधना-नुसंचितयशाः सत्त्वसतां (शश्वत्सतां) सौख्य—

५ कृत्प्रेयान् सर्व्वगुणान्वितः समभवच्छ्रीमानसौ कोक्कलः ॥ ३ ॥ अष्टादशा (शा) रिकरिकुंभवि—

६ भंगसिंहाः पुत्रा बभूवुरतिशौ (शौ) र्यपराश्च तस्य। तत्राग्रजो नृपवरस्त्रि (स्त्रि) पुरीश आसीत्पा—

७ र्श्वे (श्वे) च मंडलपतीन् स चकार बंधून् ॥ ४ ॥ तेषा (षा) मनुजस्य कलिंगराजः प्व (प्र) तापवह्निक्षपितारि—

८ राजः । जातोऽन्वये द्विष्टरिपुप्रवीरप्रियाननांभोरुहपार्व्वणं (र्ण) दुः ॥ ५ ॥ तस्मा-
दपि प्रततनिर्म्मल—

९ कीर्त्तिकान्तो जातः सुतः कमलराज इति प्रसिद्धः । यस्य प्रतापतरणावुदिते रजन्यां
जातानि

१० पंकजवनानि विकासभांजि ॥ ६ ॥ तेनाथ चन्द्रवदनोऽजनि रत्नराजो विश्रो (श्वो)
पकारक—

११ रणा [र्जि] तपुण्यभारः । येन स्वबाहुयुगनिर्म्मितविक्रमेण नीतं यशसि (स्त्रि)
भुवने विनिहत्य स (श) [त्रू] न्

१२ ॥ ७ ॥ नोनल्लाख्या पि (प्रि) या तस्य शूरस्येव हि शूरता । तयोः सुतो नृपश्रेष
(ष्ठः) पृथ्वीदेवो बभूव ह ॥ ८ ॥

१३ पृथ्वीदेवसमुद्भवः समभवद्राजल्लदेवी सुतः शूरः सज्जनवां [छि] ताथ (र्थ) फलदः
कल्पदु (द्रु) मः श्री—

१४ फलः । सर्व्वेषामुचितोऽजने मु (सु) मनसां तीक्ष्णद्विषत्कंटकः यस्य (श्य) त्कान्त-
तरांगनांगमदनो जाजल्लदेवो नृ—

१५ पः ॥ ९ ॥ तस्यात्मजः सकलकोसलमंडनश्रीः श्रीमान्समाह (हू) तसम [स्त]
नराधिपश्रीः । सर्व्वक्षितीश्वर सि (शि) रोधि—

१६ ह्तिो (तो) हि (ह्रि) सि (से) वः सेवाल् (भू) तां निधिरसौ भुवि रत्नदेवः
॥ १० ॥ पृथ्वीदेवस्ततो जातः पोतः कंठीरवादिव । [सिं] ह—

१७ संहननो यो ऽरिकरिपू (यू) थमपोथयत् ॥ ११ ॥ चदात्रयस्य (चंद्रात्रेयस्य) गोते
(त्रे) भूच्चन्द्रात्रिस्यायनैस्त्रिभिः । प्रवरैः प्रव—

१८ रो विप्रो मिहिरस्वामिसज्जया (संज्ञया) ॥ १२ ॥ ब (त) स्या भू [द्दे] वप
(श) र्म्मेति तनयो नयवित (त्त) मः । पुत्रो तस्यापि वि [द्या]—

द्वितीय पत्र

१९ तावुभौ भी (सौ) लक्ष्मणोपि ॥ १३ ॥ तयीयाल्लकणो नाम यथा रामस्य लक्ष्मणः ।
धर्म्मात्माना (नो) म—

२० हात्मानः सर्व्वे देवद्विजपि (प्रि) याः ॥१४॥ तेभ्यो बुडुबुडु नाम ग्रामोयं मध्यमंडले ।
राजास्य—

२१ तृतीयायां ताम्रशासनसात्कृतः ॥ १५ ॥ संखे (शंखो) भद्रासनं च्छत्रं (छत्रं) गजा-
श्ववरवाहनम् । भूमि—

२२ दानस्य विह्वानि फलं स्वर्गः पुरन्दर ॥ १६ ॥ बहुभिर्व्वसुधा भुक्ता राजभिः सगरादिभिः यस्य

२३ यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा फलम् ॥ १७ ॥ भूमि यः प्रतिगृह्णा (ह्णा) ति य [स्तु] भूमि प्रयच्छति । उ [भौ]

२४ तौ पुण्यकर्म्माणौ नियतौ स्वर्गगामिनौ ॥ १८ ॥ पू [र्व्वं] दत्तां द्विजातिभ्यो यत्नाद्र (क्ष) त्र पुरंदर । महीं

२५ महीभृतां श्रेष्ठ दानाच्छ्रेयो हि पालनम् ॥ १९ ॥ स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेत वसुंधराम (म्) । स विष्ठा—

२६ यां कृमिर्भूत्वा पि [तृ] भिः सह मज्जति ॥ २० ॥ तडागानां सह [स्रे] ण वाजपेयसतेन (शतेन) च । गवां को—

२७ टिप्रदानेन भूमिहर्त्ता न [सु] (शु) ध्यति ॥ २१ ॥ ष [ष्टिं] र्व्वं (व) र्षसहस्राणि स्वर्ग्गे वसति भूमिदः । आच्छे—

२८ त्ता चानुमन्ता च तान्येव नरके वसेत् ॥ २२ ॥ इष्ठं (ष्टं) दत्तं हुतं चैव यत्किं- चिद्धर्म्मसंचितम (म्) । [अ] र्द्धां [र्द्धं]—

२९ गुलेन सीमाया हरणेन प्रणस्य (श्य) ति ॥ २३ ॥ यथाप्सु पतितं स (श) क्र तैलबिंदुर्विसर्पति । एवं

३० भूमिकृतं दानं सस्ये सस्ये [प्र] रोहति ॥ २४ ॥ हन्ति जातान् (न) जातांश्च भूम्यर्थे योऽनृतं वदेत् । स ब—

३१ द्धो वारुणैः पासं (शैं) ति (स्ति) र्य्यग्योन्यां तु जायते ॥ २५ ॥ द्विजाश्च नाव- मन्तव्यास्त्रे (स्त्रै) लोक्यमि (स्थि) तिहेतवः । देव-

३२ वत्पूजनीयाश्च दानमानार्च्चनादिभिः ॥ २६ ॥ सर्व्वेषा (षा) मेव दानानामेकजन्मा- नुकं (गं) फलम् । हाट—

३३ कक्षितिगौरीणां सप्तजन्मानुकं (गं) फलम् ॥ २७ ॥ वास्तव्यवंस (श) कुमुद- प्रविका [स] चंद्रः श्रीमानभू—

३४ विह [हि] कीर्तिधरो मनीषी । धामो जढेर इति यस्य सुतोऽस्य विद्वान् श्रीवत्सराज इ—

३५ ति तांम्र (ताम्र) मि [दं लि] लेख ॥ २८ ॥ चांदार्कनो (षो) त्कीर्ण्णमिद [म] म् ॥ मं (सं) वत (त्) ९०५ आ [श्वि] न सुदि ६ भौमे ॥

मुद्रा

१ राजश्रीमत्पृ

२ थ्वीदेवः

अनुवाद

सिद्धि। ओम् ब्रह्मा को नमस्कार। (श्लोक १-१० के अर्थ के लिये क्रमांक १७ देखिये) उसके बाद (द्वितीय) पृथ्वीदेव हुआ जैसे सिंह से पोत। सिंह के समान बलिष्ठ शरीर वाले उस (पृथ्वीदेव) ने शत्रुओं रूपी हाथियों के झुंड को नष्ट कर डाला।११।

चंद्रात्रेय गोत्र में, चन्द्र, अत्रि (और) श्यावन, इन तीन प्रवरों वाला मिहिरस्वामी नामक श्रेष्ठ ब्राह्मण हुआ।१२। उसके नीतिज्ञों में श्रेष्ठ देवशर्मा नामक बेटा हुआ। उसके भी दो बेटे सीतण (और) पीथन कहलाये।१३। छोटा बेटा सकण नामक था जैसे राम के लक्ष्मण। ये सभी धर्मात्मा थे, महात्मा थे और देवताओं तथा ब्राह्मणों को प्रिय थे।१४। राजा ने उनको मध्यमंडल में (स्थित) यह वुड्डुवुड्डु नामक ग्राम अक्षय तृतीया को ताम्रशासन से दिया।१५। (श्लोक १६-२७ शापाशीर्वादात्मक हैं)

वास्तव्य वंश रूपी कुमुद को विकसित करने के लिये चन्द्रमा रूपी श्रीमान् कीर्तिधर (नामक) विद्वान् यहां हुआ जिसका गांव जडेर है। इसका विद्वान् बटा श्री वत्सराज है, उसने इस ताम्र (पत्र) को लिखा।२८। चांद्रार्क ने यह उत्कीर्ण किया। संवत् ६०५ आश्विन सुदि ६ मंगलवार को।

मुद्रा

राजा श्रीमान् पृथ्वीदेव।

२३. द्वितीय पृथ्वीदेव के समय का रतनपुर में प्राप्त शिलालेख:(कलचुरि)संवत् ६१०

काले पत्थर का उत्कीर्ण यह शिलालेख रत्नपुर में प्राप्त हुआ था। मेजर जनरल कनिंघम ने इसका विवरण आर्कलाजिकल सर्वे रिपोर्टस्, जिल्द सत्रह (पृष्ठ ७८) में दिया था और बाद में महामहोपाध्याय वासुदेव विष्णु मिराशी ने कार्पस इंस्क्रिप्शनं इंडिकेरं, जिल्द चार (पृष्ठ ४९५-५०१) में इसे प्रकाशित किया।

प्रशस्ति में २८ पंक्तियां हैं किन्तु उनमें से अनेक खण्डित हैं। लिपि नागरी और भाषा संस्कृत है। इसमें द्वितीय पृथ्वीदेव के राज्यकाल (कलचुरि) संवत् ९१० तदनुसार ११५८-५९ ईस्वी का उल्लेख है। लेख का मुख्य उद्देश्य बल्लभराज नामक सामन्त द्वारा समय समय पर किये गये धर्म कार्यों का विवरण देना है।

प्रारंभिक श्लोकों में कलचुरि वंश के राजाओं का वर्णन है। तेरहवें श्लोक में बल्लभराज का गुणगान प्रारंभ होता है। आगे बताया गया है कि बल्लभराज ने रत्नपुर से पूर्व में खाड़ाग्राम के निकट पर्वत बांध कर सरोवर बनवाया था, उसी प्रकार सर्राविड गांव के पर्वत के

नीचे एक तालाब और तीन सौ ग्राम के पेड़ों का बगीचा और रत्नेश्वर नामक सरोवर बनवाया, विकर्णपुर के बाह्य भाग में देवकुल के मंडप समेत तालाब, अनेक अन्य मंदिर, मठ, उद्यान और रेवन्त का मंदिर बनवाया ; देव पर्वत के नीचे बावड़ी, राठेवैसमा गांव में तालाब, भौडापत्तन के पूर्व में हसिवध के रास्ते पर विज्जल पर्वत के नीचे तालाब आदि। अन्त में बताया गया है कि ये सब धर्मकार्य बल्लभराज की पत्नी श्वेतल्ला देवी की प्रेरणा से सम्पन्न हुये थे।

प्रशस्ति के रचयिता देवगण का नामोल्लेख तेईसवीं पंक्ति में है।

इस प्रशस्ति में आये भौगोलिक नामों में से खाड्ग्राम आधुनिक करी है जो रतनपुर से लगा हुआ है, विकर्णपुर अकलतरा के निकट स्थित कोटगढ़ है और हसिवध जांजगीर तहसील में आधुनिक हसोद गांव है।

मूलपाठ

पंक्ति

१ [तन्मध्ये ❀] गुण [भूषण :] कलचुरि [न्नो] मान्व [यो] भूतवान् । तत्रोद्दा-
मयशस्सुधाधवलितत्रंलो [क्य] देवालया जाता यत्र सहस्रनेत्रमहि ....

२ न्यानां सुचरितगृहं सत्यधर्म्मावतार :। जात : प्रात: स्मरणपदवी [राजमार्गो
मनीषी] मांधातेव प्रथितमहिमा [माननीयो नृपाणाम् ॥४॥] .... र:
ख्यातकीर्त्तिः सत्यत्यागप्र-

३ [थित ❀] महिमा नीतिमानर्क्कतेजा :। .... रिव जगन्मान ....
तारिमहावनश्री : । जाज –

४ ल्लदेवनृपतिः शरदि [न्दुकुन्दनीहारहार] .... स्मीवविह ....
[जातः] संगरश्री (सो) मसं –

५ वरवरिक्षोणीन्द्रवृन्दारक .... रत्नदेवस्तत :॥८॥

६ इदानीमस्यायं प्रथितप्र .... दयते ॥९॥ तस्य पू –

७ [र्वं] जराजानामभू .... [कर :। जा] नवया : सवनं मु –

८ दो मवहर : स्व स्वामिवि [द्वेषिणां ❀] .... नीराजहंसो ह –

९ रिगण इति नाम्ना तस्य .... भूव ॥१३॥ तस्या–

१० मरातिकुलकैरवका .... परिचये

११ चिकित्सायामुर्व्वीगुण .... रसश्रद्धालुरुर्व्वीत –

१२ ले निर्म्मातंमया .... [पृष्ठतोपि पुरत :]

१३ प्रत्यर्थिपृथ्वीपतौ स .... ख्यात : काव्यमुखे -

१४ न दुर्द्दमबलिध्वंसाय .... विक्रमपदं प्राप्येव दोर्व्विं -

१५ क्रम : ॥१८॥ स्नातेव क्षीरसिन्धौ .... [पुन :] प्रेक्षणीयेव स (श) रवत्स्वच्छन्दे -

१६ न भ्रमन्त्यां दिशि दिशि .... कल्पविटपोऽग -

१७ त्यस्मिन्यस्मिन्वितर .... जीर्ण्णशीर्ण्णमवगत्यं -

१८ कान्तवृध्या (दृष्ट्या) पुन : प्रा [यो] .... सा दिवि हट्टकेश्व -

१९ त्पुरो [ख्याता हि लोके] .... कृत्वा मा -

२० नससलिल [क्रीडा] मुत्थाय तीरविश्रान्त :। ऐरावत इव ❀] ....
.... मिव लोके वल्लभसाग -

२१ रसरो भाति ॥२५॥ .... रत्नश्रिय : शृंगारप्रियसप्त

२२ – ⏑ दयितनामा .... त्रैलोक्ये त्र्यम्बकस्य त्रिपुरजयय -

२३ शो गीयते मादवेव .... देवपाणिरमितामृतांबुधा -

२४ रासाराभिराम .... वल्लभराजेन सर्व्वधर्म्मविधिज्ञेन येषु स्थानेषु कीर्त्तिमानानि कृतानि [तान्यत्र] प्रका [श्यन्ते] यथा । रत्नपुरात्पूर्व्वं खाडाग्रामसमीपपर्व्वतं

२५ बंधयित्वा सरोवरं निर्म्मितं ....माम्रशतमा [रामो] द्यानं पूर्व्वो त्त [रं] सडविठग्रामपर्व्वततले .... सर्वजनमनोहराम्र (म्र) शतत्रयोपेता तडागिका कृता तथा रत्नेश्वरसाग -

२६ ... का देवकुलमंडपसमेतं विकर्ण्णपुरबाह्यालयां विपुलजलपूर्ण्णं श्र (स) रोवरं सप्राकारानेकप्रासादमठोपेतमाराम़ोद्यानं च तथा रेवन्तमूर्त्ति देवकुलं तथा देवपर्व्वततले सुगम्भीरा वापिका कारिता राठेर्वसमाग्रामे तडा -

२७ ...... तटे भौडापत्तनात्पूर्व्वे हस्तिवर्षमार्ग्गे विज्जलनामपर्व्वततटे [सर] सी वारिक्षेत्रच्छन्ना सर्व्वसत्वो (त्वो) पकारिका निर्मिता सर्व्वधर्म्माणां सर्व्वस्वमिव भूतले ॥ श्री वल्लभराजस्य पत्नी धर्मयुता सती ना -

२८ म्ना [श्वे] तल्लदेवीति क [र्ण्यासी] का (त्का) मलस्य वै ॥ ❀ ॥ कलचुरिसं वत्सरे ९१० राजश्रीमत्पृथ्वीदेवविजयराज्ये ॥ मङ्गलमस्तु जगत : ॥ ॥

अनुवाद

(१-२ श्लोक पूर्णरूप से नष्ट हो गये हैं) । उनमें कलचुरि नामक वंश हुआ जिसमें

इन्द्र जैसी महिमा वाले नृपति हुये। उनके फैलते यश की पुताई से तीनों लोकों के देवालय श्वेत हो गये। ....।३। सत्यधर्म का अवतार, अच्छे चरित्र का घर, मांधाता के समान प्रख्यात महिमावाला ....।४। (इसके बाद के श्लोक अत्यन्त खण्डित है जिस कारण अर्थ करना संभव नही है)।

पंक्ति २३ —— देवपाणि ने ....

पंक्ति २४ से —— सभी धर्मों की विधि जानने वाले बल्लभराज ने जिन जिन स्थानों में धर्म कार्य किये है वे यहां बताये जाते है। जैसे, रत्नपुर से पूर्व में खाडाग्राम के निकटवर्ती पर्वत को बांधकर सरोवर बनाया............सैकड़ों आम्र वृक्षों का बगीचा, उद्यान, पूर्वोत्तर में सडविड ग्राम के पर्वत के नीचे .... तीन सौ आम्रवृक्षों युक्त तालाब बनवाया तथा रत्नेश्वरसागर .... देवकुल के मंडम समेत, विकर्णपुर के बाह्य भाग में जल से भरा तालाब, प्राकार समेत अनेक प्रासाद, मठ सहित बाग-बगीचे और रेवन्त का मंदिर तथा देव पर्वत के नीचे गहरी बावडी बनवाई ; राठेंवसमा ग्राम में तालाब .... भौडापत्तन के पूर्व में हसिवब के मार्ग मे विज्जल नामक पर्वत के तट पर कमलों से भरा छोटा तालाब बनवाया जो सभी प्राणियों के लिये उपकारी है जैसे भूतल पर सभी धर्मों का सार हो।

श्री बल्लभराज की सती और धर्माचरण करने वाली पत्नी श्वेतल्लादेवी ने यह सब धर्म कार्य कराये।

कलचुरि संवत् ६१०, राजा श्रीमान् पृथ्वीदेव के विजयराज्य में। संसार को मंगल हो।

२४. द्वितीय पृथ्वीदेव के समय का रतनपुर में प्राप्त शिलालेख (कलचुरि) संवत् ९१५

यह शिलालेख रतनपुर के किले के बादलमहल में प्राप्त हुआ था। इसका विवरण एशियाटिक रिसर्चेज, जिल्द पन्द्रह (पृष्ठ ५०४–५) में सर रिचार्ड जेंकिन्स ने ईस्वी सन् १८२५ में प्रकाशित कराया था। तत्पश्चात् डाक्टर किलहार्न ने एपिग्राफिया इंडिका, जिल्द एक (पृष्ठ ३३) और जिल्द पांच (परिशिष्ट पृष्ठ ६०) में इसका लेख किया। शिलालेख को महामहोपाध्याय मिराशी ने एपिग्राफिआ इंडिका, जिल्द छब्बीस (पृष्ठ २२५ इत्यादि) और कार्पस इंस्क्रिप्शनं इंडिकेरं, जिल्द चार (पृष्ठ ५०१–११) में सम्पादित किया है।

लेख में २६ पंक्तियां तदनुसार नागरी लिपि में लिखे गये ४५ संस्कृत श्लोक हैं। इसमें ब्रह्मदेव के धर्मकार्यों का वर्णन है जो द्वितीय पृथ्वीदेव का सामन्त था। शिलालेख (कलचुरि) संवत् ९१५ तदनुसार ११६३–६४ ईस्वी में लिखा गया था।

शिव को नमस्कार करने के साथ प्रशस्ति प्रारम्भ होती है। प्रथम तीन श्लोकों में उनकी स्तुति है। चौथे श्लोक में शेषनाग का गुणगान है। पांचवें से लेकर आठवें श्लोक तक तलहारिमंडल का वर्णन है। तत्पश्चात् ब्रह्मदेव की वंशावली प्रारम्भ होती है। स्वयं ब्रह्मदेव के गुणों का वर्णन बारहवें से लेकर बीसवें श्लोक तक मिलता है जिसमें उसके द्वारा अनंतवर्म चोडगंग के बेटे जाटेश्वर पर विजय पाने का भी उल्लेख है। आगे बताया गया है कि राजा पृथ्वीदेव ने ब्रह्मदेव को तलहारिमंडल से बुलाकर अपने राज्य का शासन सौंप दिया था।

ब्रह्मदेव के अनेक धर्मकार्यों का इस प्रशस्ति में विवरण दिया गया है। उसने मल्लार में धूर्जटि महादेव का मन्दिर और सरोवर, एक अन्य स्थान पर त्र्यम्बक के दस मन्दिर, बरेलापुर में श्रीकण्ठ का उत्तुंग मन्दिर, रत्नपुर म पार्वती के नौ मन्दिर, रत्नपुर में ही बावड़ी और दो सरोवर- एक उत्तर में और दूसरा दक्षिण में-, बनवाये। इसके अलावा उसने और भी धर्मकार्य किये, जैसे गोठाली में सरोवर, नारायणपुर में धूर्जटि मन्दिर, बह्मनी, चरौय और तेजल्लपुर में सरोवर, कुमराकोट में शिव मन्दिर आदि का निर्माण कराया। उसने (संभवतः कुमराकोट के) सोमनाथ के मन्दिर को लोणकर नामक ग्राम भेंट किया था।

इस प्रशस्ति का कवि त्रिभुवनपाल गौड़वंशीय अनन्तपाल का बेटा था। कुमारपाल ने इसे लिखा तथा धनपति और ईश्वर नामक शिल्पकारों ने उत्कीर्ण किया था। इसमें जिन स्थानों का उल्लेख आता है उनमें से मल्लाल (वर्तमान मल्लार), बरेलापुर (वर्तमान बरेला) और बह्मनी (अकलतरा के पास) बिलासपुर जिले में स्थित हैं। नारायणपुर रायपुर जिले में है। कुमराकोट को रायबहादुर हीरालाल आधुनिक कोटगढ़ कहते थे किन्तु अन्य लेखों से विदित होता है कि आधुनिक कोटगढ़ का प्राचीन नाम विकर्णपुर था। अन्य स्थानों का पता नहीं चलता।

मूलपाठ

पंक्ति

१ [सिद्धिः] ओं नमः शिवाय ॥ यच्चामी [करकु ❀] म्भसन्निभकुचद्वंद्वस्य रत्युत्सवक्रीडालेहृति शैलराजदुहितुर्व्वक्त्रारविन्दस्य च। निः पर्य्यायदिदृक्षयेव भगवान्यत्ते स्म नेत्रत्रयं स श्रेयांसि समातनोतु भवतामर्द्धेदुचूडा—

२ [मणिः ❀] ॥ १ ॥ यत्कण्ठो भूति — — [ध] वलपरिसरः कज्जलेन्दीवराली भृङ्गश्रेणीन्द्रनीलोत्पलगवलतमःस्तोमलक्ष्मीविडम्बी (म्बो) भाति प्रालेयभूभृत्कटकतट इव श्यामलेनांबु (बु) भारैर्व्याप्तो धाराधरेण प्रभवतु

३ [भ] वतां स श्रिये नीलकण्ठः ॥ २ ॥ ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रचंद्रद्युमणिकुलगिरिस्मासमुद्राविर्व्वलोकं संक्रान्तवि (बि) म्बं (म्बं) नखमुकुरतले यत्पदाब्जं (ब्जां) गुलीनाम्।

दृष्ट्वा शैलेन्द्रपुत्री परिणयसमये विस्मयं प्राप लज्जानम्रीभूतान—

४ नेंदुः स हरतु दुरितं पार्व्वतीवल्लभो वः ॥ ३ ॥ यत्क्रोडे जठरैककोटरकुटीविश्रान्त-
विश्वस्थिरं लक्ष्मीपाणिसरोजलालितपदो निद्राति नारायणः । किञ्चानेकफणामणि
व्यतिकरं रत्नाकरत्वं दधायम्भो—

५ धिर्व्विदधातु शर्म्मं जगतां शेषः स भोगीश्वरः ॥ ४ ॥ उत्फुल्लांबुरुहैः सरोभिरभि-
तो गुञ्जद्विद्वरेफैर्वृतं — — — पवनोल्लसत्कवलिकारोचिष्णुभिर्भूषितम् । उद्यानैः
कलकण्ठकूजितभरव्याकृष्टपुण्यायुषैर—

६ स्ति श्रीतलहारिमण्डलमिदं विश्वम्भराभूषणम् ॥ ५ ॥ उन्मीलन्नवनी [लनीरज]
⌣ — — — ⌣ — — ⌣ — — — — ⌣⌣ — ⌣ — ⌣⌣⌣ — वाचालदिङ्-
मण्डले । सङ्गीतध्वनिपूर्ण्णक [र्ण] कुहरैरव्यापकैः कौतुकादन्तेवा—

७ सिगणस्य यत्र पठतो नावद्यमाकर्ण्यते ॥ ६ ॥ इह फणिपति — — — ⌣ — — ⌣
— — ⌣⌣⌣⌣⌣⌣ — — — ⌣ — — ⌣ — — । भ्रमति यशसि शुभ्रे यस्य
विष्वक्चकोराः शशधरकरबुद्ध्यापि याव—

८ न्ति सोत्काः ॥ ७ ॥ यद्वाटके झटिति धूमततिः स्पृशन्ती व्योमाङ्गणे ⌣⌣⌣ —
⌣⌣ — ⌣ — — । — — ⌣ — ⌣⌣⌣ — ⌣⌣ — ⌣ — — व्यालोकिता
जलदजालधिया ध्वनद्भिः ॥ ८ ॥ पृथ्वीपालस्ततोभूत्करतलक—

९ लितकूर [खड्गा] हतानां संग्रामे कन्धराभ्यो रिपुधरणिभुजा [मुत्पत] — ⌣
— — । — — — — ⌣ — — ⌣⌣⌣⌣⌣⌣ — — ⌣ — — ⌣ — — — —
ज्योतिः क्षणार्द्धं नयति निजतनुं पात्र (तां) भीरुतायाः ॥ ९ ॥ यस्यासिपा—

१० तदलितारिक [री] न्द्रकुम्भपीठोच्छलद्विमलमौक्तिक [शुभ्र] हारः । ....
.... ॥ १० ॥ [क्रीडामंदिर] मिदु गौरयशसां सौ (शौ) र्यस्य विश्रामभूः
सूनुर्म्मापत—

११ लिकाग्रणीः समजनि श्रीब्रह्मदेवस्ततः । नि [स्त्रिं] शाहतवीर [वैरिवनिता] ...
.... [॥ ११ ॥] [संग्रामे] हतवीरवैरिनिवहैर्व्वीभत्सद्भुतं कुर्व्वाणा
युधि संकयां पथि म—

१२ [हु] र्न्नाकौकसां [सङ्ग] ताः । नाकालम्बनतोभिरामरमणा ....
[॥ १२ ॥ ❀] .... लिमदः [श्रीम] न्नृसिंहोच्युतः प्रोद्यच्चक्रधरो द्विजा-
लिदयितो

१३ भोगिप्रकाण्डस्थितिः । उन्मील [न्नव] ....

१४ ....रजदल [श्यामांशुका] कान्तिमत्सान्द्रस्का-
रपयोधरा न—

१५ वरता येन प्रिया स्वीकृता । रागात्कोडमपास्य..................[खड्गलताभिधा] ततदिति [कृ] ध्यद् द्विषन्मण्डलीकण्ठोद्गच्छदसृक्प्रवाहनिवहैर्दु:सं—

१६ चरे स [ङ्ग] रे येनाक्रम्य ज [टेश्व] रो रिपुनृपः [कृ] रः .... [रितम] स्तोमे सहस्रद्युति प्रद्युम्नः प्रमदाजने सुरगुरुः सम्यग्गिरां निर्णये ॥

१७ विख्या [तो ब] लिर्वैरिवन्धनविधौ कृष्णो न कृष्णद्युति..................।
दधानः सत्त्वप्रियो घनरत्नप्रकराभिरामः । लब्धोन्नतिः प्रभुतयाऽखिलवाहि—

१८ नीनां रत्नाकरोयमपि नाश्रयदो जडानाम् ॥ १८ ॥ ये लीला..................
ये रामोद्धतसेतुबंधरुचिरा यस्य प्रचेतपुरीनारीनाभिनिपीतसिन्धुस्य—

१९ सः कीर्त्यां धरान्ताः स्थिताः ॥ १९ ॥ यद्भूपालोकनोत्कागत [वरललना वक्त्रपंकेरु- हाणां]– – – – ⌣ – – [द्रविणवितरणे याचकानां निकाये भिक्षा] दानाय चास्मद् भुवनमयमितीवामरोधैः प्रणुन्नो रक्षार्थं हाट—

२० काद्रेस्तटभुवनमनिशं भास्करो बंभ्रमीति ॥ २० ॥ आनीते तत्स्वहारिमण्डलवराच्छ्री- कोशल [स्वामिना] [पृथ्वी] देवनरेश्वरेण परमप्रेम्णा गुणानां निधौ । हस्तन्यस्त- कृपाणया [त] निहतप्रत्यर्थिपृथ्वीपतौ यस्मिन्राज्यधुरं

२१ समर्प्य परमा लब्धा मनोनिर्वृ तिः ॥ २१ ॥ वातान्दोलित – ⌣ – स (श) तदल- प्रालेयबिन्दूपमां लक्ष्मीं – ⌣⌣ – ⌣ – विलसितप्रायाञ्चलावस्थितिम् । [खद्यो- तोन्मि] षितानुकारमवनीव [के] नृणां यौव [नं] – – [पा] र्जितभूरिभूति-

२२ रनजश्रो धर्म्ममेवा दृतः ॥ २२ ॥ कुर्व्वाणाभिर्म्मंग⌣⌣⌣ – – ⌣सप्ताश्विसप्तेः खेदस्वेदं पवनविचलद्वंजयन्तीभिराभिः । तेनो – – प्रचुरकुमुदामोदिदिक्चक्रवाले मल्लालेऽस्मिन् सवलधवलं धूर्जटेर्द्धाम चक्रे ॥ २३ ॥ उ—

२३ त्फुल्लपङ्कजकदम्बविराजमानं पौराङ्गनास्तनतटीदलितोर्म्मिमालम् । – – सरोवर- मकारि⌣ – ⌣ नीरखेलन्मरालकुलसङ्कुलितं [समन्तात्] ॥ २४ ॥ प्रासाद- स्यास्य च [न्रां] शुकुन्दसुन्दररोचिषः । पृथ्वीदेवनरेन्द्राय पुण्यं

२४ पुण्यात्मने ददौ ॥ २५ ॥ दश भवनवराणि त्र्यम्बकस्येन्दुरोचिर्विकचकुमुदकुन्दस्फा- टिकाद्रि⌣ – – । [प्ररचयदलघूनि प्रौढदोर्दण्डलीला] ⌣⌣⌣⌣ – – – ⌣ – – ⌣ – – ॥ २६ ॥ अत्रैव पयसि – ⌣⌣ [सु ※] स्वरम्भां- हृतैः । वान्यत्रुतिप—

२५ याह्लादिवाप्युष्करिणीद्वयम् ॥ २७ ॥ तेनोदारमकारि तत्र पवनोद्वेल्लत्पता का- कुलं श्रीकण्ठस्य [सुधांशुधामधवलं] श्रीमद्वरेलापुरे । यत्रावासमवाप्य चाप्यतितरां तत्याज देवश्चिरप्रा – – ⌣⌣ – थिकापरिवृढः कैलासवासस्पृहाम् ॥ २८ ॥

२६ प्रालेयशैलदुहितुः कुमुदेंदुकुन्दनीहारहाररजतोधवलानि तेन । सर्व्वोत्तमानि [पवन-
प्रचलत्पताकान्यभ्रंलि] हानि नव रत्नपुरे कृतानि ॥ २९ ॥ क्रीड [नगर] पुरन्ध्री-
पीनस्तनजनितवीचिविशोभाम् । विपुलतरामिह वापीञ्च [का] र रुचिरां

२७ विचित्रसोपानाम् ॥ ३० ॥ व्याकोशांबुजपुञ्जगुञ्जदलिनीझंकाररावाञ्चितं खेलद्-
भूरिमरालसंकुलतटं तेनोत्तरस्यां दिशि । श्रीमद्रत्नपुरस्य दक्षिणदिशि प्रोद्दामकामा-
ङ्गना – – – ⏑⏑⏑ – ⏑ – ⏑ रुचिरं चक्रे तडागद्वयम् ॥ ३१ ॥ [गो]
ठालोना—

२८ म [नि ग्रा] मे चकार सरसीं शुभाम् । अनिमे [ष] दृशां वृन्दैदिवमप्यासितामिव
॥ ३२ ॥ सुधांशुधवलं [तत्र धूर्जटेर्धाम] निर्म्मितम् । नारायणपुरे तेन पताकोल्लि-
खिताम्बरम् ॥ ३३ ॥ अकारि [सरसी] – ⏑⏑⏑⏑⏑⏑ विराजिता । भारतीव
कथा तेन बम्हणीग्राम—

२९ स [न्निधौ] ॥ ३४ ॥ चरौयनाम्नि विस्तीर्ण्णं ग्रामे रम्यं सरोवरं । चकार
तेजल्लपुरे⏑⏑⏑⏑⏑⏑⏑राजितम् ॥ ३५ ॥ निर्म्मितं मंदिरं रम्यं कुमराकोटपत्तने ।
तेनैवान्यं यशोराशि [प्रकाशं पार्व्वती] पतेः ॥ ३६ ॥ तेनैवाम्र (म्र) वणं कृतं
घनत—

३० रुच्छायानिरस्ता [तपं] पाणिप्राप्यफलोत्करैर्म्मधुरसैः पान्थव्रजं प्रीणयत् कूज-
[त्कोकिल] काकलीव्यतिकरप्रारभ्यमान [स्मर] प्रौढाज्ञाविदलन्मनस्वितरुणी-
मानग्रहग्रन्थिकम् ॥ ३७ ॥ आकण्ठं विविधान्नपाननिवहैर्भुक्त्वा मनोज्ञा—

३१ [न्वि्ष्ट] तं राशी – ⏑⏑ – ⏑ यस्य सततं सत्रे (सत्रे) महासत्रि (त्रि)
णः । इत्थं कार्पटिकव्रजेन रभसा – – [भव] न्वारितो दिक्चक्रं मुखरीकरोति
बहलः कोलाहलः प्रत्यहम् ॥ ३८ ॥ देवाय सोमनाथाय ⏑⏑⏑⏑⏑ [पु ❀]
ण्यवान् । असौ लोणाक [र] – – स –

३२ र्व्वावार्थैः स – – ⏑ ॥ ३९ ॥ निर्व्यूढः कविपद्धतौ धुरि सतां बद्धास्पदः सन्ततं –
– – धिगमप्रसाधितमतिः सा – ⏑ वादे सुधीः आसीद्विस्तुतकीर्त्तिरत्नपटलप्राप्त-
प्रतिष्ठः त्रि [यां] लीलागार ⏑ – ⏑ पालविबुधो गौडान्वया—

३३ पोद्भवः ॥ ४० ॥ विधुरिव दुग्धपयोधेः प्रसाधिताशः कलानिधिर्न्नितराम् । अभव-
[त्त्रिभुवनपालः] पालितसकलद्विजस्तनुजः ॥ ४१ ॥ घनरसवतीं गभीरां स्वच्छतरां
कविविचाररमणीयाम् । सरसीमिव प्रशस्तिं त्रिभुवनपालो व्यधाद्विबुधः ॥

३४ ॥ ४२ ॥ हारावलीव सुवृत्तगुणां गुणाढ्यां कान्त्यान्वितां घनरसप्रकरां प्रशस्तिम् ।
– – ⏑ – ⏑⏑ [कलारचितप्र कर्षः] कौतूहलात्कुमर (मार) पालबुधो लिलेख
॥४३॥ धनपतिनाम्ना कृतिना शिल्पवरेणेश्वरेण च मनोज्ञा । उत्कीर्ण्णा प्रचुररसा प्र–

३५ शास्तिरियमक्षरं रुचिरं ॥ ४४ ॥ यावन्मण्डलसम्बरेम्बरनभोऽवश्रीशचूडामणिश्चन्द्रः सांद्रकरोत्करेण [कुरुते] -- ⏑ -- कलाम् । यावद्वसति चा [स्ति] पयसदना कौमोदकीलक्ष्मणस्तावत्कीर्त्तिरियम्बकास्तु विशदा विश्वम्भरामण्डले ॥ ४५ ॥

३६ सम्वत् ९१५

अनूवाद

सिद्धि । ओम् शिव को नमस्कार । वे चन्द्रचूडामणि (शिव) आपके कल्याण की वृद्धि करें जिन्होंने तीन नेत्र (केवल) इसलिये धारण किये हैं कि वे रीतिक्रीडा के समय पार्वती के सोने के घड़ों के समान दोनों स्तनों और मुखकमल को एक साथ देख सकें ।१। वे नीलकंठ आपकी श्री के लिये हों जिनका कण्ठ राख लिपटने के कारण सफेद होकर काजल, नीलकमलों की पंक्ति, भौंरों की पांत, इन्द्रनीलमणि, भैंसे और अंधकार समूह की शोभा की विडम्बना करता है और ऐसा लगता है जैसे पानी के भार से काले हुये बादल से घिरा बर्फ के पहाड़ों का तट हो ।२। वे पार्वतीवल्लभ आपका पाप दूर करें जिसके चरण कमलों की अंगुलियों के नख रूपी दर्पण में ब्रह्मा, इन्द्र, उपेन्द्र, चंद्र, सूर्य, कुलगिरि, पृथ्वी, समुद्र आदि के रूप में लोक का प्रतिबिम्ब देखकर पार्वती को विवाह के समय आश्चर्य हुआ (और) उसका मुखचन्द्र लज्जा से नम्र हो गया ।३।

वह सर्पों का राजा शेष संसार को सुख दे जिसकी गोद में नारायण बहुत समय तक सोते हैं (वे नारायण) जिनके पैरों की सेवा लक्ष्मी के हाथरूपी कमल करते हैं (और जिनके) पेट रूपी अद्वितीय लोह की कुटी में संसार विश्राम करता है, (वह शेष) जिसके अनेक फणों में स्थित मणियों के कारण समुद्र रत्नाकर बन गया ।४। वह श्री तलहारिमंडल चारों ओर से उन सरोवरों से घिरा हुआ है जिनमें कमल फूले हैं और भौंरे गुंजते हैं, (वह) उन उद्यानों से भरा हुआ है जिनमें .... केले के झाड़ शोभित हैं और जिनमें कोयल की कूज से कामदेव आकृष्ट हो गया है, (ऐसा तलहारिमंडल) पृथ्वी का आभूषण है ।५। .... संगीत ध्वनि कानों में भरी रहने के कारण अध्यापक लोग शिष्यों के अशुद्ध उच्चारण को जहां नहीं सुन पाते हैं ।६। .... जिसके शुभ्र यश के चारों दिशाओं में फैलने के कारण चकोर-पक्षी (उसे) चन्द्रमा की किरणें समझ कर (उस के पीछे) उड़ते हैं ।७। शीघ्रता से आकाश के आंगन को छूने वाला धुयें का समूह जिसके .... बादलों का समूह समझ कर शोर करते हुये देखा जाता है ।८। तब वहां पृथ्वीपाल हुआ जिसके हाथ में पकड़ी गयी तलवार से संग्राम में मारे गये शत्रु राजाओं के कन्धे .... क्षण भर के लिये ज्योति भी भीरु बन जाती है ।९। जिसकी तलवार से दलित हाथियों के कुम्भों से छिटकने वाले विमल मोतियों का स्वच्छ हार .... ।१०। उससे श्री बल्लदेव हुआ जो माण्डलिकों में अगुवा है, चन्द्रमा के समान गोरे यश की क्रीडा और शौर्य के विश्राम करने का स्थान है ....

।११। संग्राम में मारे गये वैरियों के जो समूह शीघ्र ही देव बन गये उनके साथ आकाशमार्ग में चर्चा करते .... इकट्ठे हो गये .... ।१२। जो नृसिंह के समान .... विष्णु के समान चक्रधारी, द्विजातप्रेमी, नागों के साथ रहने वाला .... ।१३। (श्लोक १४-१५ खंडित हैं) जिसने उस युद्ध में जटेश्वर नामक क्रूर राजा पर आक्रमण करके .... (जिस युद्ध में) खड्गलता के अभिघात बिजली की कड़क के समान थे (और) जिसमें क्रोधी शत्रुओं के समूह के कण्ठों से बहते हुये रक्त प्रवाह के कारण चलना कठिन हो गया था .... (।१६। वह) ... सूर्य है, स्त्रियों के लिये प्रद्युम्न है, वाणी का यथार्थ निर्णय करने के लिये बृहस्पति है, बली शत्रुओं को बांधने के लिये कृष्ण के समान विख्यात है किन्तु काला नहीं है ।१७। यह, प्राणियों को प्रिय, इस समूह से सुन्दर, लब्धोन्नति और सभी प्रकारों की वाहिनी (सेना) का पति होने के कारण समुद्र तो बन गया है किन्तु जड़लोगों को आश्रय नहीं देता ।१८। .... उसकी कीर्ति पृथ्वी के छोरों तक पहुंच गई है-राम (द्वारा बनवाये) विशाल पुल से रुचिर ...... (और) वरुण की नगरी की स्त्रियों की नाभि से भरे समुद्रजल .... ।१९। जो अपने रूप को देखने के लिये आने वाली सुन्दर स्त्रियों रूपी कमलों के लिये (सूर्य) है .... हमारे लोक में याचकों को दान देने के लिये (आवेगा) मानों ऐसा देवताओं द्वारा सोचने पर ही सूर्य मेरूपर्वत के क्षेत्र में नित्य घूमता है ।२०।

गुणों के सागर जिस (ब्रह्मदेव को श्री कोशलपति पृथ्वीदेव राजा अत्यन्त प्रेम से सुन्दर तलहारिमंडल से लाये (और) जिसने हाथ में कृपाण लेकर शत्रु राजाओं को मार डाला ; उसे राज्य शासन सौंपकर (पृथ्वी देव) अत्यन्त निश्चिन्त हो गया ।२१। वायु से उड़ जाने वाली .... कमल पर पड़ी ओस की बूंद के समान, लक्ष्मी को (बिजली) की चमक के समान चंचल, मनुष्यों के यौवन को जुगनू की दमक के समान (देखकर) जिसने बहुत सा धन उपार्जित करके धर्म का ही आदर किया ।२२। इस मल्लाल में जो प्रचुर कुमुदों से दिशाओं के मंडल को आमोद देता है, उसने लवल (पुष्प) के समान धवल धूर्जटि (महादेव) का मंदिर बनवाया जो पवन से हिलने वाली ध्वजाओं से सूर्य के रथ के घोड़ों का थकान से आया पसीना दूर करता है ।२३। उसने एक सरोवर बनवाया जिसमें फूले हुये कमलों का समूह है, नगर की स्त्रियों के स्तनों से जिसकी लहरें टूटती हैं, (और) जो चारों ओर जल में खेलते हंसों से भरा हुआ है ।२४। चन्द्रमा की किरणों और कुन्द फूलों के समान सुन्दर कान्ति वाले इस मंदिर का पुण्य पुण्यात्मा पृथ्वीदेव राजा को दिया ।२५। चन्द्रमा की चांदनी, फूले कुमुद, कुन्द और स्फटिक के पर्वत के समान (सफेद) यह मंदिर त्र्यम्बक (शिव के .... ।२६। यहीं दो सुन्दर पुष्करिणी, जो .... स्वर की झंकार से राहगीरों के कानों को आनंद देती हैं ।२७। उसने श्री बरेलापुर में श्रीकण्ठ का चन्द्रमा के प्रकाश के समान सफेद मंदिर बनवाया जिसमें पवन से डोलती ध्वजाएं हैं, जिसे मंदिर में आवास प्राप्त करके अम्बिकापति देव ने कैलास पर रहने की इच्छा बिलकुल छोड़ दी है ।२८। उसने रत्नपुर में पार्वती के नौ मंदिर बनवाये जो सर्वोत्तम हैं, कुमुद,चन्द्र, कुन्द, बर्फ, हार और लवल (पुष्प) जैसे धवल हैं ; हवा से डोलती ध्वजाओं वाले

है और आकाश को छूते हैं।२९। वहां रुचिर और बड़ी वापी बनवाई जिसमें सीढ़ियां हैं तथा नगर की स्त्रियों द्वारा क्रीड़ा करने से लहरें उठती हैं।३०। रत्नपुर की उत्तर और दक्षिण दिशा में उसने दो रुचिर तालाब बनवाये जिनमें स्त्रियों के .... (जो) फूले हुये कमलों के समूह पर गुंजते भौंरों की झंकार के शोर से भरे हुये हैं, जिनके तट खेलते हुये बहुत से हंसों से भरे हैं।३१। गोठाली नामक ग्राम में शुभ तालाब बनवाया जो महिलाओं से ऐसा भरा है जैसे स्वर्ग (देवों से)।३२। वहां नारायणपुर में उसने चन्द्रमा के समान धवल धूर्जटि का मंदिर बनवाया जो पताकाओं से आकाश को छूता है।३३। बह्मणी ग्राम के निकट उसने भारत की कथा के समान तालाब बनवाया।३४। चरौय नामक ग्राम में विस्तीर्ण और रम्य तालाब बनवाया (और) तेजल्लपुर में ....।३५। कुमराकोट नामक नगर में उसने पार्वती-पति का एक और रम्य मंदिर बनवाया जो कि उनके कलसमूह के समान प्रकाशवाला है।३६। उसने ही आमों का बगीचा लगवाया जो घनी छाया से धूप को दूर करके और हाथ से पाये जा सकने वाले मीठे फलों से राहगीरों को सुख देता है, और जहां कोयल के मीठे स्वर से प्रारंभ होने वाली कामदेव की आज्ञा से मानिनी स्त्रियों की मान की गांठ खुल जाती है।३७। जिस महान सत्री के सत्र में हमेशा मनोवांछित और तरह तरह के अन्नजल का भोजन कंठपर्यंत करके यात्रियों का इस प्रकार का भारी कोलाहल .... प्रतिदिन दिशामंडल में गुंजता है।३८। (उस) पुण्यवान् ने सोमनाथ देव को लोणाकर .... आदाय समेत ....।३९।

गौड़ कुल में उत्पन्न (अनंत) पाल नामक प्रसिद्ध विद्वान् था जो कवि पद्धति में निर्व्यूढ़, सज्जनों द्वारा सम्मानित, ... ज्ञान से शुद्ध बुद्धि वाला .... अक्षपटल में प्रतिष्ठाप्राप्त और लक्ष्मी का लीलागृह था।४०। उसका बेटा त्रिभुवनपाल सभी ब्राह्मणों को पालने वाला और कलाओं का खजाना था; उसने सभी इच्छायें पूरी कर दी थी; वह उसी प्रकार था जैसे क्षीर समुद्र से चन्द्रमा।४१। त्रिभुवनपाल विद्वान् ने सरोवर के समान इस प्रशस्ति की रचना की जो गंभीर है, अत्यन्त स्वच्छ है, रसवती है और कवियों के विचारों को रमणीय है।४२।

कला में प्रकर्ष प्राप्त करने वाले विद्वान् कुमारपाल ने कौतूहल से इन प्रशस्ति को लिखा जो हार के समान अच्छे छन्दों के गुणवाली, गुणों से भरी, कान्तियुक्त और गंभीर रस से भरी है।४३। यह मनोज्ञ और खूब रसवाली प्रशस्ति रुचिर अक्षरों में धनपति नामक कृती और शिल्पज्ञ ईश्वर ने उत्कीर्ण की।

जब तक आकाश का मणि (और) शंकर का चूड़ामणि चंद्र अपनी किरणों से पृथ्वी-मंडल को सफेद करता है; जब तक कौमोदकी धारण करनेवाले विष्णु के हृदय में लक्ष्मी है; तब तक यह विशद कीर्ति पृथ्वीमंडल पर प्रकाशित रहे।

संवत् ९१५।

२५. द्वितीय जाजल्लदेव के समय का मल्लार में प्राप्त शिलालेखः (कलचुरि) संवत् ६१६

(चित्रफलक इकतालीस)

काले पत्थर पर उत्कीर्ण यह शिलालेख बिलासपुर जिले के मल्लार नामक ग्राम में प्राप्त हुआ था। इसे डाक्टर किलहार्न ने एपिग्राफिया इण्डिका जिल्द एक (पृष्ठ ३९ इत्यादि) में और महामहोपाध्याय मिराशी ने कार्पस इंस्क्रिप्शनं इंडिकेरं, जिल्द चार (पृष्ठ ५१२-१८) में प्रकाशित किया है।

लेख बायें ओर खण्डित है। इसमें नागरी लिपि में लिखे गये २६ संस्कृत श्लोक हैं। यह कलचुरि राजा (द्वितीय) जाजल्लदेव के राज्यकाल में (कलचुरि) संवत् ६१६ तदनुसार ११६७-६८ ईस्वी में लिखा गया था। इसका मुख्य विषय सोमराज नामक ब्राह्मण द्वारा मल्लार में केदारेश्वर महादेव के मंदिर के निर्माण किये जाने के संबंध में विवरण देना है।

प्रारंभ में दो मंगलश्लोकों में शिव और गणपति की स्तुति की गई है। फिर कलचुरि राजा (द्वितीय) रत्नदेव का वर्णन है जिसने चोडगंग पर विजय प्राप्त की थी। उसका बेटा (द्वितीय) पृथ्वीदेव था। इस पृथ्वीदेव के बेटे (द्वितीय) जाजल्लदेव के राज्यकाल में यह प्रशस्ति लिखी गई थी।

राजवंश का वर्णन करने के बाद सोमराज की वंशावली दी गई है जिसमें बताया गया है कि मध्यदेश के कुम्भाटी नामक ग्राम में पृथ्वीधर ब्राह्मण रहता था; वह कृष्णात्रेय गोत्र और आत्रेय, आर्चनानस् और सस्यावास इन तीन प्रवरोंयुक्त था। उसका बेटा गंगाधर तुम्माण आया जहां उसे द्वितीय रत्नदेव ने कोसम्बी नामक गांव देकर सम्मानित किया। गंगाधर का बेटा सोमराज हुआ। वह मीमांसा, न्याय, और वैशेषिक सिद्धान्तों का ज्ञाता तथा चार्वाक, बौद्ध और जैन दर्शनों का खण्डन करने वाला था। इस सोमराज ने मल्लाल में केदारेश्वर मंदिर का निर्माण कराया।

इस प्रशस्ति की रचना वास्तव्य कुल के मामे के बेटे रत्नसिंह ने की थी। कार्लंगीय वंश के क्षत्रिय कुमारपाल ने इसे लिखा और सांपुल ने उत्कीर्ण किया। प्रशस्ति में प्राप्त भौगोलिक नामों में से तुम्माण और मल्लाल के बारे में पहले बताया जा चुका है। कोसम्बी और कुम्भाटी के बारे में पता नहीं चलता किन्तु मध्यदेश आजकल का उत्तर प्रदेश है।

मूलपाठ

पंक्ति

१ [सिद्धिः ओं नमः शि] वाय ॥ मूर्द्धन्यस्तजटाग्रपल्लवचयो बालस्थलीमल्लिकाता-

र्त्संपिक्षणहव्यवाहविसरज्ज्वालाप्रदीपद्युतिः । सम्पूर्णः सुरसिन्धुतुङ्गलहरीवारि-
प्रवाहैरसौ शम्भु—

२ [मं] ङ्गलकुम्भविभ्रमदधद्बिभ्रत्सदा पातु वः ॥ १ ॥ ऊर्द्ध्वीकृतः सुरसरित्सलिला-
वगाहादुद्दण्डचण्डतरचारुकरो विभाति (ते) ब्रह्माण्डमण्डलमहोत्पलनालसीलाम्ब-
भ्रत्त वो गणप—

३ तेरवतादजस्रम् ॥ २ ॥ देवः पीयूषधारानिकरपरिगलद्बिन्दुसन्दोहकोष्णैर्व्योमाशा-
चक्रवालो भवननृपचमूदर्प्पणः कैरवाणाम् । बन्धुः सिन्धुप्रसूतिः स जयति भु—

४ वनानन्दसम्भारकन्दो लोलावीमानमुद्राविघटनपटुतामावहन् शुभ्रभानुः ॥ ३ ॥ तद्वंशे
नृपचोडगङ्गविसरत्प्रौढप्रतापानलज्वालासन्ततिशान्तिचण्डजल—

५ दः श्रीरत्नदेवोऽभवत् । भूपालोखिलवैरिवीरवसुधाऽधीशोरुदोर्व्वल्लरीदर्प्पैकद्रुम-
दाहदावदहनः श्रीमन्दिरं सुन्दरः ॥ ४ ॥ पृथ्वीदेवस्ततोऽभूद्बलवदरिधरा—

६ नाथनागेन्द्रतार्क्षी (तार्क्ष्यो) नम्राणां मौलिरत्नद्युतिभरविलसन्मल्लिकामाल्यभारैः ।
पूज्यांह्रिद्वंद्वपद्मो निजभुजविजय श्रीमहाकेलिशीलः पुत्रः सत्क्षात्रकीर्त्ति—

७ प्रततिलहरिलामण्डलाभोगभर्त्ता ॥ ५ ॥ तस्माच्चेदिकुलावलम्बनयु (बु) यामग्रेसरो
भूभुजां दोर्द्दण्डद्वयदर्प्पखण्डितरिपुर्ज्जाजल्लदेवोऽभवत् । तुम्माणाधिपतिर्निजामल—

८ कुलप्रद्योतदीपोपमः सत्क्षात्रैकनिधिः प्रतापतरणिः सौ (श्रौ) र्य्यार्ज्जितश्रीर्नृपः ॥ ६ ॥
मन्ये यद्दानशंकाजनितभयवशाद्वल्लभो निम्नगानां दुग्धाब्धिर्भीमगर्भेष्वु—

९ स्वकसलिले रत्नराशिम्बभार । ग्राहान्मार्त्तण्डदेवस्त्रिदशपरिवृढः [स्व] र्न्नदीतोय-
दुर्गो स्वर्गे दानाम्बुधारोद्धुरमधुपवधूमालमैरावणञ्च ॥ ७ ॥ राज्ये महीभुजस्तस्य

१० नयवर्त्मानुसारिणि । शोरणोपसर्गसंसर्गप्रजानन्दविधायिनि ॥ ८ ॥ आसीच्छ्रीमध्य-
देशे विततसुरनदीवारिपूरोर्म्मिमालाऽलङ्कारे हारभूते निखिलजनपदो—

११ द्दामभूमण्डलस्य । ग्रामो रम्योऽभूमिर्द्दिजवरवसतिः कुम्भटीनामधेयो यत्नात्स्वर्गैक-
खण्डप्रतिनिधिरमलो निर्म्मितो यो विधात्रा ॥ ९ ॥ आत्रेयस्तावदा—

१२ द्यस्तदनु च विदितोप्या (प्या) र्च्चनानो द्वितीयः सत्यावासस्तृतीयः प्रवर इह
शुभैस्तैर्द्दिजो भूषितोऽभूत् । कृष्णात्रेयस्य च गोत्रे प्रणतवसुमतीपालमालो—

१३ त्तमाङ्गत्वङ्गद्रत्नाङ्कुर श्रीखचितपदयुगस्तत्र पृथ्वीधराख्यः ॥ १० ॥ यः प्रांक
विशाललोचनपुटन्यस्ते तृतीयं सदा सद्भूतिन्व (ञ्च) तनोति यो निजतनौ
दुर्व्वारमारा—

१४ पहः । दुर्गाश्लेषकरोरिवादिनिवहे पुत्रस्ततोऽभूदसौ विभाणो द्विजराजसुन्दरपदं मौलौ
स गङ्गाधरः ॥ ११ ॥ ततः कालक्रमेणासौ देशं तुम्माणमागतः । गुणग्रामार्जि—

१५ तस्मादिवलक्ष्मीर्द्विजशिरोमणिः ॥ १२ ॥ प्रक्षाल्य चरणाम्भोजे रत्नदेवो महीपतिः । कोसंबीग्राममेतस्मा उदकीकृत्य दत्तवान् ॥ १३ ॥ श्रीगङ्गाधरतः सुतोऽजनि जगद्वंद्यैकपादो—

१६ नृपः प्रौढानन्दकरः कलङ्करहितः स्फायत्कलानां निधिः । बिभ्राणो द्विजराजतां हतजडश्लेषोवभूरिप्रभो धात्रीमण्डलमण्डनो विधुरसौ श्रीसोमराजोऽपर : ॥ १४ ॥ मीमान्सा—

१७ द्वयपारगो गुरुरसौ यः काश्यपीये नये सांख्ये चाप्रतिमल्लतामदनिधिस्त्र्यक्षोऽक्षपादो-क्तिदृक् । यश्चार्वाकविशालमानमलनो दुर्वारबौद्धाम्बुधेः पाना—

१८ न्दितकुम्भसम्भवमुनिर्दिग्वाससामन्तकः ॥ १५ ॥ यत्रान्तं क्रतुकुण्डमण्डलचलद्-धूमावलीश्यामलव्योमाशावलयं विलोक्य विलसन्नीलाम्बुदालीभ्रमात् । विप्रास्येरि—

१९ तवेदराशिविततोद्घोषोद्धुरं यद्गृहे सत्पक्षप्रसरा नटन्ति पटवो हृष्टा मुहुः केकिनः ॥ १६ ॥ भीतो दुर्गपदं दधाति शिखरी दक्षस्य वारांनिधेः (निधिः) पारे कष्ट—

२० किपादपावृतवपुर्भोगैश्च सिंहादिभिः । यद्दानादिव तीक्ष्णदंष्ट्रवदनप्रो [द्गी] र्णचञ्चद्विषज्वालाजालकराल [भो] गपटले रत्नानि शेषोप्यधात् ॥ १७ ॥ रूपं विश्वजयेषि—

२१ णो रतिपते रुक्माचलाद्गौरवं गाम्भीर्यं जलधेः सहस्रकिरणाद्ध्वान्तमोजस्विताम् । ऐश्वर्यं स्मरसूदनस्य परमं ग्रामं गुणानामिव प्राहं ग्राहमसौ विष्टु—

२२ क्षुरसूत्रयोद्भवोयं भुवि ॥ १८ ॥ सप्ताम्भोनिधिवीचिचारिणि भृशं यत्कीर्तिहंसी मुहुर्भ्रान्त्वाश्रान्तमियं सुरालयमगान्मन्दाकिनीकांक्षि—

२३ णी । भुक्त्वा बालमृणालनालशकलान्युद्दामकामोत्सुका ब्रह्माण्डोदरभाण्डवारिजभुवो-रन्तुं मरालं ययौ ॥ १९ ॥ वाताहतिचलत्तूलतरलं जीवितं नृणाम् । च [ञ्च]—

२४ लाञ्च [श्रि] यं [मत्वा] धर्म्मे मतिमधाद्धयः ॥ २० ॥ तेन केदारदेवस्य धाम मल्लालपत्तने । श्रीमता [का] रितं रम्यं स्वयशोराशिभासुरम् ॥ २१ ॥ उर्व्वीमा-लिङ्ग्य पूर्व्वं गुरु—

२५ जघनघनाश्लेषलब्धप्रमोदामेतत्काष्ठावधूनां ध्वजभुजवलनैः श्लेषदक्षं समन्तात् । कामव्यास (स) क्तचेता इव विबुधपुरी सुन्दरीणां समक्षे त्यक्तव्रीडं निकामं गगनप-रिसरः श्री—

२६ मुखं चुम्बतीव ॥ २२ ॥ काश्यपीयाक्षपादीयनयसिद्धान्तवेदिना विपक्षवादिसिंहेन रत्नसिंहेन धीमता ॥ २३ ॥ श्रीराघवान्हि (ह्नि) कमलाम्बुधराभिषेकलब्धोदय—प्रततया—

२७ समहोत्सहेण । वास्तव्यवंशकमलाकरभानुनेयं मामेसुतेन रचिता रुचिरा प्रशस्तिः ॥ २४ ॥ इयं सहस्रार्जुनवंशजेन कुतूहलात्क्षत्रियपुङ्गवेन कुमारपा—

२८ [लेन गु] णाभिरामरामेव रम्या लिखिता प्रशस्तिः ॥ २५ ॥ अनेकशिल्पनिर्म्माण-पयोधेः पारदृश्वना । उत्कीर्ण्णा रूपकारेण सांपुलेनेयमादरात् ॥ २६ ॥ सम्वत् ६१६ [॥ ❀]

अनुवाद

[सिद्धि । ओम् शिव को नमस्कार ।] वे शम्भु सदा आपकी रक्षा करें जिनके मस्तक पर जटारूपी आम के पत्तों का समूह है, भाल पर स्थित तीसरे नेत्र की अग्नि की ज्वालाओं रूपी दीपक की द्युति है (और) गंगा की ऊंची लहरों वाली जल की धारा है (इस प्रकार वे) मंगलकलश की शोभा धारण करते हैं ।१। गणपति की वह उद्दंड, चण्डतर और सुंदर सूंड आपकी सदा रक्षा करे जो देवताओं की नदी के जल में डुबकी लगाने से ऊपर उठी हुई, ब्रह्मांड मंडल रूपी बड़े नीलकमल की नाल की शोभा को धारण करती है ।२। समुद्र का बेटा वह चन्द्रदेव विजयी हो जिसने अमृतधारा समूह से झरती बूंदों से आकाश और सभी दिशाओं को भर दिया है; जो मदन राजा की सेना का दर्पण है; कैरवों का बन्धु है; संसार के महान् आनंद का कन्द है (और) चंचल आंखों वाली स्त्रियों की मानमुद्रा को भंग करने की चतुराई युक्त है ।३। उसके वंश में (द्वितीय) रत्नदेव राजा हुआ जो नृप चोडगंग के फैलते हुये महान् प्रतापानल की ज्वालाओं के समूह को शान्त करने के लिये प्रचण्ड मेघ था; सभी वीर शत्रु राजाओं की लम्बी भुजाओं रूपी वल्लरी (को आश्रय देने वाले) घमड रूपी अद्वितीय वृक्ष को जलाने के लिये दावाग्नि था; सुन्दर और लक्ष्मी का घर था ।४। उससे (द्वितीय) पृथ्वीदेव पुत्र हुआ जो बलवान शत्रु राजाओं रूपी सर्पों के राजाओं के लिये गरुड़ के समान था; जिसके दोनों चरण रूपी कमल, नम्र (राजाओं) के मुकुटों में लगे रत्नों की द्युति रूपी मल्लिकापुष्पों की मालाओं के समूह से शोभित थे; जो अपनी भुजाओं की विजय रूपी लक्ष्मी के लिये क्रीडापर्वत था; अच्छे क्षत्रियधर्म की कीर्ति रूपी लता को (आश्रय देने के लिये) वृक्ष के समान था और समस्त पृथ्वी मण्डल का स्वामी था ।५।

उससे तुम्माणाधिपति राजा (द्वितीय) जाजल्लदेव हुआ, जिसने शौर्य से लक्ष्मी अर्जित की और जो प्रताप का सूर्य है; सच्चे क्षात्रधर्म का अद्वितीय खजाना है; अपने निर्मल कुल को प्रकाशित करने वाला दीपक है; दोनों भुजाओं के दर्प से रिपुओं का नाश करने वाला है (और) चेदि कुल को उठाने वाले राजाओं में अगुआ है ।६। ऐसा लगता है कि उसके दान की शंका से उत्पन्न भय के कारण नदियों के स्वामी क्षीरसागर ने रत्नराशि को भयंकर गर्भ के गहरे पानी में रख लिया है; सूर्य ने अपने घोड़े और इन्द्र ने अपना वह ऐरावत हाथी जिसके मदजल की धारा से प्रसन्न होकर भौंरियों ने माला बना दी है, (उस) स्वर्ग में (छिपा रखे हैं जो) स्वर्ग की नदी के जल के कारण अगम्य है ।७। नीतिमार्ग का अनुसरण करनेवाले और प्रजा के संकट दूर कर आनंद बढ़ाने वाले उस राजा के राज्य में ।८। विस्तृत गंगा नदी के जल में उठने वाली लहरों

रूपी माला से अलंकृत (और) विभिन्न जनपदों से भरे भूमण्डल के हार के समान श्रीमध्यदेश में सुंदर और विस्तृत भूमिवाला कुम्भटी ग्राम है जिसमें अच्छे अच्छे ब्राह्मण रहते हैं और जिसे विधाता ने बड़े यत्न से स्वर्ग के एक भाग के प्रतिनिधि के रूप में स्वच्छ बनाया है।९। पहला आत्रेय, दूसरा आर्चनान और तीसरा सस्यावास, इन तीन प्रवरों से विभूषित पृथ्वीधर नामक ब्राह्मण कृष्णात्रेय गोत्र में वहां हुआ जिसके दोनों पैर नमस्कार करने वाले राजाओं के मस्तकों पर झूमते रत्नों की शोभा से भरे हुये थे।१०। उससे गंगाधर नामक वह पुत्र हुआ जो अपने मस्तक पर द्विजराज की सुन्दर पदवी धारण किये था; जो प्रज्ञारूपी अद्वितीय और विशाल तृतीय नेत्र सदा धारण करता है; कठिनता से दूर होने वाले काम को जिसने दूर किया है, जिसने सच्चा कल्याण प्राप्त कर लिया है और प्रतिवादियों के समूह के लिये जिसके तर्क अकाट्य थे। (इस प्रकार वह गंगाधर शिव के समान था) ।११। वहां से, वह द्विजशिरोमणि और गुणसमूह से प्रचुर लक्ष्मी अर्जित करने वाला (गंगाधर) कालक्रम से तुम्माण देश में आया।१२। रत्नदेव राजा ने उसके दोनों चरणकमल प्रक्षाल कर कोसंबी (नामक) गांव जलपूर्वक दिया।१३।

श्री गंगाधर का छोटा बेटा वह श्री सोमराज हुआ जिसके पैरों की वंदना संसार करता है; जो अत्यन्त आनंदकारी है, निष्कलंक है, कलाओं का निधि है, ब्राह्मणों में राजा है, जड़ लोगों की संगति नष्ट करके अत्यन्त प्रभावाला है, पृथ्वीमण्डल का मण्डन है, इस प्रकार दूसरा चन्द्रमा है।१४। वह दोनों मीमांसाओं में पारंगत है, काश्यप के नय(वैशेषिक) में गुरु है, सांख्य में उसकी जोड़ नहीं होने से गौरव का निधि है, अक्षपाद के सिद्धान्त (न्याय) को (तीसरी) आंख से प्यक्ष है, चार्वाकों के बड़े मान को नष्ट करता है, दुर्वार बौद्ध दर्शन रूपी समुद्र को पीकर अगस्त्य मुनि के समान आनंदित है और जैनों के लिये यम है।१५। जिसके घर में यज्ञ कुण्डों से निकलते धुयें से आकाश और दिशाचक्र को सदैव छाया हुआ देखकर नीले बादलों के भ्रम से (और) विप्रों के मुख से निकले वेदों के उद्घोष से भरा हुआ देखकर (बादलों की गड़गड़ाहट समझकर) पटु और प्रसन्न मोर पंख फैलाकर बार बार नाचते हैं। १६। जिसके दान के डर से ही मानों सोने के बने (मेरु) पर्वत ने अपने आप को अगम्य बना दिया है; समुद्र ने अपने शरीर को कांटों-वाले वृक्षों और तट पर रहने वाले भयंकर सिंह इत्यादि जानवरों से घेर रखा है (और) शेषनाग ने (अपने) रत्न उन फणों में रख लिये हैं जो तीक्ष्ण दांतों युक्त मुख से निकलने वाली विष की ज्वालाओं से कराल हैं।१७। विश्व को जीतने के इच्छुक कामदेव का रूप, सोने के पर्वत का गौरव, समुद्र का गांभीर्य, सूर्य की न थकने वाली ओजस्विता, शिव का ऐश्वर्य, आदि गुणसमूह को ग्रहण कर गुणों का एक संग्रह देखने की इच्छा से ब्रह्मा ने पृथ्वी पर उसकी रचना की।१८। जिसकी कीर्ति रूपी हंसी सातों समुद्रों के तट पर जल में बार बार खूब भ्रमण कर के भी नहीं थकी (और) मन्दाकिनी की कांक्षा से स्वर्ग गयी, वहां कोमल मृणालों तथा नालों का भक्षण कर उद्दाम काम के लिये उत्सुक होकर ब्रह्मांड रूपी घड़े के कमल से उत्पन्न ब्रह्मा के हंस के पास गई।१९। मनुष्यों के जीवन को पवन के झकोरों से उड़ जाने वाली कपास और लक्ष्मी को चंचल मानकर (उस) बुद्धिमान् ने धर्म में बुद्धि लगाई।२०।

उस श्रीमान् ने मल्लालपत्तन में केदारदेव का सुन्दर मंदिर बनवाया जो उनके यश की राशि के समान प्रकाशित है।२१। पहले उस पृथ्वी का – जिसे भारी जंघाओं के खूब आलिगन से आनंद मिला है— आलिंगन करके यह मंदिर जो आलिंगन करने में चतुर है, ध्वजारूपी हाथों से चारों ओर की दिशाओं रूपी स्त्रियों का आलिंगन करके कामी की तरह लज्जा छोड़कर देवलोक की सुन्दरियों के सामने ही गगनपरिसर की शोभा के मुख को जैसे चूम रहा है।२२। यह रुचिर प्रशस्ति मामे के बुद्धिमान् बेटे रत्नसिंह ने रची है जो कश्यप और अक्षपाद के न्यायसिद्धान्त को जानता है, विपक्षी वादियों के लिये सिंह है; जो वह वृक्ष है जिसकी शाखायें श्रीराघव के चरणकमल रूपी बादलों के द्वारा सींची जाने के कारण बड़ी हैं और जो वास्तव वंश रूपी कमल समूह के लिये सूर्य है।२३–२४।

सुन्दर गुणों से मनोहर स्त्री के समान रम्य वह प्रशस्ति सहस्रार्जुन वंश में उत्पन्न और क्षत्रियों में श्रेष्ठ कुमारपाल ने कौतूहलपूर्वक लिखी।२५। अनेक शिल्पनिर्माण रूपी समुद्र के पारंगत रूपकार सांपुल ने इसे आदर के साथ उत्कीर्ण किया।२६। संवत् ९१९।

२६. द्वितीय जाजल्लदेव का अमोदा में प्राप्त ताम्रपत्रलेख : (कलचुरि)संवत् ९१ [९]

(चित्रफलक बयालीस)

ये दोनों ताम्रपत्र बिलासपुर जिले में जांजगीर के निकट स्थित अमोदा गांव में ईस्वी सन् १९२४ में प्राप्त हुये थे। इस लेख को रायबहादुर डाक्टर हीरालाल ने एपिग्राफिया इण्डिका जिल्द उन्नीस (पृष्ठ २०९ इत्यादि) में और महामहोपाध्याय मिराशी ने कार्पस इंस्क्रिप्शनं इंडिकेरं, जिल्द चार (पृष्ठ ५२८–३३) में प्रकाशित किया है।

दोनों ताम्रपत्रों में से प्रत्येक ३२ से० मी० चौड़ा और लगभग २५ से० मी० ऊंचा है। दोनों में छल्ले के लिये छेद तो है किन्तु छल्ला और मुद्रा साथ में प्राप्त नहीं हुये हैं। ताम्रपत्रों का वजन लगभग १८०० ग्राम है। प्रथम पत्र पर १८ पंक्तियां और दूसरे पत्र पर १९ पंक्तियां उत्कीर्ण हैं। लिपि नागरी और भाषा संस्कृत है।

इस लेख में कलचुरी राजाओं की वंशावली है जिसमें बारहवें श्लोक में (द्वितीय) जाजल्लदेव का उल्लेख है। आगे बताया गया है कि इस जाजल्लदेव को भीरु नामक ग्राह ने पकड़ लिया था जिससे बड़ी कठिनाई से छूटने और पुनः राज्य प्राप्त करने के उपलक्ष्य में उस ने दैवज्ञ राघव और नामदेव नामक दो ब्राह्मणों को बुण्डेरा नामक ग्राम दान में दिया। राघव दैवज्ञचूडामणि दामोदर का बेटा और पृथ्वीधर का नाती था जो सावर्ण्य गोत्र में उत्पन्न हुआ था और वत्स, भार्गव, च्यवन, आप्नवान तथा और्व इन पांच प्रवरों युक्त था। नामदेव, पराशर का बेटा तथा महाधन का नाती था; उसका गोत्र भारद्वाज और भारद्वाज,आंगिरस तथा बार्ह-

स्त्य, ये तीन प्रवर थे। इस लेख को जडेर गांव के वास्तव्यवंशीय वत्सराज के बेटे धर्मराज ने लिखा था।

उन्नीसवें श्लोक में धीरू द्वारा जाजल्लदेव के पकड़े जाने का जो उल्लेख है उसके अर्थ के बारे में विद्वानों में मतभेद है। रायबहादुर हीरालाल ने धीरू के स्थान पर धीरू बांचा था। उनका अनुमान था कि धीरू (या धीरू) किसी जनजाति का सरदार था जिसने विद्रोह कर दिया था। डाक्टर भण्डारकर का अनुमान था कि जाजल्लदेव को धीरू नामक यक्ष लग गया था जिससे उसे बड़ी कठिनाई से छुटकारा मिला। किन्तु महामहोपाध्याय मिराशी का मत है कि धीरू नामक घड़ियाल ने जाजल्लदेव को पकड़ रखा था।

इस दानपत्र की तिथि के संबंध में भी भिन्न भिन्न मत हैं। लेख में श्रवण वदि ५, शुक्र का उल्लेख है; संवत् के तीन अंकों में से पहले दो ९ और १ स्पष्ट हैं किन्तु तीसरा अंक अस्पष्ट है। इस तीसरे अंक को रायबहादुर हीरालाल ने २ या ३ और महामहोपाध्याय मिराशी ने ९ अनुमान किया है। इस प्रकार यह लेख अग्रहण वदि पंचमी, शुक्रवार (कलचुरि) संवत् ९१९ तदनुसार ३ नवम्बर ११६७ ईस्वी को लिखा गया था क्योंकि (कलचुरि) संवत् ९१२ या ९१३ में द्वितीय जाजल्लदेव नहीं बल्कि उसका पिता द्वितीय पृथ्वीदेव राज्य कर रहा था।

इस लेख में जिन स्थानों का उल्लेख हुआ है उनमें से दान में दिया गया ग्राम बुण्डेरा वर्तमान बुंदेला गांव हो सकता है जो अमोदा के निकट है। जंडेर आजकल का जोंडरा गांव है, वह उससे २३–२४ किलोमीटर आगे है।

मूलपाठ

पंक्ति प्रथम पत्र

१ सिद्धिः ओं नमो ब्रह्मणे। निर्गुणं व्यापकं नित्यं शिवं परम (म) कारणं भाव (व) ग्राह्यं पर (रं) [ज्यो] ति—

२ स्तस्मै सद्ब्रह्मणा (णे) नमः । १ [॥ ❀] यवेतप्रेसरमंबरस्य ज्योतिः स पूषा पुरुषः पुराणः । अथास्य

३ पुत्रो मनुराविराजस्तदन्वयेऽभूद्भुवि कार्त्तवीर्यः ॥ २ ॥ तद्वंशप्रभव (वा) नरेन्द्रपतयः ख्याताः

४ क्षितौ हैहयास्तेषामन्वयभूषणं रिपुमनोविन्यस्ततापानलः। धर्म्मः ध्यान (धर्म्मध्यान) धना [नु] शं (सं) चि [त]—

५ ज (य) शाः शश्वत्सतां सौख्यकृत्प्रेमान्सर्व्वगुणान्वितः समभवच्छ्रीमान् (न) शौ (सौ) कोकलः ॥ ३ ॥

६ ष्स्टा (ष्टा) दशारिकरिकुम्भविभङ्गसिंहाः पुत्र (पुत्रा) बभूवुरतिशौर्यपराश्च तस्य। तत्राग्रजो नृप—

७ वरस्त्रिपुरीश आसीत्पार्श्वे च मण्डलपतीन्स चकार बन्धून् ॥ ४ ॥ तेषामनूजस्यकलि—

८ [ङ्ग] राजः प्रतापवह्निक्षपितारिराजः। जातोन्वये ङ्गिप्त (दृप्त) रिपुप्रवीरप्रिया-नना [म्भो] रुहपा—

९ र्व्वणेन्दुः ॥ ५ ॥ तस्मादपि प्रततनिर्म्मलकीर्त्तिकान्तो जातः [सुतः] कमलराज इति प्रसिद्धः

१० यस्य प्रतापतरणावुदिते रजन्यां जातानि पंकजवनानि विकास [भाञ्जि]॥ ६ ॥ तेनाथ चन्द्र—

११ वदनोजनि रत्नराजो विश्वोपकारकरणाज्जितपुण्यभारः। येन स्वबाहुयुगं (ग)—निर्म्मितवि—

१२ [क] मेण नीतं यशस्वि (स्त्रि) भुवने विनिहत्य शत्रून् ॥ ७ ॥ नोनल्लाख्या प्रिया तस्य शूरस्येव वि (हि) शूरत (ता)

१३ तयाः (योः) सुतो नृपश्रेप्रः (ष्ठः) [पृ] थ्वीदेवो बभूव ह ॥ ८ ॥ पृथ्वीदेवसमुद्भवः समभवद्राजल्लदेवोसु (सु) तः

१४ शूरः सज्जनवांच्छि (छि) ता [र्थ] कलदः कल्पद्रुनः (मः) [श्री] फलः। सर्व्वेषामुचितोऽर्च्चने सुमनसा (सां) तीक्ष्णद्वि—

१५ षत्कंटकः पश्यत्कान्ततराङ्गना [कुम] दनो जाजल्लदेवो नृप ॥ ९ ॥ तस्यात्मजः सकल—

१६ मे (को) सलमण्डनश्रीः श्रीमान्समा [हृत] समस (स्त) नराधिप [श्रीः]। सर्व्वक्षितीश्वरसि (शि) रोविहितां—

१७ [ह्नि] पे (से) वः सेवाभृतान्निधिरसौ भुवि रत्न [देवः]॥ १० ॥ पृथ्वीदेवस्ततो जातः पोतः कंठीरवादिव

१८ सि (सि) हसंव (ह) नतो योऽरिकरियूथमपोथयत (त्) ॥ ११ ॥ तस्मादजायत जगव (त्र) यगीत—

द्वितीय पत्र

१९ तस्मात्त्र्यम्बकपादपद्ममधुपो जाजल्लदेवोऽभवद्वीराराततिनितम्बिनीमुखपयोज—

२० म्भोषधीशोदयः। लोके यस्य यशश्चयैर्द्धवलि [ते] रम्यां (रम्यं) शसां (शां) कोदयं म [त्वा] सप्तपयोधयो व—

२१ धिरे प्रो [त्फु] ल्लितं कैरवैः ॥ १२ ॥ यो वत्समार्गं [ब] दरघ्यवनाप्नवनी-

स्वंभुषिते गोत्रे । [सा] त (व) [प्र्लं] स्य वरिष्ठे

२२ जात : पुन्वीधरो विप्रः ॥ १३ ॥ तस्माद्दैवज्ञचूडामणिरखिलजनानंददसंदोहहे [तु :] पुत्रो दामोदरोभूत्तक—

२३ ल [गुण] निधिः पार्थिवाराधितांघ्रिः ॥ यः सा (शा) पानुग्रहाभ्यामपर इव सदा गोभिलः सामगायुमले (स्त) त्पुत्रो रा—

२४ घवाख्यः कविकुमुदमुदे जातवान्विप्रराजः ॥ १४ ॥ भारद्वाजां [गिरस] बार्हस्पत्य तृतीयकप्रवरे । भारद्वाजे

२५ गोत्रे महा [धनो] नाम विप्रोभूत् ॥ १५ ॥ महाधनेनाजनि पुन्य (ण्य) भाजा यदास (श) रः कैरवकुन्दकीर्तिः ॥ धुतेर्गृहं

२६ यो यश [सां] [निवा] सः सत्यास्पदं पुन्य (ण्य) निधानमासीत् ॥ १६ ॥ उद— [यगिरे] रिव [त] रणि [इं] व्धा] ब्धेश्चन्द्रमा यथा तद्व—

२७ त् ॥ पुत्रः पारास (श) रतः प्रख्यातो नामदेवाख्यः ॥ १७ ॥ ताभ्यां द्विजाभ्यां नृपवैरिनारीसीमन्तहारी रणरङ्गम—

२८ ल्लः ॥ जाजल्लदेवो [विधि] वद्बुधेराख्यं ददौ ग्राममदीनसत्व : (त्वः) ॥ १८ ॥ घोरमहाग्राहगृहीतमूर्त्तिर्जाजल्लदेवो नृप—

२९ तिर्ब्बभूव ॥ कृ [च्छे] ण मुक्तः समवाप्य राज्यं ग्रामं ददौ पुन्य (ण्य) दिने द्विजाभ्याम् ॥ १९ ॥ संखं (शंखो) भद्रासनं च्छत्रं (छत्रं) गजाश्व—

३० वरवाहनम् । भूमिदानस्य चि [ह्ला] नि फलं स्वर्गमनुत्तमं ॥ २० ॥ बहुभिर्व्वसुधा भुक्ता राजभिः सगरादि—

३१ भिः यस्य यस्य यदा भूमि [स्त] स्य तस्य तदा फलं ॥ २१ ॥ भू [मि] यः प्रतिगृह्णाति यस्तु भूमिं प्रयच्छति

३२ उभौ तौ पुण्यकर्म्माणौ नियतौ स्व [र्गं] गामि [नौ] ॥ २२ ॥ स्वदत्तां परदत्तां वा यो [ह] रेद्वसुंधरां । स विष्ठा—

३३ यां कृमिर्भूत्वा पितृभिः सह [म] ज्जति ॥ २३ ॥ हन्ति (न्ति) जातानु (न) जातांश्च भूम्य [र्थं] योनृतं वदेत् । स बद्धो

३४ वारु [णैः पाशैस्ति] र्यग्योन्यां तु जायते ॥ २४ ॥ द्विजाश्च [ना] वमन्तव्या [स्त्रं] लोक्यमि (स्थि) तिहेतवः

३५ दे [वत्पूज] नीयाश्च दानमानार्च्चनादिभिः ॥ [२५ ॥] वास्त [व्यवं] शकम— [ला] करचित्रभानुः शत्रुप्रवी—

३६ रनि [करें] धनचित्रभानुः । [श्री] व [त्सराज] तन [यः] खलु धर्म्मराजो

[बं] देरना [म] इह ताम्रमि (मि) दं लिलेख ॥

३७ ॥ २६ ॥ संवत ९१ [९] अघण [वदि] ५ सुक्र (शुक्रे) । [ज्यो] तिष्यी (षी) पंडितराघव: ॥ पुरोधा ठ । नामदेव: ॥

अनुवाद

सिद्धि । ओम् ब्रह्मा को नमस्कार । (श्लोक १–१० के अर्थ के लिये ऊपर लेख क्रमांक १७ देखिये) । उस (द्वितीय रत्नदेव) से (द्वितीय) पृथ्वीदेव हुआ जैसे सिंह से पीत; उस सिंह जैसे मजबूत शरीर वाले ने शत्रुरूपी हाथियों के मुण्ड को नष्ट कर डाला ।११। उससे शिव के चरण कमलों का भौंरा (द्वितीय) जाजल्लदेव हुआ जो शत्रु वीरों की पत्नियोंके मुख कमलों के लिये चन्द्रमा के उदय जैसा था; जिसके यश समूह से संसार के सफेद हो जाने से चन्द्रमा का उदय समझ कर सातों समुद्र बढ़ने लगे और कैरव फूल गये ।१२। जो ब्राह्मण पृथ्वीधर वत्स, भार्गव, च्यवन, आप्नवन और और्व (प्रवरों से) भूषित सावर्ण्य नामक उत्तम गोत्र में हुआ ।१३। उससे दामोदर पुत्र हुआ जो सभी गुणों का खजाना, ज्योतिषियों में श्रेष्ठ और सब लोगों को आनंद देने वाला था; उसके पैरों की आराधना राजा करते थे; वह शाप और अनग्रह (की शक्ति) द्वारा दूसरे गोभिल के समान था तथा साम गाने वालों में अग्रणी था । उसका बेटा राघव नामक विप्रराज कवि रूपी कुमदों की प्रसन्नता के लिये हुआ ।१४। भारद्वाज, आंगिरस और बार्हस्पत्य, इन तीन प्रवर वाले भारद्वाज गोत्र में महाधन ने कैरव और कुन्द के समान स्वच्छ कीर्ति वाले पाराशर को जन्म दिया जो धृति, यश, सत्य और पुण्य का घर था ।१६। जिस प्रकार उदयगिरि से सूर्य और क्षीरसागर से चन्द्रमा, उसी प्रकार पाराशर से नामदेव नामक पुत्र प्रख्यात है ।

उन दोनों ब्राह्मणों को, शत्रु राजाओं की स्त्रियों के सीमन्त को हरण कर लेने वाले महान् योद्धा और उदार चित्तवाले जाजल्लदेव ने विधिपूर्वक बुंदेरा नामक गांव दिया ।१८। वीरू नामक महाग्राह ने राजा जाजल्लदेव को पकड़ लिया, (उससे) कड़ी कठिनाई से मुक्त होकर राज्य प्राप्त कर दोनों ब्राह्मणों को शुभदिन में गांव दिया ।१९। (इसके आगे छह शापाशीर्वादात्मक श्लोक हैं) । वास्तव्य वंशरूपी कमल समूह के लिये सूर्य के समान, शत्रुवीरों के समूह रूपी ईंधन के लिये अग्नि के समान, जंडेरपति श्री वत्सराज के बेटे धर्मराज ने यहां यह ताम्र (लेख) लिखा ।२६।

संवत् ९१ [९] अघहण वदि ५, शुक्रवार । ज्योतिषी पंडित राघव । पुरोहित ठक्कुर नामदेव ।

२७. प्रतापमल्ल का बिलैगढ़ में प्राप्त ताम्रपत्रलेख : (कलचरि) संवत् ९६९

(चित्रफलक तेतालीस)

ये दोनों ताम्रपत्र रायपुर जिले में स्थित बिलैगढ़ से ५ किलोमीटर दूर बसे, पवनी

नामक गांव में प्राप्त हुये थे। चूंकि बिलैगढ़ के जमींदार ने इन्हें नागपुर संग्रहालय को प्रदान किया था जहां से ये इस संग्रहालय को स्थानान्तरित हुये हैं, इसलिये इनका प्राप्ति स्थान बिलैगढ़ ही प्रसिद्ध हो गया है। महामहोपाध्याय मिराशी ने बिलैगढ़ ताम्रपत्रों के नाम से ही इस लेख को कार्पस इंस्क्रिप्शनं इंडिकेरं, जिल्द चार (पृष्ठ ५४६–२४) में प्रकाशित किया है।

दोनों ताम्रपत्रों का वजन लगभग १४५५ ग्राम है। इनके साथ की मुद्रा और छल्ला दोनों ही प्राप्त नहीं हुये हैं। प्रत्येक ताम्रपत्र की चौड़ाई २७ से० मी० और ऊंचाई १८ से० मी० है। पहले पत्र पर १६ और दूसरे पर २२ पंक्तियां उत्कीर्ण हैं। लेख की लिपि नागरी है, इसमें ३० संस्कृत श्लोक हैं। सोलहवें श्लोक पर क्रमांक छूट जाने के कारण आगे के श्लोकों पर भी एक एक क्रमांक कम पड़ा है।

वंश के अन्य लेखों के समान इस लेख में भी प्रारंभ में कलचुरि वंश की वंशावली दी गई है किन्तु कमलराज का नाम छोड़ दिया है। (द्वितीय) पृथ्वीदेव के बाद (द्वितीय) जाजल्लदेव के स्थान पर उत्तराधिकारी के रूप में जगद्देव का उल्लेख किया गया है। जगद्देव के बाद (तृतीय) रत्नदेव और उसके बाद उसका बेटा प्रतापमल्ल राजा हुआ। यह दानपत्र इसी प्रतापमल्ल ने दिया था। इसमें बताया गया है कि उसने (कलचुरि) संवत् ९६६ में आषाढ़ी पूर्णिमा को चन्द्रग्रहण के अवसर पर तदनुसार २४ जून १२१८ ईस्वी में साकुल्ल गोत्र के हरिदास नामक ब्राह्मण को सिरला गांव दान में दिया था। बीसवें श्लोक में शैव आचार्य ईशानशिव का नामोल्लेख है। गौड़ वंश के प्रतिराज ने इस लेख को लिखा था।

मूलपाठ

पंक्ति प्रथम पत्र

१ सिद्धिः। ओं ब्रह्मणे नमः॥ निर्ग्गुणं व्यापकं नित्यं शिवं परमकारणं। भावग्राह्यं परं ज्योतिस्तस्मै सद्ब्रह्मणे नम :॥१॥

२ यदेतदप्रेसरमंबरस्य ज्योति : स पूषा पुरुष : पुराण :। अथास्य पुत्रो मनुराविराज-स्तदन्वयेभूद्भु–

३ वि कार्त्ति (र्त्त) वीय :॥२॥ तस्मान्न (च्च) कातिकीत्तें : सकलयुवधरा हैहया नेकस: (नेकशः) को जाता:। प्रत्य -

४ र्थ (र्थि) पृथ्वीपतिकरिहरयो मार्ग्गणे कल्पवृक्षा:। तद्वंशाच्चेदिदेशे कलचुरिरिति च स्या (ख्या) तिमीयुष्ण (ष्णं) रे -

५ श्च: यात: (जात:) कोकल्लदेवो नृपतिररिकुलक्ष्माभुजां धूमकेतुः॥३॥ अष्टाद-शारिकरिकुंभ–

६ विभर्न्नसिधा: (विभ्रङ्गसिहा:) पुत्रा बभूवुरतिशौर्यपराश्च तस्य। तत्राग्रजो नृपवर-स्त्रिपुरीश आसीत्पार्श्वे च मंड -

७ लप [तौ] न्न चकार बंधून् ॥४॥ तेषामनूजस्तु कलिंगराजः प्रतापवह्निप्रप्तारिराजः। या (आ) तोन्व -

८ ये दुष्टरिपुप्रवीरप्रियाननांभोरुहपार्व्वणेंदु ॥५॥ तेनाथ चंद्रवदनो ऽजनि रत्त (त्न) राजो विश्वोपका -

९ रकरुणार्ज्जितपुण्यभारः। येन स्वबाहुयुगनिर्म्मितविक्रमेण नीतं जस (यश) स्त्रि-भुवने विनिहत्य स (श)—

१० त्रून् ॥ ६ ॥ पृथ्वीदेवोभवत्तस्मान्नृपः शार्द्दूलविक्रमः। नखदर्पणसंक्रान्तनमन्नृपाल-मंडलः ॥७॥

११ अथ रुचिररुचिश्री (श्री) रास (श) यः सत्कलानामनुपहितकलंको ऽनर्घमूर्त्ति : सुवृत्तः। सकलगु -

१२ णसमूहः श्रीमतस्तस्य सूनुर्विधुरिव सुकृतानां धाम जाजल्लदेवः ॥८॥ रत्त (त्न) देवोभवत्तस्मादभूतो -

१३ पमविक्रमः। ज (य) स्त्वोडगङ्गनोकर्ण्णौ युधि चक्रे पराङमुखौ ॥९॥ ततोभूदासीमक्ष (क्षि) तिवलयवि -

१४ क्रा (कान्त) महिमा हिमानीवत्कान्तैर्य (र्ज) गदपि ज (य) सो (शो) भिर्द्धव-लयन् ।रणे क्रुद्धद्वेषि (षि) द्विपदलनदीक्षा -

१५ हरिसमः सुतः पृथ्वीदेवो दनुजदलनस्तस्य नृपते: ॥१०॥ प्रचंडाखंडभूपाल —

१६ युद्धकण्डूतिखंडन : । जगद्देवोभवत्तस्मान्नृपः शार्द्दूलविक्रम : ॥११॥ तत्पुत्रस्त्वि (त्रि) प्रकीर्तिः सकलकलचुरि -

द्वितीय पत्र

१७ क्ष्माभुजां भूषणश्रीः श्रीमानुत्फुल्लत (म) ल्लीनिकरनिभय (य) सो (शो) रासि (शि) भिर्व्याप्तविश्वः। आसीदासीमभू -

१८ मीवलयपरिवृढप्रौढदोःकांडलीलानिर्द्दूतासे (शे) षवैरिक्षितिपतिति (नि) वहो भूपती रत्नराजः ॥१२॥

१९ पुत्रस्तस्य यसो (शो) द्वि (ब्धि) लोललहरीनिर्द्दूतविम्बंडलो मूर्त्त्या निर्ज्जित-मन्मथस (स्स) मभवत् स्त्री (श्री) मत्प्रतापो नृपः। भूपा -

२० लार्ण्णवसो (शो) षणे मुनिरसौ क्ष्मापालचूडामणिर्दीने बंदिजने द्विजे गुणिगणे नित्यं हि चिन्तामणिः ॥१३॥

२१ मत्या महत्या महतीं महीस: (श:) प्रतापमल्लो जगद्दे (दे) कमल्ल:। पृथ्वीमपृथ्वी-
मकरोत्कराभ्यां बलेन वानोपि बलि -

२२ द्वितीय : ॥१४॥ प्रवरै: सांकृताङ्गिरसवानस्पत्यसंज्ञकं। संयुते सांकृते गोत्रे पंडितो
भृगुसंज्ञक: ॥१५॥ ब -

२३ भूव श्रुतिसंपन्न:। पुराणस्मृतिशास्त्रवित्। आचारमार्गनिरत: प्रियवाक् साधुसंमत:
॥१६॥ समुद्भूतस्तस्मा -

२४ च्छशधर इव क्षीरजलध (धे:) विबोवास : पुत्र: सकलगुणविज्ञाननिपुण:।
सदामात्यो विप्र: जनमपरका -

२५ नंदजनक : स्फुरत्कीर्तिर्लोके सकलनरपै : पू (स्पृ) ष्टचरण: ॥ १६ ॥ (॥१७॥)
तत्पुत्रो हरिदास उत्तममतिर्म्मान्य: सता -

२६ मग्रणी : सन्मार्गैकरतो विवेकवसति : विप्रेषु चूडामणि:। सा (शा) स्त्रार्थश्रु (श्रु)
तिधर्म्मनित्यनिरतो धर्म्मे (र्मे) कबुधि : (बुद्धि:) सदा

२७ लोकानां प्रियदर्शनो निशितधी: प्राप्त : प्रतिष्ठोदय: ॥१७॥ (॥१८॥) तस्मै प्रताप-
देवेन राजा संकल्पपूर्वक:। प्रदत्त:

२८ सिरलाग्राम आषाढ्यां सोमपर्व्वणि ॥१८॥ (॥१९) शैवाचार्यसि (शि) रोमणि :
कलियुगे दानैकचिन्तामनि: माणिकेश्वरपाद -

२९ पद्ममधुप: प्राज्ञो विवेकार (श) मि: (णी :।) अज्ञानांधत्त (त) मो विनाशत-
रणि: नूनं गुणानां खनि:। हन्त (न्तै) शानशिवो विवेक -

३० वसतिर्विद्वत्सु चूडामणि : ॥१९॥ (॥२०॥) संखं (शंखो) भद्रासनं च्छ (छ) त्रं
गजास्वं (श्वं) वरवाहनं। भूमिदानस्य चिह्नानि फलं स्वर्ग: पुरंदर ॥२०॥
(॥२१॥)

३१ बहुभिर्व्वसुधा दत्ता राजभि : सगरादिभि :। यस्य यस्य यदा भूमि तस्य तस्य तदा
फलं ॥२१॥ (॥२२) भूमि य : प्रतिगृह् णाति यस्तु भू—

३२ मीं (मिं) प्रयच्छति। उता (उभौ) तौ पुण्यकर्म्माणौ नियतो स्वर्गगामिनौ ॥२२॥
(॥२३॥) पूर्व्वदत्तां द्विजातिभ्यो यत्नाद्रक्ष पुरंदर : (र)। मही

३३ महीमतां सेष्ठ : (श्रेष्ठ) दानाच्छ्रेयो हि पालनम् ॥२३॥ (॥२४॥) स्वदत्तां पर-
दत्तां वा यौ (यो) हरेद्वसुंधरां। स विष्ठायां कृमिर्भू त्वा पितृ -

३४ भि: सह मज्जति ॥२४॥ (॥२५॥) तडागानां सहस्रेण वाजपेयस (श) तेन च।
गवांकोटिप्रदानेन भूमिहर्त्ता न सु (शु) ध्यति ॥२५॥ (॥२६॥) षष्ठि (ष्टिं)

३५ वर्षसहस्राणि स्वर्गे तिष्ठति भूमिद :। आच्छेता वा (चा) नुमन्ता च तान्येव नरके

वसेत् ॥२६॥ (॥२७॥) इष्टं वत्तं हुतं चैव यत्किञ्चित् ध-

३६ र्मसंचितं । अर्द्धाङ्गुलेन सीमायाः हरणेन प्रणस्य (श्य) ति ॥२७॥ (॥२८॥) यथाम्बु पतितं स (श) क्तैलबिन्दुवि (र्वि) सर्पति । एवं भूमिकृतं दानं स-

३७ स्य सस्य (सस्ये सस्ये) प्ररोहति ॥२८॥ (॥२६॥) स्वच्छास (श) यः परहिताचंपरः कुलि (ली) नो गौडान्वयोचितगुणैर्व्विदितो यथार्थम् । ताम्र (ताम्रं) द्विजा-

३८ तिचरणेषु निसर्गभक्त्या व्यक्ताक्षरैर्ल्लिखितवान् पतिराजसक्तः (प्रतिराजभक्तः) ॥२९॥ (॥३०॥) संवत् ९६९ [। ॐ]

अनुवाद

सिद्धि । ओम् ब्रह्मा को नमस्कार । (श्लोक १–२ के अर्थ के लिये लेख क्रमांक १७ देखिये) । इन्द्र की कीर्ति से भी अधिक कीर्तिवाले उस (कार्तवीर्य) से पृथ्वी पर सभी गुणसम्पन्न बहुत से हैहय हुये जो विपक्षी राजाओं रूपी हाथियों के लिये सिंह और याचकों के लिये कल्पवृक्ष थे; उस वंश में चेदि देश में होने वाले नृपति कलचुरि कहलाये; (उस वंश में) शत्रु राजाओं के कुलों के लिये धूमकेतु के समान कोकल्लदेव राजा हुआ ।३। (श्लोक ४ के अर्थ के लिये लेख क्रमांक १७ का पांचवा श्लोक देखिये) उनका छोटा भाई कलिंगराज हुआ जिसने अपने प्रताप की आग से शत्रु राजाओं को भस्म कर डाला, वह दुष्ट शत्रुओं के वीरों की स्त्रियों के मुख रूपी कमल के लिये पूर्णिमा का चन्द्रमा था ।५। उसने चंद्रमा के समान सुन्दर मुख वाला और विश्व भर पर उपकार करके पुण्य कमाने वाला रत्नराज पैदा किया जिसने अपनी दोनों भुजाओं से निर्मित विक्रम द्वारा शत्रुओं को मार कर तीनों लोक में अपना यश पहुंचाया ।६। उससे शार्दूल के समान विक्रम वाला राजा पृथ्वीदेव हुआ; उसके नखों रूपी दर्पण में प्रणाम करते हुये राजाओं का प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता था ।७। उस श्रीमान् राजा का बेटा जाजल्लदेव सभी गुणों का समूह और पुण्यकार्यों का ठिकाना था । वह चन्द्रमा के समान सुवृत्त, अनर्घमूर्ति और निष्कलंक रुचिर शोभावाला तथा अच्छी कलाओं का समूह था ।८। उससे अद्वितीय विक्रम वाला (द्वितीय) रत्नदेव हुआ जिसने युद्ध में चोडगंग और गोकर्ण को खदेड़ दिया था ।९। उसके बाद उस राजा के पृथ्वी के सम्पूर्ण मंडल पर अपनी महिमा फैलाने वाला बेटा (द्वितीय) पृथ्वीदेव हुआ जिसने हिमानी के समान कान्त यश से पृथ्वी को धवल कर दिया था, जो रण में क्रुद्ध शत्रुरूपी हाथियों को मारने के लिये सिंह के समान था (और) दुष्टों को नाश करने वाला था।१०।

उससे राजा जगद्देव हुआ; वह शार्दूल के समान शक्तिशाली और सभी प्रचण्ड राजाओं की युद्ध करने की खाज मिटाने वाला था ।११। विचित्रकीर्ति वाला श्रीमान (तृतीय) रत्नराज राजा उसका बेटा हुआ जो सभी कलचुरि राजाओं का शोभामय आभूषण था; जिसके फूली हुई मल्लिकाओं के समूह के समान स्वच्छ यश समूह से सारा विश्व व्याप्त था, जिसने सम्पूर्ण पृथ्वी

मंडल को जीत लेने वाले भुजदंडों की लीला से सभी शत्रु राजाओं को नष्ट कर दिया था ।१२। उसका बेटा श्रीमान् प्रताप हुआ जिसने अपने यश समुद्र की चंचल लहरों से दिशामंडल को धो दिया है, सुन्दरता से कामदेव को जीत लिया है, जो (शत्रु) राजाओं के समुद्र को सोखने के लिये (अगस्त्य) मुनि है, राजाओं का चूड़ामणि है, (और) दीनों, वंदिजनों, ब्राह्मणों और गुणवानों के लिये प्रतिदिन चिन्तामणि है ।१३। संसार में अद्वितीय मल्ल प्रतापमल्ल राजा ने–जो बालक होने पर भी बल में दूसरा बलि है– महान् बुद्धि और दोनों भुजाओं से पृथ्वी को हल्का कर दिया है ।१४।

सांकृत, आंगिरस और बार्हस्पत्य प्रवरों से युक्त सांकृत गोत्र में भृगु नामक पंडित।१५। श्रुतिसंपन्न, पुराण–स्मृति और शास्त्रों को जानने वाला, सदाचारी, प्रिय बोलने वाला (और) साधुओं द्वारा प्रतिष्ठित हुआ ।१६। उससे, समुद्र से चन्द्रमा के समान, समस्त गुणों और विज्ञान में निपुण दिवोदास नामक पुत्र हुआ। वह सदा अमात्य और विप्रजनों को आनंद देने वाला था, उसकी कीर्ति संसार में फैली थी (और) सभी नृपति उसके चरणों को छूते थे ।१७। उसका उत्तममति वाला बेटा हरिदास मान्य और सज्जनों में अगुवा था। वह सन्मार्गी, विवेकी और विप्रों में श्रेष्ठ था। धर्म में बुद्धि लगाकर शास्त्रार्थ, वेदाध्ययन और धर्माचरण में लगा रहता था, लोगों को आनंद देने वाला, तीक्ष्ण बुद्धि और प्रतिष्ठित था ।१८। उसे राजा प्रतापदेव ने संकल्पपूर्वक सिरला ग्राम आषाढ़ मास में चन्द्रग्रहण के समय दिया ।१९। शैव आचार्यों में शिरोमणि, कलियुग में भी दान देने में अद्वितीय चिन्तामणि, माणिक्येश्वर के चरणकमलों का भौंरा, विद्वान, विवेकियों में श्रेष्ठ, अज्ञानांधकार को नाश करने में सूर्य, गुणों की खान, ईशानशिव विद्वानों का चूड़ामणि हैं ।२०। (इसके बाद ६ श्लोक शापाशीर्वादात्मक हैं) भक्त प्रतिराज ने-जो स्वच्छ विचारों वाला है, परोपकारी है, कुलीन है, गौड़ कुल के लिये उचित गुणों से ठीक प्रसिद्ध है–ब्राह्मणों के चरणों में स्वाभाविक भक्ति होने के कारण स्पष्ट अक्षरों में (ये) ताम्र (पत्र) लिखे ।३०। संवत् ६६६

२८. बाहर का कोसगई में प्राप्त प्रथम शिलालेख
(चित्रफलक चवालीस)

लाल रंग के बलुवा पत्थर पर उत्कीर्ण यह लेख बिलासपुर जिले में छुरी से ७ किलो–मीटर पर स्थित कोसगई के किले में प्राप्त हुआ था। सब से पहिले मिस्टर बेग्लर ने आर्क–लाजिकल सर्वे रिपोर्टस, जिल्द सात (पृष्ठ २१४) में इसके संबंध में लिखा था। बाद में महा–महोपाध्याय वासुदेव विष्णु मिराशी ने कार्पस इंस्क्रिप्शनं इंडिकेरं, जिल्द चार (पृष्ठ ५५७-६३) में इसे प्रकाशित किया।

लेख अनेक स्थानों पर खण्डित है। पूरी शिला ही बीच से सीधी खण्डित हो गई हैजो ७६ से० मी चौड़ी और ४२ से० मी० ऊंची है।

प्रशस्ति नागरी लिपि में लिखे संस्कृत श्लोकों में रची गई है। प्रारंभ में गणेश, शिव और दुर्गा की स्तुति है। फिर चन्द्र वंश में उत्पन्न हैहय और कार्तवीर्य का वर्णन है। तत्पश्चात् सिंघण, मदनब्रह्मा, रामचन्द्र और उसके बेटे रत्नसेन का नामोल्लेख है। आगे बताया गया है कि रत्नसेन की रानी तुण्डायी से वाहरेन्द्र का जन्म हुआ। यह इतना वीर था कि उसने पठानों को सोन नदी तक खदेड़ दिया था यह दुर्गा का परम भक्त था और कार्तिक मास में एक लाख दीपक प्रज्वलित करता था। उसके कोसंगा के किले में अपार धनधान्य का संग्रह था।

राजा के गुणों का वर्णन करने के बाद उसके मंत्री माधव और पुरोहित देवदत्त त्रिपाठी का वर्णन है। अन्त में सूचित किया गया है कि बाहर राजा ने कर्णाटक से पधारे पंडित नागनाथ को दुर्गा की प्रशस्ति रचने के पुरस्कार स्वरूप एक हाथी भेंट किया था।

प्रस्तुत प्रशस्ति की रचना उपर्युक्त नागनाथ ने की थी। मोहन के बेटे रामदास ने इसे लिखा था और सूत्रधार मन्मथ के दो बेटों-छितकू और मण्डन-में से मण्डन ने इसे उत्कीर्ण किया था। इन लोगों के अलावा कायस्थ जगन्नाथ का भी नामोल्लेख है जो राजा का परम विश्वास-पात्र था।

इस लेख में तिथि नहीं दी गई है पर इसी के पीछे उत्कीर्ण दूसरे लेख में विक्रम संवत् १५७० पड़ा है। इससे विदित होता है कि वाहरेन्द्र ईस्वी पंद्रहवीं शती के अंतिम में और सोलहवीं शती के प्रारंभ में राज्य करता था। यह भी विदित होता है कि इस राजा के समय में कलचुरियों की राजधानी रत्नपुर से कोसंगा उठ आई थी जो वर्तमान कोसगई है।

मूलपाठ

पंक्ति

१ सिद्धिः ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ पार्व्वत्याः स्तनपर्व्व [ते] ⏑⏑ वताङ्कीकावली (ले) कीडतद्गुण्डादण्डकरण्डमण्डनमभूदम्भोनिधिस्तान्वय [: ❀]। सा भूमिस्त- कलारजोभववहो कुम्भस्थले निस्तले बालोप्येष निजा ⏑

२ तीमनुसरं लम्बोदरः पातु व [: ❀] ॥ १ ॥ आनन्दाम्बुधि – ⏑ – नयनयोराति [ञ्ज] ने दर्शयन्देव्या,से (स) स्मितमीक्षितस्स चकितन्नून्नोदया रागतः। भक्तानु- ग्रहकारणङ्क्षिमपि तस्येदम्परन्दैवतम्मायान्नः परमे [श्व]—

३ रस्स भगवानर्द्धेन्दुचूडामणिः ॥ २ ॥ या शश्वत्प्रवराभि [षु ❀] प्रतिदिनम्पूजा- विधानैश्शुभैरेकैकोत्तरवृद्धितः पशुगणैरन्नैरनेकैः फलैः। सन्तुष्टा जननी जगत्त्रयहिता सद्यः प्रसन्ना च सा दुर्गा बाहर [भू] प—

४ तेडिवरतरं पायादपायाज्जगत् ॥ ३ ॥ नीहारांशुरभूत्सुरा [सुर ※] गणैः क्षीरोदधे-र्म्मन्थनात्मन्दाराविसहोदरस्त्रिजगतीसन्तापनिर्व्वापकः । सद्वृत्तस्सकलः कलाभिरभि-तस्सम्मीलयन्देवतास्सर्वज्ञाभरणम्बभूव तदयं

५ सर्वज्ञचूडामणि: ॥ ४ ॥ तद्वंशेजनि हैहयः क्षितिप [तिर्मू ※] र्त्तः प्रतापानलस्तस्मा-दप्यनु भूमिपः कृतमतिः प्रद्युम्न एवापरः । प्रानम्राखिलभूमिपप्रविलसन्मौलीन्द्रनील-प्रभाभृङ्गश्रेणिनिषेवि—

६ तांघ्रिकमलः श्रीकार्त्तवीर्योर्ज्जुनः ॥ ५ ॥ ततस्सिङ्घण [भूपा] लो [डं] घीरस्त-दनंतरं । ततोपि मदनब्रह्मा रामचंद्रस्ततोभवत् ॥ ६ ॥ रत्नसेनस्ततो राजा रामचंद्रा [त्मजोभवत् ।] गुंण्डायी नाम तत्पत्नी गुणालङ्कार—

७ भासुरा ॥७॥ हरिश्चन्द्रः क्षितितलमितस्सत्यनि ⏑ – ⏑ – चारश्शूरः परपुरपु-रारातिरतुलः । कुमारः किम्म (न्मा) रः किमथ सह [दे] व [स्स] नकुलः कुमारस्तस्यासीदखिलरिपुहा वाहरनृप : ॥८॥ स -

८ न्त्यज्य स्वानि ठाणान्यहह भयभरभ्रान्तचित्ता : पठा [णा : ※] - रं शोणम्प्रपन्ना : प्रचलति सबले वाहरेन्द्रक्षितीन्द्रे । शङ्कातोन्ये निजासून्वसुगणमपरित्याज्यराज्य [ञ्च] हित्वा स्वर्गान्दुर्गं श्रयन्ते प्रति [भ] -

९ [ट] दलनोद्दण्डचण्डप्रतापा : ॥९॥ चित्रं रत्नपुरादभीत ⏑⏑ – – तेसम्बन्धन-ङ्कृत्वा स्वैरविहारिणो वनगजाना घारयं [: स्वेच्छया] । आनीय स्वपुरन्तत : कलियुगे कर्णं : प्रयच्छत्यसार्वाथिभ्य: ससुवर्णं -

१० र्कं नृपवर : श्रीवाहरक्ष्मापति : [॥ १० ॥] यस्सम्यक्प्रति [कार्त्तिक] म्प्रतिदिनं स्नात्वा ददात्यादराद्गोदानञ्च तत : शृणोति महितम्पुण्यम्पुराणादिकं । दीपानामपि लक्षमक्षयफलप्राप्त्यै प्रयच्छत्यसौ दुर्गा -

११ या निकटे महानयमत : श्रीवाहरक्ष्मापति : ॥११॥ यद्वा [हिन्यस्य] कोटिप्रखरखुर-पुटप्रोद्ध [ता] नेकधूलीमालोद्घा – ⏑ – – [प्यरि] सरिदभव [त्तो] रभाङ्-गीरपूरा । तत्राप्यासन्नपोत्का रणशिरसि हता : शत्रव : पुन –

१२ हीना यस्य [श्रीवाह] रेन्द्रक्षितिपतिरतुलस्सोयमास्ते महो [न्द्रः ॥] १२॥ कुर्वन्न-म्बुभृवामपान्निधिरिवातिथ्यं [सदं] वाञ्छितं नानाधान्यधनेन्धसंहतितृणस्तोमादि-संग्राहक : दुर्गं : स्वर्गं इवापर : क्षितितले

१३ साध्यो महा [नु] न्नत : – – – ⏑⏑ – ⏑ – विजयते श्रीवाहरक्ष्मा [पति :] ॥१३॥ पारावारो मुनीन्द्रार्वनिभवविभव – ⏑ – – ⏑ मानै : – – – – ⏑ वं वसुगणमखिलञ्चात्र संस्थाप्य दुर्गे कोलङ्गे नेकशृङ्गे सकलरि –

१४ पुगणं [सा] नभङ्गं प्र [मथ्य] – – – – ⏑ – – मयमपि परितस्सं भ्रमन्त-

म्भ्रमीति ॥१४॥ सिंहद्वारं कन्मंती [स्वं] ⏑ – – मावी जित्वा सिन्धु-ली-मौलौं।
येनानीता राज्यलक्ष्मी परेषामास्ते सोयम्माधवस्तस्य मन्त्री ॥

१५ सवलंब्यनिदेश – ⏑ – – ⏑⏑ – वाहरभूपतेरुदार:। [हुत] वानिह माधव-
प्रधान: कठिनान्त:करण: पठाणभूमि ॥ १६ ॥ येनानीतं स्वर्ण्णमुद्रं: पठाणाञ्जित्वा
युद्धे घातबोन्ये गजाश्वं। गावसंख्या –

१६ तीतसंख्या महिष्यस्सोयं मन्त्री माधवो [मा] त्यसिंह: ॥१७॥ [नाना] शास्त्रैर्नी-
तितस्तूत्मधर्म्मंन्बुध्वा सम्यग्बोधयत्वाहरेन्द्रम्। सर्व्वत्रायं सामवाद: पुरोधा
विद्वानास्ते देवद [त्त] स्त्रिपाठी ॥१८॥ शा [न्ता] य [क्तु] शा –

१७ लिने निजयशःस्तम्भाय सम्भाविने। कोसङ्गस्य व मा ⏑ – ⏑⏑⏑ – [दे]
व्याः प्रशस्तेः कृते। कर्ण्णाटागतनागनाथविबुधे श्रीवाहरक्ष्मापति: प्रावान्मतमतङ्ग-
भङ्गनिपुणम्मत्तेभमत्युन्नतम् ॥१९॥

१८ प्रशस्तिम्प्रशस्तामलेखीदुदा [रस्स] दा रामदासो मु [दा] – ⏑ – – [।]
⏑ – – व कायस्थवंशप्रसूत: सुतो मोहनस्य प्रसिद्धः पृथिव्याम् ॥२०॥ अस्ति
श्रीमाञ्जगन्नाथ: कायस्थकुलदीपक:। वाहरेन्द्र –

१९. स्य विश्वासभूमि [विश्वोपकारक:] ॥२१॥ वादाहववि – – ⏑ ⏑⏑⏑⏑
⏑ पण्डित: नागनाथ: सुधीरेनाम्प्रशस्तिमतनोन्मुदा ॥ २२ ॥ श्रीमन्मन्मथसूत्रधार-
तनयौ श्रीछीतकूमाण्डनावास्तां मानसदा –

२०. [य] कौ बहुगुणव्यापारपारङ्गमौ। कोकासान्वयस ⏑ – ⏑⏑⏑ – – –
क्रियापण्डितौ तेषां माण्डनसंज्ञकस्समसृजद्रम्यं प्रशस्त्यक्षरम ॥२३॥ सलाकसूत्रधार:
छितकू मांडनश्च लेखदास: [॥]

अनुवाद

सिद्धि। श्री गणेश को नमस्कार। पार्वती के स्तनपर्वत रूपी क्रीडाचल पर (गणेश) के खेलते समय समुद्र अपने कुल समेत सूंड रूपी (अलंकार) पेटी (में स्थित) अलंकार बन गया; विस्तृत कुंभस्थल का वह पूरा स्थान धूलविहीन हो गया। वे लम्बोदर आपकी रक्षा करें जो बालक होने पर भी अपनी मति का अनुसरण करते हैं।१। आधे चन्द्रमा को अपने चूड़ा का मणि बनाने वाले वे परमेश्वर भगवान हमारी रक्षा करें जो (पार्वती के) आलिंगन के समय यह दिखाते हुये कि उनकी आंखें आनंद के सागर में डूब रही हैं, नवविवाहित देवी (पार्वती) द्वारा प्रेम से लजीली और हंसती नजरों से देखे गये (और) जिन (शिव) को भक्तों पर अनुग्रह करने वाली यह (पार्वती) परम देवता (सी) हैं।२। वह दुर्गा संसार को चिरकाल तक संकट से बचाती रहे जो तीनों लोक का हित करने वाली, नवरात्रि में प्रतिदिन भव्य पूजाविधान (और)

अनेक प्रकार के अन्न, फल (और) (प्रतिदिन) एक एक अधिक पशुसमूह (की भेंट) से सन्तुष्ट होकर वाहर राजा पर तुरंत प्रसन्न हो गई ।३। देवताओं और दैत्यों ने क्षीर समुद्र का मन्थन किया तो मन्दार इत्यादि का सहोदर (और) तीनों लोक के सन्ताप को दूर करने वाला चन्द्रमा उत्पन्न हुआ । वह सम्पूर्ण रूप से गोल है (अपनी) कलाओं से देवताओं को अपने चारों ओर जमा करता है और सर्वज्ञ (शिव) का आभूषण-चूड़ामणि-बन गया है ।४।

उस (चन्द्रमा) के वंश में प्रताप की अग्नि का मूर्त रूप हैहय राजा हुआ । उसके बाद कृतवीर्य का बेटा अर्जुन वह बुद्धिमान राजा हुआ जो दूसरे प्रद्युम्न के समान था (और) जिसके चरणों की सेवा प्रणाम करते हुये सभी राजाओं के चमकते हुये मुकुटों में लगे इन्द्रनील (मणि) की प्रभा रूपी भौंरों की पंक्तियां करती थी ।५। उसके बाद सिंघण राजा और उसके बाद डंघीर (हुये) फिर मदनब्रह्म (और) उसके बाद रामचन्द्र हुआ ।६। रामचन्द्र का बेटा रत्नसेन हुआ, उसकी पत्नी गुण्डायी गुणों के अलंकारों से शोभित थी ।७। उसका सभी शत्रुओं को नष्ट करने वाला बेटा वाहर है । उसके सत्यवादी, उदार, शूर और शत्रुओं के नगरों को (नष्ट करने के लिये) अद्वितीय शंकर (सा) होने के कारण (लोग शंका करते हैं कि) यह हरिश्चन्द्र है कि पृथ्वीतल पर उतरा चन्द्रमा है कि कार्तिकेय है कि कामदेव है कि नकुल या सहदेव है ? ।८। अपनी सेना के साथ जब वाहर राजा प्रस्थान करता है (तो) वे पठान जिनका प्रताप प्रतिपक्षी भटों को नष्ट करने के लिये प्रचण्ड है, भयभीत होकर जल्दी से अपने पड़ाव छोड़कर शोण (नदी) तक भाग खड़े हुये । अन्य लोग (केवल) शंका के कारण ही अपने प्राण, धन और न छोड़ने लायक राज्य को छोड़कर स्वर्ग के किले में शरण लेते हैं ।९। आश्चर्य की बात है कि कलियुग का कर्ण वह श्रीवाहर राजा-जो राजाओं में श्रेष्ठ है, याचकों को सुवर्ण के साथ वे बनैले हाथी दे देता है जो स्वतंत्र घूमते थे, और जिन्हें (राजा द्वारा) पकड़ा जाकर......... उन्हें रत्नपुर से अपनी राजधानी लाया गया था ।१०। यह राजा श्रीवाहर इसलिये महान् है कि वह कार्तिक महीने में प्रतिदिन स्नान कर बड़े आदर के साथ गायों का दान करता है, फिर पुराण इत्यादि महान् पुण्य (ग्रन्थों) को सुनता है (और) अक्षय फल की प्राप्ति के लिये दुर्गा के सामने एक लाख दीपक भी जलाता है ।११। जिसकी सेना के करोड़ों घोड़ों की कड़ी टापों से उड़ने वाली धूल को देखकर......... बढ़ती हुई शत्रुरूपी नदी तट पर लौट गई; कुछ शत्रु युद्ध के लिये उतावले थे, वे पुत्रों समेत युद्ध में मारे गये, ऐसा वह श्री वाहरेन्द्र राजा पृथ्वी का अद्वितीय स्वामी है ।१२। वह श्री वाहरेन्द्र राजा विजयी है जिसका किला पृथ्वी पर दूसरे स्वर्ग के समान ऊंचा है, जिसमें तरह तरह के धान्य, धन, ईंधन और घास आदि का संग्रह है (और) जो समुद्र के समान मेघों का आतिथ्य करता रहता है ।१३। अनेक बुर्जों वाले इस कोसंगा के किले में............ सम्पूर्ण धन सुरक्षित रख कर......... और शत्रुओं के समूह को नष्ट कर......... यह (वाहरेन्द्र निश्चिन्त) फिरता है ।१४। उसका यह माधव नामक मंत्री है जिसने शत्रुओं की राज्यलक्ष्मी छीन कर यहां ला दी दे .... ।१५। वाहर राजा का आदेश

पाकर कठोर अंतःकरण वाले (किन्तु) उदार माधव मंत्री ने पठानों की भूमि छीन ली ।१६। अमात्यों में सिंह जैसा यह मंत्री माधव ऐसा है कि इसने पठानों को युद्ध में जीत कर सोना तथा अन्य धातुएं ऊंटों पर लादकर यहां ला दी हैं (तथा) हाथी, घोड़े, (और) संख्यातीत गायें और भैंसे ।१७। उसके विद्वान पुरोहित देवदत्त त्रिपाठी हैं जो सभी मामलों में शान्ति के हिमायती हैं, धर्म के सूक्ष्म तत्त्व को समझ कर (और) शास्त्र तथा नीति के अनुसार वाहरेन्द्र को सच्ची सलाह देते हैं ।१८। श्री वाहर राजा ने कर्णाटक से आये नागनाथ नामक विद्वान को-जो शान्त है, यशशाली है (और) अपने यश का स्तंभ है— देवी की प्रशस्ति रचने के (पुर-स्कार में) अत्यन्त उन्नत और मस्त हाथी दिया जो (दूसरे) मतवाले हाथियों को हराने में निपुण है ।१६।

(इस) सुन्दर प्रशस्ति को उस रामदास ने प्रसन्नतापूर्वक लिखा जो उदार है, कायस्थ वंश में जन्मा है और मोहन के बेटे के नाम से पृथ्वी पर प्रसिद्ध है ।२०। वाहरेन्द्र का विश्वास-पात्र (और) विश्व का उपकार करने वाला कायस्थ कुल का दीपक श्रीमान् जगन्नाथ है ।२१। वादयुद्ध में......... पण्डित नागनाथ विद्वान ने यह प्रशस्ति प्रसन्नता के साथ रची।२२।कोकास के वंश में......... श्रीमान सूत्रधार मन्मथ के बेटे श्री छीतकू और श्री माण्डन, दोनों अनेक गुणों में पारंगत और कलापंडित हैं । उनमें से माण्डन ने इस प्रशस्ति के सुन्दर अक्षर उत्कीर्ण किये ।२३।

छितकू सजाक सूत्रधार है और मांडन नम्र लेखक है।

२६. वाहर का कोसगई में प्राप्त द्वितीय शिलालेख (विक्रम) संवत् १५७०
(चित्रफलक पैंतालीस)

यह लेख उसी पत्थर की दूसरी बाजू पर उत्कीर्ण है जिस पर कि पूर्वोक्त लेख क्रमांक २८ उत्कीर्ण है । पूर्वोक्त लेख के समान इस लेख के संबंध में भी सबसे पहले मिस्टर बेगलर ने आर्केलाजिकल सर्वे रिपोर्टस, जिल्द सात में लिखा था । बाद में महामहोपाध्याय वासुदेव विष्णु मिराशी ने कार्पस इंस्क्रिप्शनं इंडिकेरं, जिल्द चार (पृष्ठ ५६३-६८) में इसे सम्पादित किया ।

प्रशस्ति महागणेश को नमस्कार करते हुये प्रारंभ होती है । प्रथम तीन श्लोकों में गणेश, अम्बिका और मुरारि की स्तुति है । उसके बाद बताया गया है लुण्डेल वंश में कर्णदेव हुआ, जिसके बेटे यश की बेटी धाटम्म को व्याही गई थी । इस यश ने अपने बेटे सौरीदास को धाटम्म के भरोसे छोड़कर और उसी प्रकार अपना धन भी उसे सौंपकर शत्रुओं पर आक्रमण किया जिसमें वह तेजनारायण के साथ मारा गया था ।

नौवें श्लोक में घाटम या घाटम्म की वंशावली प्रारंभ होती है जिसमें बताया गया है

कि चाहुहान (चौहान) वंश में निर्देवल था, उसका बेटा भरत और भरत का बेटा घाटम हुआ। राजा बाहर घाटम का सम्मान करते थे और उन्होंने उसे कोसंगा के किले का अधिकारी नियुक्त किया था। घाटम का मंत्री गोरख था जिसके बेटे का नाम वेजल था। अठारहवें श्लोक में सूचित किया गया है कि इस प्रशस्ति के रचयिता चन्द्राकर कवि को घाटम ने बछड़ों समेत गायें दान दी थी। प्रशस्ति का लेखक माण्डेक था और कोसुर के बेटे वीर ने इसे उत्कीर्ण किया था।

प्रशस्ति की चौदहवी पंक्ति में विक्रम संवत् १५७०, आश्विन वदि १३, सोमवार पढ़ा गया है तदनुसार यह प्रशस्ति २६ सितम्बर १५१३ ईस्वी को लिखी गई थी।

मूलपाठ

पंक्ति

१ [सिद्धि :] श्रीमा (म) हागणेशाय नम :॥ सिद्धिस्स्वर्गनिवासिनां नवमुखं – – ⏑ – – ⏑ – स्त्रैलोक्यस्थितसर्वविद्रुतकरे देवासुरे (रे :) संगरे। यन्नामस्मरणं बला ⏑⏑⏑ – – – ⏑ घं हेलया – – – ⏑⏑ – ⏑ – ⏑ सकल [स्व ❀] स्वामितावाप्त [ये] ॥ [१॥ ❀]

२ [जन] ककरतलस्थम्मोदकं देहि मह्यं न तनय तदिदं किन्तूरामाङ्कं द्विजाते :। इति विलपति विघ्नेशे च शर्व्वे स्मितास्ये (स्ये) भृशमहरहस्यात्कौतुकम्बोम्बिकायाः ॥२॥ अन्तर्गेहगतो रतो रतिरसाद्गोपाङ्गना (ना) लिङ्गनाद्गाढ – ⏑⏑

३ – ⏑ [तं] कुचयुगं धृत्वा चिब (ब) म्ब्याधरं॥ राधाया : सरसाङ्गभङ्गनवि-धेर्न्नालक्षित ⏑ – मातुः पातु सवम्मुरारिरिति मे हेमं फलं दीयतां ॥३॥ लूण्डेलवंस (श) प्रथितो न [रेन्द्र : ❀] – – सदा शू (शू) रिकृतप्रशंस : शिव : ⏑ – – ⏑ रणश्रुता नामा – ⏑ – –

४ ⏑⏑ कर्णदेव :॥४॥ तस्यात्मजो जगति विश्रुतपुन्यकीर्त्तिन्नाम (म्ना) [यशो] निखिलशिल्पमकारि येन। साम्र (म्र) द्रुमक्रमुकचम्पकनारिकेलरम्यं कदम्बवन ⏑⏑ – ⏑ पुण्यं ॥५॥ स स्वतनूजां गिरिजां हिमवानिव शंकराय सु ......।

५ ...... [गुणमतीं] पत्नीत्वेन श्रीघाटमाय संप्रददौ ॥६॥ सोयं सौरीवालनामं सुपुत्रं जामात्रे घाटम्मदेवाय दात्रे। संप्राप्यास्मै स स्वदेसं (शं) सकोशं पश्चात्पुत्रेनेप्सि [ता] न्योद्वुकाम :॥७॥ आसीत् श्रीणारिपक्षो द्विजगुरगुरुणो – ⏑ –

६ – कवक्ष : ख्यात : क्षीराब्धिजातापतिनिरतमतिस्तेजनारायणाख्य :। नानाशस्त्रास्त्र-पातं : परिहतसुतनुस्तिष्ठ तिष्ठेति जल्पन् शौर्य्येणाजौ जगामामलतनि [ता] वाञ्छिय

(ख्रि) तः स्वर्गमार्गं ॥८॥ प्रस्ति स्मा (स्वा) भृ (थि) तकल्पया (पा) दय (प) सम : [पृथ्वी ❀] –

७ [त] ले पण्डित : प्रोद्दोर्द्दण्डपराक्रमोऽमलसच्छ्रीवायुहानान्वय : । देवान्यमर (रा) च्चनाप्यंणपर : सद्राजपुत्र : पवित्रस्त्रस्तार्तिहर : कलक्षयकर:शी (श्री) देवनिर्देवल : ॥९॥ निखिलनयनिधान: क्षत्रियेषु प्रधान: सुरघरणिसु [राणां]

८ – ~ – – सुपात्र : समभवदवदातख्यातकीर्तिस्तदङ्गाभ्र (ङ्क) रत इति जगत्या- मुत्तमस्लो (श्लो) कसेवो ॥१०॥ सर्वस्वच्छनयो नयैकनिलयो येनैतवत्सुधु (च्छि) तं दुङ्गं (र्गं) स्वर्गसमं [च] सद्गु (ण) कृतं – – ~ प्रापो (प्यो) व्रि (जि) तं। श्रीमद्राहरभूभुजात्यनुगृहीतेनेय – – ~ –

९ – – – ~ – जना विजयिता सी (श्री) घाटमेनामुना ॥११॥ दानैर्यो बलिव- द्विशिष्टचरितैर्यो भोजवद्विक्रमप्रायो विक्रमकारिताभिरिह य : शीलैश्च य : सिन्धुवत् । र (रू) पैः:।स्मरवद्यशोभिरमलैर्यो रामचन्द्रोपि [च] – –

१० – ~ कुलाचलैककुलिश : स्री (श्री) घाटम : क्ष्मातले ॥१२॥ तस्यामात्यो नीतिवि– न्मन्त्रकर्ता शास्ता लोकानाममित्रप्रहर्ता । दि (वी) नोद्धर्तास्तिद श्रीगोरक्षनामा संप्रा [प्ता] ज्ञा नानानीतिप्रसु (सू) तं : ॥ [१३ ॥] वयो (चो) निर्भव्यामव्यं ज्ञापयन् [घा] टम्म –

११ ... पुत्र: पवित्र : श्रीमानास्ते वंजलो नामनाम्ना ॥१४॥ प्रशस्ति : [प्र] शस्ता प्रस (श) स्ताक्षरेणाखिलेयं ~ – – ~ – – ~ – – । पुरारातिभक्तेन कायस्थवंस (श) प्रवर्या [वतंसेन] मांडिकनाम्ना ॥१५॥ माख्डाजान्वयाम्भोजभानुपुञ्जोपम : [द्विज :]।

१२ ~ ~ – – ~ भक्तो जगत्सुव : ॥१६॥ चन्द्राकर : कविवर : स (स्व) द (दे) शादागत : ~ । [चक्रे] ~ – – ~ [घाटम्म] निदेशात : ॥१७॥ ददौ घाटम्मदेवोऽस्मै स ~ वसते । गा : सवत्सा : सुपयस : सवच्छ्रपदहाटका : ॥१८॥

१३ – ~ – ~ खेर शरदि द्विम्माघमासाद्वितीये रावे (?) धवलाख्यपक्षदशमीमिते (ते) वु (वु) धस्याह्नि । – – – ~ – ~ – ~ वरे कोसङ्गदुर्गस्य (स्व) रद्वारं कारितवा ~ – ~ – घाटम्मदेवोधुना ॥१९॥ यावत्स्वर्गमयो धृतामरचयो मेरुर्म्महीम –

१४ [ण्डले सूर्या] चन्द्रमसो (सौ) निरस्ततमसौ यावच्चरन्तौ दिवि । यावच्चांबुसु वासुदेवसतिर्यावच्च – – ~ – – – – ~ – ~ – ~ सहिता कीर्ति

[स्थिरं]–⏑–॥२०॥ [संवत्] १५७० विक्रमनामसंवत्सरे आश्विण (न) वदि १३ सोमे संप्रशस्ति लि [खि] ता

१५ .... नाइकलमया नाइकलवया नाइकलमया कोसुरपुत्रविर (रे) ण॥

अनुवाद

सिद्धि। श्री महागणेश को नमस्कार। जो स्वर्ग में निवास करने वालों की सिद्धि... ....तीनों लोक में स्थित प्राणियों को चिन्तित करने वाले देवासुर संग्राम में......... जिनका नाम स्मरण करने से.........(उन गणेश को)......सभी......स्वामित्व प्राप्त करने के लिये (नमस्कार है)। १। अम्बिका का वह कौतुक आपकी प्रतिदिन रक्षा करे—(गणेश ने-कहा) पिता के हाथ पर रखा हुआ मोदक मुझे दो (अम्बिका ने उत्तर दिया) बेटा वह मोदक नहीं है किन्तु ब्राह्मण का मस्तक है, इस पर विघ्नेश तो रोने लगे और रुद्र हंसने लगे। २। वे मुरारि आपकी रक्षा करें जो अन्तःपुर में घुसकर रति के रस और गोपांगना के गाढ़ आलिंगन से आनंदित हुये......राधा के दोनों कुच पकड़कर और उसके अधर को क्षत करके......... माता के सामने रोने लगे कि मुझे वह सोने का फल दो।

चन्देल वंश में कर्णदेव राजा प्रसिद्ध था............। ४। उसके यश नामक बेटे की पुण्यकीर्ति संसार में फैली थी और जिसने सम्पूर्ण शिल्प कदम्बवन तथा आम, सुपारी, चम्पा और नारियल के पेड़ों युक्त था। ५। उसने अपनी बेटी श्री घाटम को ब्याही जैसे हिमालय ने पार्वती शंकर के साथ। ६। वह (यश) उदार जामाता घाटम देव को सौरीदास नामक सुपुत्र और अपनी भूमि तथा धन सौंप देने के पश्चात शत्रुओं से युद्ध करने के लिये निकल पड़ा। ७। जिसने शत्रुओं के पक्ष को क्षीण कर दिया है, जो ब्राह्मण, देव, गुरु और गायों (की रक्षा करने में) दक्ष है, विष्णु का भक्त है, वह तेजनारायण विविध शस्त्रों से घायल होकर युद्ध में लड़ते हुये 'ठहरो ठहरो' इस प्रकार चिल्लाता हुआ स्वर्गमार्ग को चला गया क्योंकि स्वर्ग की सुन्दर देवियों ने उसे चाहा था।

निर्मल प्रकाशवान् चाहुहान (चौहान) कुल में श्री निर्दबल राजा हुआ जो अपने आश्रितजनों के लिये कल्पवृक्ष था; पृथ्वीतल पर पण्डित था, उसके भुजदण्ड का पराक्रम तेज था, वह देवताओं और ब्राह्मणों का भक्त था, पवित्र था, दुखियों का दुःख हरने वाला (और) दुष्टों का नाश करता था। ९। उसके अंश से भरत उत्पन्न हुआ जिसका यश पृथ्वी पर खूब फैला था, जो समस्त नीति का घर था, क्षत्रियों में प्रमुख था, देवों और ब्राह्मणों............ जिसकी कीर्ति शुद्ध और विख्यात थी, । १०। जिसकी नीति स्वच्छ थी (और) जो नीति का एकमात्र स्थान था.........उस विजयी श्री घाटम को स्वर्ग जैसे ऊंचे इस दुर्ग को देकर श्री बाहर राजा ने अनुगृहीत किया। ११। जो दान में बलि के समान है, विशिष्ट चरित्र में भोज

के समान है, पराक्रम के कार्यों में विक्रम जैसा है, शील में सिंधु, रूप में कामदेव, निर्मल यश में रामचन्द्र जैसा और (शत्रुरूपी) कुल पर्वतों के लिये वज्र जैसा है, वह श्री पाटम पृथ्वी पर (है) । १२ ।

उसका अमात्य गोरक्ष नामक है (वह) नीतिज्ञ है, मन्त्री है, लोगों का शासक है, शत्रुओं का नाश करने वाला है, दीनों का उद्धार करने वाला है और जिसकी नीति के फूल विभिन्न दिशाओं तक पहुंच चुके हैं । १३ । भव्य और अभव्य को वचनों द्वारा जताने वाला ......वैजल नामक पवित्र पुत्र है......। १४ । इस पूरी प्रशस्ति को अच्छे अक्षरों में कायस्थ वंश में उत्पन्न मांडेक नामक शंकर के भक्त ने लिखा है । १५ । ब्रह्मा का भक्त...... ...भारद्वाज कुल रूपी कमल के लिये, सूर्य की किरणों के समान ब्राह्मण....................। १६ ।

अपने देश से यहां आकर कवि चन्द्राकर ने पाटम की आज्ञा से (यह प्रशस्ति) रची । १७ । उसको पाटम देव ने खूब दूध देने वाली गायें, उनके बछड़ों और सोना-कपड़ों के साथ दीं । १८ ।

इस समय (वह) पाटम्मदेव.........जिसने कोसंगा किले का द्वार शरदऋतु के माघ महीने में शुक्ल पक्ष की दशमी बुधवार को बनवाया । १९ । जब तक पृथ्वीमण्डल पर देवताओं युक्त स्वर्ग जैसा मेरु है, जब तक अंधकार का नाश करने वाले सूर्य और चन्द्र आकाश में विचरण करते हैं, और जब तक वासुदेव समुद्र में निवास करते हैं तब तक यह कीर्ति चिरस्थायी हो । २० । संवत् १५७० विक्रम नाम संवत्सर में आश्विन बदि १३ सोमवार को प्रशस्ति कोसुर के बेटे वीर ने................(उत्कीर्ण की) ।

रायपुर के कलचुरियों के उत्कीर्ण लेख

३०. ब्रह्मदेव का रायपुर में प्राप्त शिलालेख : (विक्रम) संवत् १४५८

(चित्र फलक छयालीस)

भूरे रंग के बलुवा पत्थर पर उत्कीर्ण यह लेख रायपुर के पुराने किले की एक दीवाल में लगा हुआ पाया गया था। इसका विवरण सर रिचार्ड जेन्किन्स ने एशियाटिक रिसर्चेज, जिल्द पंद्रह (पृष्ठ ५०५) में, अलेक्जेण्डर कनिंघम ने आर्केलाजिकल सर्वे रिपोर्टस, जिल्द सत्रह (पृष्ठ ७७) में और डाक्टर किलहार्न ने इंडियन एण्टिक्वरी, जिल्द उन्नीस (पृष्ठ २६) तथा जिल्द बाईस (पृष्ठ ८३) में दिया था। और अन्त में महामहोपाध्याय वासुदेव मिराशी ने कार्पस इंस्क्रिप्शनं इंडिकेरं, जिल्द चार (पृष्ठ ५६६-५७५) में इसे सम्पादित कर प्रकाशित किया है।

लेखयुक्त शिलापट्ट ६५ से० मी० चौड़ा और ४७ से० मी० ऊंचा है। लेख नागरी लिपि में संस्कृत भाषा में लिखा गया है किन्तु बहुत ही अशुद्ध है। इसमें २३ श्लोकों के अलावा गद्यांश भी है। ध्यान देने की बात है कि ११ वां श्लोक गीतिका छन्द में है जो हिन्दी का छन्द है।

इस प्रशस्ति में रायपुर के कलचुरि राजा ब्रह्मदेव के राज्यकाल का उल्लेख है और बताया गया है कि उस समय नायक हाजिराज द्वारा रायपुर में हाटकेश्वर (महादेव) के मन्दिर का निर्माण कराया गया था।

लेख के प्रारंभ में गणेश, सरस्वती और गुरुओं को नमस्कार किया गया है। फिर आठ श्लोकों में विघ्नेश्वर, भारती, गुरु, शिव, गंगा और चन्द्रमा की स्तुति है। तत्पश्चात् बताया गया है कि फाल्गुन सुदि अष्टमी शुक्रवार के दिन (विक्रम) संवत् १४५८ तदनुसार शक संवत् १३२२ जिस दिन सर्वजित् नामक संवत्सर था, महाराजाधिराज श्रीमान् राय ब्रह्मदेव के राज्यकाल में जबकि उनके प्रधान (मन्त्री) ठाकुर त्रिपुरारिदेव और पंडित महादेव थे, तब नायक हाजिराजदेव ने रायपुर में हाटकेश्वर के मन्दिर का निर्माण कराया।

इसके आगे रायपुर नगर का वर्णन है। फिर राजा की वंशावली दी गई है जिससे ज्ञात होता है कि रायपुर में लक्ष्मीदेव राजा, उनका बेटा सिंघ और सिंघ का बेटा रामचन्द्र था। रामचन्द्र का बेटा ब्रह्मदेव हुआ।

१७ वें श्लोक में हाजिराज की वंशावली प्रारम्भ होती है। जान पड़ता है कि उसके

पिता का भी ब्रह्मदेव नाम था। हाजिराज के पद्मनाभ और पाहिदेव नामक दो बेटे थे। पद्मनाभ का बेटा कान्हड था और पाहिदेव के बेटे का नाम शिवशर्मा था। हाजिराज के दो भाई थे, सुपौ और ययाति। सुपौ के गोल्हू और विष्णुदास नामक दो बेटों का यहां नामोल्लेख है।

लेख में दी गई तिथि के अनुसार इस लेख के स्थापित होने का समय १० फरवरी १४०२ ईस्वी है। इसे सूत्रधार (सुतार) नामदेव ने उत्कीर्ण किया था।

मूलपाठ

पंक्ति

१ ॥ ओं सिद्धि (द्धिः) गणेशाय नमः ॥ सरस्वत्यै नमः गुरुभ्यो नमः ॥ विघ्नध्वान्त-
निवारनं (णै) कतरणिर्विघ्नाटवी—

२ ॥ हव्यवाटः (ड्) विघ्नव्यालकुले (ल) प्रमद (दि) गरुडो विघ्नेभपंचाण (न) नः [। ❀] विघ्नोत्तं (त्तुं) गगिरी (रि) प्रभेदनपवी (वि) [वि] घ्नाब्धिवडवो (विघ्नाब्धिवडवाग्नि) विघ्नो (घ्नौ)—

३ ॥ घौघघ (घोघघन) प्रचंडपवनोविघ्नेस्व (श्व) रः पातू (तु) वः ॥ १ । [। ❀] द्रुहिणवदनपद्मो राजहंसि (सी) व मु (मु) आ सकल व (क) लुपवलि (वल्ली) कंदकुद्दा (द्दा) लकल्या भ्रमरगण—

४ ॥ नतांह्रु (ह्रिः) [का] मधेनू (नुः) कवि (वी) नां दहतु कमलहस्ता भारति (ती) किल्बिषं वः ॥ २ । [। ❀] अज्ञानति (ति) मिरांधस्य ज्ञानांजनशलाकया चक्षु [रु ❀] न्मि (न्मी) लितं ये (ये) न

५ ॥ तस्मै श्रीगुरवे नमः [॥ ३ ॥ ❀] जयत्येकशराघातविदारितपुरत्रयं (यः) ॥ धनुर्धराणां धुर्ये वापिनाकि भुवण (भुवन) त्रयं ॥ [४ ॥ ❀] मौलौ मौक्ति (क्ति) कवि—

६ ॥ भ्रमा [: ❀] पुट्ट (पु) जलावलिषु मल्लि (ल्ली) निभा. कंठे हारविहारिणो-ञ्जलिपुटे पु (फु) ल (ल्ल) प्रसूनप्रभा [:]॥ भूमौ पातितपुष्पवृष्टिरचना तारा रविच्चाम्बरे (रवच्चाम्बरे) शंभोर्वं [: ❀] मु—

७ ॥ च (ज) ला भवंतु महतो गांगाः पयोबिंदवः ॥ [५ ॥ ❀] पातु वो सं (शं) भुमूर्ध्नोम्निजटाजूटोटजे स्थिता। तपस्विन्य वसितां गंगातिरमुपाश्रिता ॥ [६❀] जातिस्मरत्वं

८ ॥ त्रि (पु) ष्विपसित्वं सौभाग्यनावन्यमतिवक्ष्यं [।] शिव (वे) च भक्ति (क्तिं)

परमायुर्विद्या वा (च) दातु मे शंकर जन्मजन्मनि ॥ [७ ॥ ❀] जटाधरं खंड-शशांकशेखरं स—

९ ॥ दा महापन्नगवस्त्रकंकणं [। ❀] कपालमालासितभस्मभूल (ष) णं न पुन्य-हीनाः प्रणमंति शंकरं [॥ ८ ॥ ❀] स्वस्ति श्रीसंवतु १४५८ वर्षे साके

१० ॥ १३२२ समये सर्वजितनाम संवत्सरे फाल्गुन सुध अष्टमि सु (शु) के अद्येह रायपुरे महाराजाधिराजश्रीम—

११ ॥ रायब्रह्मदेवराज्ये प्रधानठाकुर त्रिपुरारिदेवः पंडितमहादेवः तस्मिं (मिन्) समय (ये) नायक श्री हाजिराजदेव (वेन) हट्टकेश्वरस्य प्रसाद (प्रासादः)

१२ ॥ कृतं (तः) नगरवर्णना [। ❀] यत्रेशदग्धवपुषो विषमायु (शु) गस्य संजीवनी-षधयः एव नितम्ब (म्ब) वत्यः । धन्यं सुधं (खं) जयति रायपुरे वशं (सन्)—

१३ ॥ ता चितौ (त्वच्चित्ते) कुव (बे) रनगरि (री) मवधि (धी) रयंति ॥ [९ ॥ ❀] रायपुर सु (शु) भस्थान (ने) लक्ष्मिदेव (लक्ष्मीदेव) महानृपः । तस्य पुत्रोभवे (भवत्) सिघ (सिंहः) क्षात्रधर्मेषु विश्रुतः ॥ [१० ॥ ❀] तत्पुत्रः मणि—

१४ ॥ गणघटितपटुतरगंडचुंबितकुंडल : शरदि समुदिततुहिनकरकरपुंजितद्विजमंडलः ॥ कलितरीपू (रिपु) कुलनिखिल—

१५ ॥ जगदुपकारश (सं) ततवैभवः । सुरश (स) कविवरविमलमतिधररामचन्द्र तनूभवः । [। ११ ॥ ❀] कालाकारकृपाणमंदरमहिम्नलोडितप्रोद्भू—

१६ ॥ टद्विड्ढा भग्नताम्हाम्बुराशिजनिता क्षौमोत्तरीयावृता । लीला तामर सलगंचितकरा त्यक्तान्यं संगातरा । वीरश्रीर्भुवि रायब्राह्मनृप—

१७ ॥ तेरत्वमुक्तंठति (तेरत्रैवमुत्कण्ठते) ॥ [१२ ॥ ❀] वंशावलिः । ब्रह्मदेवस्य पितरः कि नाम इति को वदे (वदेत्) ॥ ब्रह्मदेवस्य वंशस्य (श्च) महादेवेषु विश्रुतः । तस्य पु—

१८ ॥ त्रो भवे [द् ❀] हाजि धर्मशास्त्रविशारदः [॥ १३ ॥ ❀] समस्त सा (शा) स्त्रार्थविचार्यमेक (विचारएकः) सु (शु) त्यर्थशास्त्रा स्त्रवणेकशक्तः (शास्त्रश्रवणेक शक्तः) ॥ एवं प्रसिद्धोपि म—

१९ हीतलस्य श्रीमां विराजो भव [द्] हाजिराजः ॥ [१४ ॥] हाजिराजस्य कितॉयं (कीर्त्यर्थं) हटकेश्वरस्य कीत्तनं (कीर्तनं) । अद्भुतं न श्रुतं केन प्रशा—

२० ॥ इं अल्पंत्यधी ॥ [१५ ॥ ❀] शिवस्य च संध्याने तल्लीनो भव नित्यशः पुत्र-पौत्रे च संपतिर्हाजिराजे [न] लभ्यते ॥ [१६ ॥ ❀] हाजि—

२१ राजद्वयो पुत्रः पद्मनाभो महात्मनः । पद्मनस्य च पुत्रेषु कान्हडो नाम सन्मतः ।

[१७ ॥ ❀] शास्त्रेति (षु) वस [?] गुरुविप्रभक्तः प्राशा—

२२ ⌣ – – विसं पुनवित (पुर्व्यवित्तः) एतां गुनं वंभवसंजुतो च भुवि प्रतिषो स्थितः पाहिदेवः [१८ ॥ ❀] पाहिदेव यतः पूज्यशंकरपार्व्वतीप्रि—

२३ [यः ।] यत्प्रसादाभव (प्रसादादभूत्) पुत्र शिवसर्म्मेति नामतः ॥ [१९ ॥ ❀] हाजिराजद्वयो भ्राता ज्येष्ठो वं सुपो उच्यते तस्य तनुभवे गोल्ह वि—

२४ ⌣ दासः तथेव यः ॥ [२० ॥ ❀] तथेह गेयाति प्रभूतवित्त ⌣ – ल्मिकेगर्भसमु-द्भूवे च । पुन्या मनाश्च तथेवपेमा य सां [स्थि] तो वं भू (भु) वि

२५ हाजिराजः [॥ २१ ॥] य (इ) ति प्रशस्तिः समाप्तः (प्ता) देव [स्य] [पू] जकः ... [सू] त्रधा [रो] नाम नामदेवः मंडपघटितं (ता) [लीखितं] नमण सुभमस्तु सव्वंज [ग] [तः ।]

अनुवाद

ओम् । सिद्धि । गणेश को नमस्कार । सरस्वती को नमस्कार । गुरुओं को नमस्कार । वे गणेश जी आपकी रक्षा करें जो विघ्नरूपी अंधकार दूर करने के लिये एक ही सूर्य है; विघ्नरूपी अटवी को (जलाने वाले) अग्नि हैं, विघ्नरूपी सांपों के कुल को नष्ट करने वाले गरुड़ हैं, विघ्नरूपी हाथियों के लिये सिंह हैं, विघ्नरूपी ऊंचे पर्वतों को फोड़ डालने के लिये वज्र हैं, विघ्नों के समुद्र को सोखने के लिये वाडवाग्नि सदृश हैं, और विघ्नरूपी उग्र मेघों को (उड़ा देने के लिये) प्रचण्ड वायु हैं । १ । हाथ में कमल धारण करने वाली वह भारती आपके पाप को जला दे; जो ब्रह्मा के मुखकमल पर स्वच्छ राजहंसी जैसे लगती है, जो वह बालकन्या है जो पापों की सब बेलों की जड़ों को उखाड़ फेंकती है, जिसके आगे देवताओं के समूह मस्तक झुकाते हैं (और) जो कवियों के लिये कामधेनु है । २ । उन श्री गुरुओं को नमस्कार हो जिन्होंने ज्ञान रूपी अंजन की बत्ती के द्वारा अज्ञानांधकार से अंधे हो गये लोगों की आंखें खोल दी हैं । ३ । उन (शिवजी) की जय हो जिन्होंने एक बाण की मार से (ही) त्रिपुर का विनाश कर दिया, उन पिनाकी के लिये तीनों लोक भी क्या हैं जो उन्हें बाणों से घरे हैं । ४ । गंगाजल की बूंदें आपको सुख दें । जो कि शंभु के मस्तक पर मोतियों की शोभा धारण करती हैं, जो उनकी मोटी जटाओं पर मल्लिका फूल जैसे लगती हैं, जो उनके कण्ठ में हार के समान विहार करती हैं, जो उनके अंजलिपुट में प्रफुल्ल फूलों की कान्ति जैसी हैं, जो भूमि पर गिर कर पुष्पवृष्टि की रचना करती हैं और आकाश में (उड़कर) तारों के समान सुन्दर (हो जाती हैं) । ५ । वह चन्द्रकला आपकी रक्षा करे जो गंगा के किनारे शिव के मस्तक पर स्थित जटाजूट रूपी कुटी में तपस्विनी के समान रहती है । ६ । शंकर जी ये पांच वस्तुएं मुझे जन्म जन्म में दें; जातिस्मरण, पृथ्वी का आधिपत्य, सौभाग्ययुक्त बुद्धि, शिवभक्ति और परमार्थविद्या । ७ । पुण्यहीन लोग शंकर जी को प्रणाम नहीं करते, उन शंकर को जो जटाधारी

हैं, जिनके मस्तक पर चन्द्रकला हैं, जो सदा बड़े बड़े सांपों के वस्त्र और कंकण पहनते हैं, (और) जिनके आभूषण कपालमाला और सफेद राख है। ८।

स्वस्ति। श्री संवत् १४५८ वर्ष शक १३२२ में, सर्वजित् नामक संवत्सर में फाल्गुन सुदी अष्टमी शुक्रवार को आज यहां रायपुर में महाराजाधिराज श्रीमान राय ब्रह्मदेव के राज्य में (जबकि) ठाकुर त्रिपुरारिदेव प्रधान हैं (और) महादेव पंडित हैं—उस समय नायक हाजिराजदेव ने हट्टकेश्वर का मन्दिर बनवाया। नगर का वर्णन—

(इस) विजयी रायपुर में रहने वाली सुन्दर स्त्रियां जो कामदेव को जीवित करने के लिये स्वयं संजीवनी औषधियां हैं, यहां के सुखों के कारण कुबेर की नगरी (अलका) को मन में तुच्छ समझती हैं। ९। रायपुर शुभस्थान में लक्ष्मीदेव नामक बहुत बड़े राजा हुये। उनके बेटे सिंघ थे जो क्षात्रधर्म में विश्रुत थे। १०। उनके बेटे रामचन्द्र (थे) जिनके सुन्दर गाल, समान आकार के मणियों के समूह से बने कुण्डलों द्वारा चूमे जाते थे, जिनके (चारों-ओर) ब्राह्मणों का समुदाय इकट्ठा रहता था उसी प्रकार जैसे शरदकाल में उदित चन्द्रमा की किरणें पक्षिसमुदाय को एकत्र कर लेती हैं जिसका वैभव संसार के उपकार के लिये फैला हुआ है जिसमें शत्रुओं के कुल नष्ट हो चुके हैं और जो सुरस कवियों की विमल मति वाला है। ११। जिसने भयंकर कृपाण रूपी मंदर पर्वत से पृथ्वी को आलोड़ित कर योद्धाओं को उखाड़ फेंका है, जो तट को फोड़ देने वाले महासमुद्र रूपी क्षौम उत्तरीय (वस्त्र) धारण किये हैं, जिसके हाथ में सुन्दर कमलमाला शोभित है और जिसका मन अन्य (वीरों) से उचट गया है वह वीरश्री राजा ब्रह्मदेव के (पास जाने) के लिये यहां उत्कंठित हो रही है। १२। (हाजिराज की) वंशावली—

ब्रह्मदेव के पूर्वजों के क्या नाम थे, यह कौन बता सकता है और ब्रह्मदेव का वंश (तो) बड़े बड़े देव जानते हैं। उनके बेटे हाजिराज हुये (जो) धर्मशास्त्र में कुशल (हैं)। १३। समस्त शास्त्रों के अर्थ का विचार करने वाला तथा वेद और धर्मशास्त्रों के अर्थ को समझने वाला ऐसा पृथ्वी तल पर प्रसिद्ध श्रीमान् हाजिराज एक (ही) हुआ। १४। हाजिराज की कीर्ति बढ़ाने वाले हट्टकेश्वर का यह मन्दिर अद्भुत है, ऐसा (मन्दिर) पहले किसी ने नहीं देखा, लोग (ऐसा) कहते हैं। १५। शिव के ध्यान में लीन रहने के कारण हाजिराज ने पुत्र, पौत्र और संपत्ति प्राप्त की। १६। महात्मा हाजिराज के दो बेटे हुये (एक) पद्मनाभ।।पद्मनाभ के बेटों में कान्हड नामक लोकप्रिय है। १७। (हाजिराज का दूसरा बेटा) पाहिदेव शास्त्रों में दक्षता, गुरु और विप्रों में भक्ति, पुण्यचित, (आदि) इन गुणों और वैभव से सम्पन्न (होकर) पृथ्वी पर प्रसिद्ध है.........। १८। पूज्य शंकर और पार्वती को पाहिदेव प्रिय है जिनके प्रसाद से उसके शिवशर्मा नामक पुत्र हुआ। १९। हाजिराज के दो भाई हैं, जेठे का नाम सुपौ है; उसके बेटे गोल्ह और विष्णुदास हैं। २०। उसी प्रकार (उसका छोटा-

भाई) अम्बिका का बेटा गेयाति है; वह धनी है और हृदय से शुद्ध है, उसके प्रेम से हाजिराज पृथ्वी पर...प्रसिद्ध है। २१।

इस प्रकार प्रशस्ति समाप्त हुई। देवपूजक.........नामदेव नामक सूत्रधार ने मण्डप का निर्माण किया, नमरा ने प्रशस्ति लिखी, सर्व जगत् को शुभ हो।

३१. (हरि) ब्रह्मदेव का खलारी में प्राप्त शिलालेख : (विक्रम) संवत् १४७०

(चित्रफलक सैंतालीस)

लाल रंग के बलुआ पत्थर पर उत्कीर्ण यह लेख रायपुर से ७० किलोमीटर दूर स्थित खलारी नामक ग्राम के एक मंदिर के मंडप की दीवाल में लगा पाया गया था। इस की सर्व प्रथम सूचना जे० डी० वेग्लर ने आर्केलाजिकल सर्वे रिपोर्टस, जिल्द सात (पृष्ठ १५७) में दी थी। पश्चात् डाक्टर किलहार्न ने एपिग्राफिया इण्डिका, जिल्द दो (पृ० २२८ इत्यादि) और महामहोपाध्याय वासुदेव विष्णु मिराशी ने कार्पस इंस्क्रिप्शनं इंडिकेरं,जिल्द चार, (पृष्ठ ५७५–५७९) में इसे सम्पादित किया।

लेख युक्त शिलापट्ट की चौड़ाई ६१ से० मी० है किन्तु नीचे का भाग खाली पड़ा होने से लेखयुक्त भाग की ऊंचाई केवल ३० से० मी० ही है। लेख नागरी लिपि में संस्कृत भाषा में लिखा गया है। आदि और अंत के भाग को छोड़कर बाकी पूरा लेख पद्य में है जिसमें १२ श्लोक हैं।

प्रशस्ति कलचुरि वंश की रायपुर शाखा के राजा ब्रह्मदेव के समय में लिखी गई थी। इस का मुख्य विषय खल्वाटिका (वर्तमान खलारी, रायपुर जिला) में जसो के नाती, शिवदास के बेटे, मोची देवपाल द्वारा नारायण का मंदिर बनाये जाने की सूचना देता है। लेख के प्रारंभ में गणपति, भारती, और नारायण की वंदना है। फिर बताया गया है कि अहिहयों (हैहय) की कलचुरि नामक शाखा में राजा सिंघण हुये, उनके बेटे रामचन्द्र ने नागवंश के भोंडिंगदेव को युद्ध में घायल किया। रामचन्द्र के हरि ब्रह्मदेव नामक पुत्र हुआ जो चन्द्रचूड (शिव) का भक्त था।

सातवें और आठवें श्लोक में खल्वाटिका नगरी का वर्णन है। नौवें श्लोक में मोची देवपाल की वंशावली दी गई है और दसवें श्लोक में उसके द्वारा नारायण का मंदिर बनवाने का उल्लेख है। ग्यारहवें श्लोक में सूचित किया गया है कि इस प्रशस्ति की रचना दामोदर मिश्र ने की थी। बारहवें श्लोक से ज्ञात होता है कि श्रीवास्तव अन्वय के पंडित रामदास ने इस प्रशस्ति को स्वच्छ अक्षरों में लिखा। अन्त में, इसे उत्कीर्ण करने वाले सूत्रधार (सुतार) रत्नदेव का नामोल्लेख है।

लेख में (विक्रम) संवत् १४७०, शक संवत् १३३४, साठ वर्षों के चक्र में प्लव नाम

संवत्सर की माघ सुदि ६, शनिवार रोहणी नक्षत्र का उल्लेख है जो इस प्रशस्ति के लिखे जाने की तिथि है किन्तु डाक्टर किलहार्न और महामहोपाध्याय मिराशी के मतानुसार उपर्युक्त तिथि निर्दिष्ट संवत् में नहीं पड़ी थी। इसलिये गणित करने पर विक्रम संवत १४७१ और शक संवत् १३३६ ठीक जान पड़ता है। तदनुसार प्रस्तुत लेख १६ जनवरी १४१५ ईस्वी में लिखा गया था।

मूलपाठ

पंक्ति

१ ॥ ओं श्री गणपतये नमः। सकलदुरितहर्त्ताऽभीष्टसिद्धिप्रकर्त्ता निगमसमुपगीतः शेषय-ज्ञोपवीतः ललितमधुकरालीसे—

२ ॥ वितो गंडपालीतटभुवि गणराजः पातु वो विघ्नराजः ॥ १ ॥ वेदानाराध्य वेधाः पठति भगवतीं यामनायस्यचित्तः श्रीकण्ठस्यापि नार्द्धंरपहरति मनः

३ ॥ पार्व्वती किन्नरीभिः। हारा नारायणस्योरसि रहसि रणत्कंकणा पङ्कजाः स्युः सद्यः सत्काव्यसिद्ध्यै स्फुरतु कविमुखांभोरुहे भारती सा ॥ २ ॥ ब्रह्माद—

४ ॥ यो दिविषदः श्रुतिवाक्यदृष्ट्या ध्यायन्ति यं पुरुषमात्मविदोप्यमूर्त्तं। पापानि यत्स्मरणतो विलयं प्रयान्ति नारायणः स्फुरतु चेतसि सर्व्वदा वः [॥] ३ ॥ अहिह-

५ ॥ यनृपवंशे शंभुभक्तोवतीर्णः कलचुति (रि) रिति शाखां प्राप्य तीव्रप्रतापः। निज-भुजगुरुदर्पाद्यो ऽरिदुर्गाण्यनंसीद्रणभुवि दश चाष्टौ सिंहणश्रोणिपालः ॥

६ ॥ ४ ॥ अभवदवनिपालस्तत्सुतो रामदेवः समरशिरसि धीरो येन भोगिगदेवः। मणिरिव फणिवंशस्याऽहृतः कोपदृष्ट्या तरुणतरणितेजः पुंजराजत्प्रतापः ॥ ५ ॥

७ ॥ तत्पुत्रः शत्रुहंता जगति विजयते चंद्रचूडस्य भक्तः श्यामः कामाभिरामो मनसि मृगदृशामुद्भटानां कृतांतः। सर्व्वेषां याचकानां स्फुरदमरतरुर्व्वाक्पतिः पंडिता—

८ ॥ नां गीतज्ञानां द्वितीयो भरत इव नृपः श्री हरिब्रह्मदेवः ॥ ६ ॥ तत्राजधानी नगरी गरिष्ठा खल्वाटिका राजति वाटिकाभिः। सुरालया यत्र हिमालयाभा बिभर्त्ति

९ ॥ शृंगैरतिशुभ्रतुंगैः ॥ ७ ॥ भूदेवाः यत्र वेदाध्ययनमनुरताः स्वस्तिमंतो वसन्ति श्रीमंतः श्रीविलासैरमरपरिवृढं राजराजं हसंतः। कामिन्यः कामदेवं त्रिपुरहर—

१० ॥ दृशा दग्धमुज्जीवयंत्यः प्रोद्यद्दोर्मूलकांत्या स्मितमधुरगिरा भ्रूलताडंबरेण ॥ ८ ॥ मोची तत्रेन्दुरोचीरुचिरतरयशाः कर्म्मनिर्म्माणदक्षः सौजन्या—

११ ॥ दग्रजन्मानुचर इव जसौनामधेयस्य पौत्रः। नानाधर्म्माभिलाषी गुणनिधि-शिवदासाभिधानस्य पुत्रः श्रीमन्नारायणस्य स्मरणविमलधी राजते

१२ ॥ देवपालः ॥ ९ ॥ नारायणस्यायतनं स्वशक्त्या भक्त्या महत्या सह मंडपेन। निर्म्मापितं तेन परत्र चात्र तस्मै हरिर्यच्छतु वांच्छितार्थं ॥ १० ॥ हरिचरणसरोजध्यान—

१३ ॥ पीयूषसिंधुप्रसरदलघुवेलास्फालकेलीरसेन। सरसकविजनानां निर्म्मितेयं प्रशस्तिर्म्मनसि रसविधात्री मिश्रदामोदरेण ॥ ११ ॥ वहति जगति गंगा याव—

१४ ॥ दादित्यपुत्र्या स्फुरति वियति तारामंडलाखण्डलेन। तरणिरमरलयच्छद्वना तावदेषा जयतु जयतु मोचीदेवपालस्य कीर्त्तिः ॥ १२ ॥ श्रीवास्तव्यान्वयेनैषा

१५ ॥ प्रशस्तिरमलाक्षरा। लिखिता रामदासेन पंडितायीश्वरेण च ॥ १३ ॥ स्वस्ति श्री संवत् १४७० वर्षे सा (शा) के १३३४ षष्ट्यब्दमध्ये प्लवनामसंवत्सरे माघसुदि ९

१६ ॥ शनिवासरे रोहिणीनक्षत्रे शुभमस्तु सर्व्वजगतः ॥ सूत्रधाररत्नदेवेन [उत्कीर्ण्णं ❀]

अनुवाद

ओम्। श्री गणपति को नमस्कार। विद्वानों के राजा गणराज आपकी रक्षा करें जो सब पापों को हरने वाले हैं, अभीष्ट की सिद्धि करने वाले हैं, जिनका वेदों में गुणगान किया गया है, जो शेष (नाग) का यज्ञोपवीत धारण करते हैं, और जिनके गण्डस्थल ललित भौंरों की पंक्ति द्वारा सेवित है।१। सत्काव्य की रचना के लिये भारती कवि के मुख रूपी कमल में प्रकट हो (वह) भगवती (भारती) जिसे ब्रह्मा वेदों की आराधना करके मन लगाकर पढ़ते हैं, किन्नरियों द्वारा जिसके उच्चारण करने से पार्वती श्रीकंठ (शंकर) के मन को (अपनी ओर) आकृष्ट करती हैं। (और) जिसकी खनखनाते कंकणों वाली भुजाएं नारायण की छाती पर एकान्त में पड़े हारों के (समान) हैं।२। वे नारायण आपके मन में सदा प्रकट हों जिनके स्मरण से पाप दूर भाग जाते हैं (और) आत्मज्ञाता ब्रह्मा इत्यादिक देव भी वेदवाक्यों के अनुसार जिस अमूर्त पुरुष का ध्यान करते हैं।३। अहिहय राजा के वंश में कलचुरि शाखा में शंभु का भक्त राजा सिंहण बड़ा प्रतापी हुआ जिसने अपनी भुजाओं के भारी बल से युद्धभूमि में शत्रुओं के अठारह किले जीते।४। उसका बेटा राजा रामदेव हुआ, वह रणभूमि में धीर था, उसने क्रुद्ध होकर उस भोणिगदेव को आहत कर दिया था जो नागवंश के मणि के समान था (और) दोपहर के सूर्य के तेजपुंज जैसे प्रताप वाला था।५। उसका बेटा श्री हरि ब्रह्मदेव संसार में विजयी है, और शत्रुओं को मारने वाला है, चंद्रचूड़ (शिव) का भक्त है, श्याम (वर्ण) है ; (फिर भी) मृग के समान सुन्दर आंखों वाली (स्त्रियों) के मन में कामदेव के समान प्यारा है। योद्धाओं के लिये यम (के समान) है, सभी याचकों के लिये प्रकाशमान् कल्पवृक्ष (के समान) है, पंडितों में वाक्पति है और गीतज्ञों में द्वितीय भरत के समान है।६। उसकी मुख्य

राजधानी खल्वाटिका नगरी वाटिकाओं से सुशोभित है, जहां देवालय अत्यन्त शुभ्र और ऊंचे शिखरों से हिमालय के समान शोभायमान हैं ।७। वहां वेदाध्ययन में लगे सुखी ब्राह्मण वास करते हैं, लक्ष्मी के विलास से धनी लोग देवताओं के राजा कुबेर की हंसी उड़ाते हैं (और) कामिनी स्त्रियां अपनी कांखों से उठती कांति, मुस्कराहट भरी मीठी बोली (और) भौंह रूपी लता के आडम्बर से (उस) कामदेव को पुनः जीवित करती हैं जो शिवजी की आंख से जल मरा था ।८।

वहां देवपाल नामक मोची है । (वह) गुणों के सागर शिवदास का बेटा (और) जसौ का नाती है ; चन्द्रमा के समान कान्तिवाला है, उसका यश अत्यन्त रुचिर है, वह अपने काम में दक्ष है, अपने सौजन्य से ब्राह्मणों का अनुचर जैसा है, विभिन्न धर्मकार्यों का अभिलाषी है (और) उसकी बुद्धि भगवान नारायण का स्मरण करते रहने से विमल हो गई है ।९। उसने अपनी शक्ति (के अनुसार) और महान भक्ति से नारायण का मंडपयुक्त मंदिर बनवाया । हरि उसे इस लोक और परलोक में इच्छित वस्तु दें ।१०। विष्णु के चरणकमलों के ध्यान रूपी अमृत सागर में उठने वाली बड़ी बड़ी लहरों के खेल में आनंद लेने वाले दामोदर मिश्र ने यह प्रशस्ति रची जो सरस कवि लोगों के मन में रस का निर्माण करने वाली है ।११। गंगा जब तक संसार में यमुना के साथ बहती है, आकाश में (जबतक) तारामंडल का स्वामी सूर्य चमकता है, तब तक (इस) देवमंदिर के बहाने मोची देवपाल की यह कीर्ति जीवित रहे ।१२। और श्रीवास्तव्य वंश के श्रेष्ठ पंडित रामदास ने यह प्रशस्ति स्वच्छ अक्षरों में लिखी ।१३।

स्वस्ति । श्री संवत् १४७० वर्ष शक (वर्ष) १३३४, साठ वर्ष के (चक्र) मध्य में प्लव नाम वर्ष में माघ सुदि ६ शनिवार, रोहिणी नक्षत्र में । सम्पूर्ण जगत को शुभ हो । सूत्रधार रत्नदेव ने (उत्कीर्ण किया) ।

काकरय के सोमवंशियों के उत्कीर्ण लेख

३२. भानुदेव का कांकेर में प्राप्त शिलालेख (शक) संवत् १२४२

(चित्रफलक अड़तालीस)

यह शिलालेख बस्तर जिले में स्थित कांकेर में प्राप्त हुआ था। वहां से यह हाल में ही संग्रहालय में लाया गया है। लेख रायबहादुर डाक्टर हीरालाल द्वारा एपिग्राफिया इण्डिका, जिल्द नौ (पृष्ठ १२३ इत्यादि) में प्रकाशित किया गया था।

लेखयुक्त पट्ट की चौड़ाई ५० सें० मी० और ऊंचाई ५० सें० मी० है। लेख की भाषा संस्कृत और लिपि नागरी है। इसमें १६ पंक्तियां और तदनुसार ८ श्लोक हैं। अंत में गद्य भाग में तिथि, लेखक और रचयिता का उल्लेख है।

प्रशस्ति में बताया गया है कि सोमवंश में सिंहराज नामक राजा हुआ, उसका बेटा व्याघ्र था। व्याघ्र से वोपदेव, वोपदेव से कृष्ण और कृष्ण से जैतराज हुआ। जैतराज काकैर (वर्तमान कांकेर) में राज्य करता था। वह बड़ा वीर था और अन्य राजा उसके चरणों की सेवा करते थे। जैतराज का बेटा सोमचन्द्र था और सोमचन्द्र का बेटा भानुदेव हुआ। इस राजा के समय में काकैर देश में सर्वत्र शान्ति थी और प्रजा धर्म कार्य में लगी रहती थी।

इसके बाद नायक वासुदेव के पूर्वजों के बारे में बताया गया है कि नायक दामोदर का बेटा नायक पोलू हुआ जिसका बेटा भीम बड़े सरल स्वभाव का था। भीम का बेटा वासुदेव राजा भानुदेव के नगर काकैर में हुआ। छठे श्लोक में वासुदेव के गुणों का वर्णन है।

सातवां श्लोक सूचित करता है कि वासुदेव ने शंकर जी के दो मंदिरों का निर्माण कराया जो मंडपों से शोभित थे और जिनके सामने (पुरतोमड) भवन तथा प्रवेश द्वार भी बनवाया गया था। वासुदेव ने तीसरा मंदिर क्षेत्रपाल का बनवाया और एक सरोवर तथा कोडक बांध भी बंधवाये थे। आठवें श्लोक में वासुदेव को इष्टापूर्तपर कहा गया है अर्थात् अपने इष्ट की पूर्ति के लिये वह यज्ञादि अनुष्ठान तथा कुयें, बावड़ी, मंदिर आदि बनवाने के धर्मकार्यों में लगा रहता था।

यह प्रशस्ति (शक) संवत् १२४२ में ज्येष्ठ वदी पंचमी को स्थापित की गई थी। उस समय रौद्र नामक वर्ष चल रहा था तदनुसार यह २७ या २८ मई १३२० ईस्वी में लिखी गई थी।। प्रशस्ति के लेखक शक्तिकुमार के नाम का उल्लेख अन्त में है।

स्पष्ट है कि काकैर वर्तमान कांकेर है।

मूलपाठ

पंक्ति

१ ओं सिद्धि: ॥ आसीद्वंशे हिमांशोर्म्महितगुणगणस्सिंहराड्वैरिसिंहस्तस्माद्व्याघ्रावनी-
शोभव—

२ दतुलयशा तेजसापास्तसूर्यः ॥ (१) जज्ञे सोपि स्ववीर्योचितनृपतिलकं वोपदेवं स
चैवं कृष्णा—

३ ख्यं वैरिराजव्रजदलनपरं विक्रमाक्रांतविश्वं । १ ॥ कांकेरेवनिपालमौलिमुकुटप्रोद्भूा-

४ सिहीरांकुरज्योतिर्द्योतितपादपंकजनतज्योतिप्रकाशा भुवि ॥ (१) संग्रामांगण-
वीरविक्र—

५ मगुणः श्री जैतराजोभवत्तस्माद्भू्त सत्प्रतापमहसः श्री सोमचन्द्रो नृपः ॥ २ ॥
तस्मात्श्री—

६ गुणसागरादभिनवस्सर्वांगवेवोज्वलः श्रीभानुर्धरणीघरः क्षितितले लब्धप्रतिष्ठोदयः

७ जागर्त्ति प्रतिपक्षपक्षदलनो भूपालचूडामणिर्यस्मिन्शासति लोक एव सुकृती
जागर्त्ति श—

८ श्वसनः ॥ ३ ॥ देशः पुण्यनिरीतिशाश्वतधनस्सत्कर्मनिष्ठाः द्विजाः स्वेष्टापूर्त्तपराः
प्रजाश्चि—

९ मपरं पौराः परं धार्म्मिकाः ॥ सभ्याः शास्त्रविचारधौतमनसो धर्म्मावतारे कलौ राज्यं
शास—

१० ति भानुदेवनृपतौ किं कि न लोकोत्तरं ॥ ४ ॥ वंशे नागदत्तोपजीवनजनस्फीते
भवन्ना—

११ यकः श्री दामोदरसूनुरुज्वलयशा पोलू प्रजानायकः । ख्यातस्तत्तनयः स्वभावसर—

१२ लो भीमाभिधस्तत्सुतो कांकेरे नृपभानुदेवनगरे श्रीवासुदेवोभवत् ॥५॥ स्तंभोयं [न]-

१३ गरस्य जातिजनतामध्यप्रभानायको विख्यातः किल भानुदेवनृपतेः पादांबुजाराधकः

१४ संग्रामांगणसादिवर्गपुरतः ख्यातप्रभावो महान्जागर्त्यं द्भू्तविक्रमो धृतिधरः श्रीवा—

१५ सुदेवो भुवि ॥ ६ ॥ देवश्रीजगन्नाथस्य कृतिना देवालयं कारितं पुण्यं मंडप-
शोभितं च

१६ पुरतोभद्रं प्रतोल्या सह । क्षेत्रेशस्य तथा सुरालयकरं स्फीतं तडागं तथा बंधं कौढिक-संज्ञकं

१७ बहुजलं दीर्घं तथा कारितं ॥ ७ ॥ इष्टापूर्तपरस्याशीतलत्कीर्तिप्रसिद्धचंद्रिका । वासुदे—

१८ वस्य विस्फारा स्विताचन्द्राकंतारकं ॥ ८ ॥ संवत् १२४२ रौद्रसंवत्सरे ज्येष्ठ वदि

१९ पंचम्यां । प्रशस्तिस्समारोपिता नायक वासुदेवेन ॥ लिखिता सक्तिकुमारेण ॥ शिवं ॥

अनुवाद

ओम् । सिद्धि । हिमांशु के वंश में गुण समूह से महान् सिंहराज था जो बैरियों के लिये सिंह था । उससे अतुल यश वाला (और) तेज में सूर्य से (भी) बढ़कर व्याघ्र राजा हुआ । उसने भी अपने पराक्रम के अनुरूप नृपश्रेष्ठ वोपदेव को जन्म दिया और उसी प्रकार उसने (भी) शत्रु राजाओं के समूह को दलने में समर्थ और (विक्रम) से विश्व को आक्रान्त करने वाले कृष्ण नामक (राजा) को जन्म दिया ।१। राजाओं के मस्तकों पर रखे मुकुटों में चमकते हीरों की किरणों की चमक से प्रकाशित (अपने) चरण कमलों के नखों की ज्योति से भूमि को प्रकाशित करने वाला (और) रणस्थल में वीरोचित शौर्य गुण वाला श्री जैतराज काकैर में हुआ । उस अद्भुत और महान प्रतापवाले से श्री सोमचन्द्र राजा हुआ ।२। लक्ष्मी और गुणों के सागर उस (सोमचन्द्र) से (जन्मे) सभी अंगों और वेष से उज्ज्वल नवीन (भानु के समान) श्री भानु राजा ने पृथ्वीतल पर प्रतिष्ठा और उन्नति (दोनों) प्राप्त कर लीं । (भानु राजा) शत्रुओं की सेना को नष्ट करने वाला है, राजाओं का चूड़ामणि है, जिससे शासन काल में यह संसार पुण्यवान और सद्वृत्ति है ।३। पुण्य और निरीति से देश शाश्वत धनसम्पन्न है, ब्राह्मण लोग अच्छे कार्यों में निष्ठावाले हैं, प्रजा अपने इष्ट की पूर्ति के लिये धार्मिक कार्यों में लगी है; अधिक क्या कहें, नगरवासी अत्यन्त धार्मिक हैं; सभासदों के मन शास्त्र विचार से निर्मल हैं । कलियुग में धर्मावतार भानुदेव राजा के राज्य में क्या क्या अलौकिक नहीं है ।४।

नागदल को जीविका देने वाले लोगों से भरे वंश में श्री दामोदर का बेटा उज्ज्वल यश वाला नायक पोलू हुआ जो प्रजा का नायक था । उसका स्वभाव से सरल बेटा भीम नाम से ज्ञात था, उस (भीम) का बेटा राजा भानुदेव के नगर काकैर मे श्री वासुदेव हुआ ।५। वह नगर का स्तंभ है, जाति और जनता के बीच प्रभावशील है, भानुदेवराजा के चरणकमलों का आराधक विख्यात है, रणस्थल में योद्धाओं के समक्ष उसका प्रभाव विख्यात है । वह अद्भुत विक्रमवाला, धैर्यवान्, महान श्री वासुदेव पृथ्वी पर है ।६। (उस) कृती ने मंडप की शोभायुक्त श्री शशिभूषण देव (शंकर) के दो मंदिर और प्रतोली के साथ पुरतोभद्र बनवाये । (और) उसी प्रकार क्षेत्रपाल

के मंदिर सहित बड़ा तालाब और कौड़िक नामक गहरा और विस्तृत बांध बंधवाये ।७। इष्टापूर्त (धर्मकार्य) करने वाले वासुदेव की सत्कीर्ति रूपी चांदनी, चन्द्र, सूर्य (और) तारकों की स्थिति पर्यंत छिटकी हुई रहे ।८।

संवत् १२४२ रौद्र संवत्सर में ज्येष्ठ वदि पंचमी को नायक वासुदेव ने प्रशस्ति स्थापित की। शक्तिकुमार ने (इसे) लिखा। शिव हो।

अन्य उत्कीर्ण लेख

३३. सिरपुर गंधेश्वर मन्दिर से प्राप्त शिलालेख

(चित्रफलक उन्चास)

यह शिलालेख सिरपुर (रायपुर जिला) के गंधेश्वर मन्दिर से महानदी के तट को जाने के लिये बनाये गये द्वार पर लगा हुआ पाया गया था और वहां से संग्रहालय लाया गया है। रायबहादुर डाक्टर हीरालाल ने इंस्क्रिप्शन्स इन सी० पी० एन्ड बरार, द्वितीय संस्करण (क्रमांक १८७) में सिरपुर नदी द्वार उत्कीर्णलेख के नाम से इसके संबंध में सूचना दी है।

लेख ७८ से० मी० चौड़े और ३१ से० मी० ऊंचे शिलापट्ट पर उत्कीर्ण है जिसका दायें ओर का उपरला और बायें ओर का निचला भाग खण्डित हो गया है। इसमें कुल चौदह पंक्तियां हैं किन्तु उनके बीच बीच में खण्डित हो जाने तथा घिस जाने के कारण सम्पूर्ण लेख का पढ़ा जाना कठिन है। लेख की लिपि नागरी और भाषा संस्कृत है। अक्षरों की बनावट के आधार पर तथा शिल्पी गोण्ण का उल्लेख होने से यह महाशिवगुप्त बालार्जुन के समय का जान पड़ता है क्योंकि इसी शिल्पी गोण्ण ने राजमाता वासटा का लक्ष्मण मन्दिर शिलालेख (ऊपर क्रमांक ६) भी उत्कीर्ण किया था।

इस लेख में देवनन्दि द्वारा दिये गये दान आदि का विवरण है।

३४. सिरपुर सुरंग टीले से प्राप्त शिलालेख

(चित्रफलक पचास)

यह शिलालेख सिरपुर के सुरंग टीले में प्राप्त हुआ था। इसका विवरण मेजर-जनरल कनिंघम ने आर्कलाजिकल सर्वे रिपोर्टस, जिल्द सत्रह (पृष्ठ २७) और रायबहादुर डाक्टर हीरालाल ने इंस्क्रिप्शन्स इन सी० पी० एण्ड बरार, द्वितीय संस्करण (क्रमांक १८६) में दिया है। इसकी चौड़ाई ६८ से० मी० और ऊंचाई ४० से० मी० है।

लेख में १६ पंक्तियां हैं, लिपि नागरी और भाषा संस्कृत है। किन्तु अधिक घिसा होने के कारण इसे सम्पूर्ण पढ़ सकना कठिन है। इसमें मगध के राजा सूर्यवर्मा का उल्लेख है जिसकी बेटी वासटा महाशिवगुप्त बालार्जुन की माता थी। नौवीं पंक्ति में महाशिवगुप्त का नाम मिलता है। इस लेख को शीलादित्य ने उत्कीर्ण किया था।

३५. बुद्धघोष का सिरपुर के निकट प्राप्त शिलालेख

(चित्रफलक इक्यावन (क))

यह खण्डित शिलालेख सिरपुर के निकटवर्ती जंगल में प्राप्त हुआ था। इसकी चौड़ाई ५२ से० मी० और ऊंचाई ४५ से० मी० है किन्तु दायें ओर का निचला भाग खण्डित हो गया है। लेख में कुल २६ पंक्तियां हैं जिनकी लिपि नागरी और भाषा संस्कृत है। लेख श्लोकबद्ध है किन्तु उन पर क्रमांक नहीं पड़े हैं। अक्षरों की बनावट के आधार पर यह सातवीं-आठवीं शती ईस्वी का जान पड़ता है।

यह प्रशस्ति सिरपुर के किसी बौद्ध विहार से संबंधित है क्योंकि इसमें जिनघोष और बुद्धघोष नामक आचार्यों के नामों का उल्लेख है तथा उनके गुणों का वर्णन है। प्रशस्ति के अन्तिम भाग से विदित होता है कि इन आचार्य को किन्हीं ग्रामों का दान दिया गया था।

३६. तरेंगा में प्राप्त शिलालेख

(चित्रफलक इक्यावन (ख))

यह लेख ५३ से० मी० ऊंचे और ४२ से० मी० चौड़े लाल बलुआ पत्थर पर उत्कीर्ण है जो रायपुर जिले के तरेंगा नाम ग्राम में एक मंदिर के निकट खुदाई करते समय प्राप्त हुआ था। लेख में 'श्रीविषमलोचन शिव' पढ़ा जाता है।

३७. सिरपुर में प्राप्त अत्यन्त घिसा लेख

४७ से० मी० ऊंचे और ५५ से० मी० चौड़े पत्थर पर उत्कीर्ण यह लेख सिरपुर में प्राप्त हुआ था किन्तु इतना अधिक घिस गया है कि किञ्चित् भी पढ़ा नहीं जा सकता।

३८. पाण्डुका में प्राप्त शिलालेख

३४ से० मी० चौड़े और २३ से० मी० ऊंचे शिलाखण्ड पर उत्कीर्ण इस लेख में कुछेक अक्षर मात्र ही बांचे जा सकते हैं जो बनावट के आधार पर सातवीं शती ईस्वी के जान पड़ते हैं। लेख किसी बड़े लेख का खण्डित भाग है।

३९. शिवदुर्ग का दुर्ग में प्राप्त शिलालेख

(चित्रफलक बावन)

यह शिलालेख संभवतः दुर्ग से इस संग्रहालय में लाया गया था। यहां ईस्वी सन्–१८८१–८२ में कनिंघम ने इसे देखा था। उन्होंने आर्कलाजिकल सर्वे रिपोर्टस, जिल्द सत्रह (फलक दो) में इस लेख की यथादृष्ट नकल प्रकाशित की थी। तत्पश्चात् रायबहादुर डाक्टर

हीरालाल ने इंस्क्रिप्शन्स इन सी० पी० एण्ड बरार (द्वितीय संस्करण, क्रमांक २३२) में दुर्ग शिलालेख के नाम से इसका विवरण दिया था।

लेख पीलापन लिये सफेद बलुआ पत्थर पर उत्कीर्ण है जिसकी चौड़ाई ९४ से० मी० और ऊंचाई ५४ से० मी० है। इसमें कुल १३ पंक्तियां हैं जिनमें से एक नीचे बड़े बड़े अक्षरों में अलग से लिखी गई है। लेख काफी खण्डित है और ऐसा लगता है कि इसका दायें ओर का लगभग एक चौथाई भाग लुप्त हो गया है।

प्रशस्ति नागरी लिपि में संस्कृत श्लोकों में लिखी गई है किन्तु वह बहुत अशुद्ध है। तिथि का उल्लेख न होने पर भी अक्षरों की बनावट के आधार पर इसे आठवीं शती ईस्वी का अनुमान किया जा सकता है। इसके प्रारंभ में नारायण और पुरुषोत्तम की वंदना है। तत्पश्चात् पंक्ति १ में शिवदेव नामक राजा का नामोल्लेख है। पंक्ति २ और ३ में विष्णु-मन्दिर के निर्माण संबंधी सूचना है। पंक्ति ५ में शिवपुर और शिवदुर्ग का उल्लेख है तथा पंक्ति ६ में जलकोइक नामक ग्राम का। आगे बताया गया है कि उपर्युक्त मन्दिर की परिरक्षा के लिये किक्किड्डा भोग में स्थित कोई ग्राम दान में दिया गया था। १२ वीं पंक्ति में देवनन्दि का नाम पढ़ा जाता है।

परिशिष्ट एक

क्षेत्रीय इतिहास से संबंधित अन्य उत्कीर्ण लेखों की संक्षिप्त सूची

मौर्यकालीन उत्कीर्णलेख

१ अशोक का रूपनाथ शिलालेख (फलक त्रेपन) : का० इं० इं०, जिल्द एक, पृष्ठ १६६ इत्यादि।

२ सुतनुका देवदासी का जोगीमढ़ा गुफालेख (फलक चौवन (क)) : इं० एं०, जिल्द चौंतीस, पृष्ठ १९७ इत्यादि।

सातवाहनकालीन उत्कीर्णलेख

१ कुमारवरदत्त का गुंजी-ऋषभतीर्थ शिलालेख (फलक चौवन (ख)) : एपि० इं० जिल्द सत्ताईस, पृष्ठ ४८ इत्यादि।

२ सेनापति श्रीधरवर्मा का एरण स्तंभलेख : का० इं० इं०, जिल्द चार, पृष्ठ ६०५ इत्यादि।

३ धुआंधार मूर्तिलेख : इन्स्क्रिप्शन्स इन सी० पी एण्ड बरार, द्वितीय संस्करण, क्रमांक ४५।

४ वासिष्ठिपुत्र शिवघोष का बघोरा शिलालेख : अप्रकाशित।

५ प्रजावती और भारद्वाजी का बूढ़ीखार मूर्तिलेख : प्रो० इं० हि० कां० १९५३।

वाकाटक-गुप्त कालीन उत्कीर्णलेख

१ समुद्रगुप्त का एरण शिलालेख : का० इं० इं०, जिल्द तीन, पृष्ठ १८ इत्यादि।

२ बुधगुप्त का एरण स्तंभलेख, गुप्त संवत् १६५ : पूर्वोक्त, पृष्ठ ८८ इत्यादि।

३ तोरमाण का एरण वाराहमूर्तिलेख : पूर्वोक्त, पृष्ठ १५८ इत्यादि।

४ गोपराज का एरण स्तंभ लेख, गुप्त संवत् १९१ : पूर्वोक्त, पृष्ठ ९१ इत्यादि।

५ द्वितीय प्रवरसेन वाकाटक का सिवनी ताम्रपत्रलेख : पूर्वोक्त, पृष्ठ २४३ इत्यादि।

६ द्वितीय प्रवरसेन वाकाटक का दुधिया ताम्रपत्रलेख : एपि० इं०, जिल्द तीन, पृष्ठ २५८ इत्यादि।

७ द्वितीय प्रवरसेन का तिरोडी ताम्र-पत्रलेख : पूर्वोक्त, जिल्द इक्कीस, पृष्ठ १६७ इत्यादि।

८ द्वितीय प्रवरसेन का पट्टण ताम्रपत्रलेख : पूर्वोक्त, जिल्द चौबीस, पृष्ठ ८१ इत्यादि।

९ द्वितीय प्रवरसेन का पांढुर्णा ताम्रपत्रलेख : वाकाटक नृपति आणि त्यांचा काल, पृष्ठ ३८८ इत्यादि।

१० द्वितीय पृथिवीषेण का बालाघाट ताम्रपत्रलेख: **एपि० इं०, जिल्द नौ, पृष्ठ २६७ इत्यादि।**

११ द्वितीय भीमसेन का आरंग ताम्रपत्रलेख, गुप्तसंवत् १८२ ? **पूर्वोक्त, जिल्द नौ, पृष्ठ ३४२ इत्यादि।**

१२ भरतबल का बम्हनी ताम्रपत्रलेख : **पूर्वोक्त, जिल्द सत्ताईस, पृष्ठ १३२ इत्यादि।**

नल वंश के उत्कीर्णलेख

१ अर्थपति का केसरीबेड़ ताम्रपत्रलेख : **पूर्वोक्त, जिल्द अट्ठाईस, पृष्ठ १२ इत्यादि।**

२ भवदत्तवर्मा का ऋद्धिपुर ताम्रपत्रलेख : **पूर्वोक्त, जिल्द उन्नीस, पृष्ठ १०२ इत्यादि।**

३ भवदत्तवर्मा का पोड़ागढ़ शिलालेख : **पूर्वोक्त, जिल्द इक्कीस, पृष्ठ १५३ इत्यादि।**

४ विलासतुंग का राजिम शिलालेख : **पूर्वोक्त, जिल्द छब्बीस, पृष्ठ ५४ इत्यादि।**

शरभपुरीय राजाओं के उत्कीर्णलेख

१ नरेन्द्र का पिपरदुला ताम्रपत्रलेख, राज्य वर्ष ३ : **इं० हि० क्वा०, जिल्द उन्नीस, पृष्ठ १३१ इत्यादि।**

२ जयराज का मल्लार ताम्रपत्रलेख, राज्य वर्ष ५ : **अप्रकाशित।**

३ जयराज का मल्लार ताम्रपत्रलेख, राज्य वर्ष ९ : **अप्रकाशित।**

४ सुदेवराज का सारंगढ़ ताम्रपत्रलेख; : **एपि० इं०, जिल्द नौ, पृष्ठ २८१ इत्यादि।**

५ सुदेवराज का सिरपुर ताम्रपत्रलेख, राज्य वर्ष ७ : **पूर्वोक्त, जिल्द इकतीस, पृष्ठ १०३ इत्यादि।**

६ सुदेवराज का कौआताल ताम्रपत्रलेख, राज्य वर्ष ७ : **पूर्वोक्त, जिल्द इकतीस, पृष्ठ ३१४ इत्यादि।**

७ सुदेवराज का रायपुर ताम्रपत्रलेख, राज्य वर्ष १० : **का० इं० इं०, जिल्द तीन, पृष्ठ १९७ इत्यादि।**

८ प्रवरराज का ठाकुरदिया ताम्रपत्रलेख, राज्य वर्ष ३ : **एपि० इं०, जिल्द बाईस, पृष्ठ १५ इत्यादि।**

९ व्याघ्रराज का मल्लार ताम्रपत्रलेख, राज्य वर्ष ४ (फलक पचपन, छप्पन, सत्तावन, (क)) : **'नवभारत' नागपुर, दीपावली विशेषांक १९६०।**

पाण्डु वंशी राजाओं के उत्कीर्णलेख

१ सामन्त इन्द्रराज का मगा ताम्रपत्रलेख ; **इंडियन आर्कलाजी १९५६-५७।**

२ ईशानदेव का खरोद शिलालेख : **प्रो० रि० आ० स० इ० वे० स०, १९०४, पृष्ठ ५४।**

३ तीवरदेव का राजिम ताम्रपत्रलेख, राज्य वर्ष ७ : का० इं० इं०, जिल्द तीन, पृष्ठ २९१ इत्यादि।

४ तीवरदेव का बलोदा ताम्रपत्रलेख, राज्य वर्ष ९ : एपि० इं०, जिल्द सात, पृष्ठ १०६ इत्यादि।

५ तीवरदेव का बोंडा ताम्रपत्रलेख : अप्रकाशित।

६ द्वितीय नन्न का अड़भार ताम्रपत्रलेख : एपि० इं०, जिल्द इकतीस, पृष्ठ २१९ इत्यादि।

७ महाशिवगुप्त बालार्जुन का बारदुला ताम्रपत्रलेख, राज्य वर्ष ९ : पूर्वोक्त, जिल्द सत्ताईस, पृष्ठ २८९ इत्यादि।

८ महाशिवगुप्त बालार्जुन का लोधिया ताम्रपत्रलेख, राज्यवर्ष ५७ : पूर्वोक्त, जिल्द सत्ताईस, पृष्ठ ३१९ इत्यादि।

९ महाशिवगुप्त बालार्जुन का बोंडा ताम्रपत्रलेख : अप्रकाशित।

१० महाशिवगुप्त बालार्जुन का सेनकपाट शिलालेख : एपि० इं०, जिल्द इकतीस, पृष्ठ ३१ इत्यादि।

११ महाशिवगुप्त बालार्जुन के समय का सिरपुर शिलालेख : पूर्वोक्त, जिल्द इकतीस, पृष्ठ १९७ इत्यादि।

१२ सिरपुर गंधेश्वर मंदिर में लगे शिलालेख : इंस्क्रिप्शन्स इन सी० पी० एण्ड बरार, द्वितीय संस्करण, क्रमांक १७३।

त्रिपुरी के कलचुरि राजाओं के उत्कीर्णलेख

१ प्रथम शंकरगण का मुरिया शिलालेख : एन० प्रा० आं० ओ० रि० इं०, जिल्द पैंतीस, पृष्ठ २० इत्यादि।

२ प्रथम शंकरगण का सागर शिलालेख : का० इं० इं०, जिल्द चार, पृष्ठ १७४ इत्यादि।

३ प्रथम शंकरगण का छोटी देवरी स्तंभलेख : पूर्वोक्त, पृष्ठ १७६ इत्यादि।

४ प्रथम लक्ष्मणराज का कारीतलाई शिलालेख, क०सं० ५९३ : पूर्वोक्त पृष्ठ १७८ इत्यादि।

५ प्रथम युवराजदेव के तीन बांधोगढ़ शिलालेख : पूर्वोक्त, पृष्ठ १८२-१८५।

६ प्रथम युवराजदेव का गोपालपुर शिलालेख : पूर्वोक्त, पृष्ठ १८५ इत्यादि।

७ द्वितीय लक्ष्मणराज के समय का कारीतलाई शिलालेख : एपि० इं०, जिल्द तेतीस, पृष्ठ १८६ इत्यादि।

८ द्वितीय लक्ष्मणराज का कारीतलाई शिलालेख : का० इं० इं०, जिल्द चार, पृष्ठ १८६ इत्यादि।

९ शबर का बड़गांव शिलालेख : का० इं० इं०, जिल्द चार, पृष्ठ १९५ इत्यादि।

१० प्रबोधशिव का चंद्रेह शिलालेख, क० सं० ७२४ : पूर्वोक्त, पृष्ठ १९८ इत्यादि।

११ तृतीय शंकरगण का जबलपुर शिलालेख : एन० ग्रा० भां० ओ० रि० इं०, जिल्द पैंतीस पृष्ठ २३ इत्यादि।

१२ द्वितीय युवराजदेव का बिलहरी शिलालेख : का० इं० इं०, जिल्द चार, पृष्ठ २०४ इत्यादि।

१३ द्वितीय कोकल्लदेव का गुर्गी शिलालेख : पूर्वोक्त, पृष्ठ २२४ इत्यादि।

१४ गांगेयदेव का मुकुंदपुर शिलालेख, क०सं० ७७२ : पूर्वोक्त, पृष्ठ २३४ इत्यादि।

१५ गांगेयदेव का पिआवन शिलालेख, क०सं० ७८९ : पूर्वोक्त, पृष्ठ ६३२ इत्यादि।

१६ कर्णदेव का बनारस ताम्रपत्रलेख, क० सं० ७९३ : पूर्वोक्त, पृष्ठ २३६ इत्यादि।

१७ कर्णदेव का पाइकोड़ स्तंभलेख : पूर्वोक्त, पृष्ठ २५० इत्यादि।

१८ कर्णदेव का गहरवा ताम्रपत्रलेख : पूर्वोक्त, पृष्ठ २५२ इत्यादि।

१९ कर्णदेव का रीवा शिलालेख, क०सं० ८०० : पूर्वोक्त, पृष्ठ २६३ इत्यादि।

२० कर्णदेव का सारनाथ शिलालेख, क०सं० ८१० : पूर्वोक्त, पृष्ठ २७५ इत्यादि।

२१ कर्णदेव का रीवा शिलालेख, क०सं० ८१२ : पूर्वोक्त, पृष्ठ २७५ इत्यादि।

२२ कर्णदेव का ब्रिटिश म्यूजियम ताम्रपत्रलेख : पूर्वोक्त, पृष्ठ २८५ इत्यादि।

२३ कर्णदेव का सिमरा शिलालेख : पूर्वोक्त, पृष्ठ २८८-२८९ इत्यादि।

२४ यशःकर्णदेव का खैरा ताम्रपत्र, क०सं० ८२३ : पूर्वोक्त, पृष्ठ २८९ इत्यादि।

२५ यशःकर्णदेव का जबलपुर ताम्रपत्रलेख : पूर्वोक्त, पृष्ठ २९९ इत्यादि।

२६ यशःकर्णदेव का जबलपुर ताम्रपत्रलेख, क० सं ५२९? : पूर्वोक्त, पृष्ठ ६३३ इत्यादि।

२७ गयाकर्णदेव का तेवर शिलालेख, क० सं० ९०२ : पूर्वोक्त, पृष्ठ ३०५ इत्यादि।

२८ गयाकर्णदेव का बहुरीबंद मूर्त्तिलेख : पूर्वोक्त, पृष्ठ ३०९ इत्यादि।

२९ नरसिंहदेव का भेड़ाघाट शिलालेख, क० सं० ९०७ : पूर्वोक्त, पृष्ठ ३१२ इत्यादि।

३० नरसिंहदेव का लालपहाड़ शिलालेख, क० सं० ९०९ : पूर्वोक्त, पृष्ठ ३२१।

३१ नरसिंहदेव का आल्हाघाट शिलालेख, वि० सं० १२१६ : पूर्वोक्त, पृष्ठ ३२२ इत्यादि।

३२ जयसिंहदेव का जबलपुर ताम्रपत्रलेख, क० सं० ९१८ : पूर्वोक्त, पृष्ठ ३२४ इत्यादि।

३३ जयसिंहदेव का जबलपुर शिलालेख, क० सं० ९२६ : पूर्वोक्त, पृष्ठ ३३१ इत्यादि।

३४ जयसिंहदेव का रीवा ताम्रपत्रलेख, क० सं० ९२६ : पूर्वोक्त, पृष्ठ ३४० इत्यादि।

३५ जयसिंहदेव का तेवर शिलालेख, क० सं० ९२८ : पूर्वोक्त, पृष्ठ ३४४ इत्यादि।

३६ जयसिंहदेव का करनबेल शिलालेख : का० ई० इं०, जिल्द चार, पृष्ठ ६३६ इत्यादि ।

३७ विजयसिंहदेव का रीवा शिलालेख, क० सं० ९४४ : पूर्वोक्त, पृष्ठ ३४६ इत्यादि ।

३८ विजयसिंहदेव का रीवा ताम्रपत्रलेख, वि० सं० १२५३ : पूर्वोक्त, पृष्ठ ३५८ इत्यादि ।

३९ विजयसिंहदेव का भेड़ाघाट शिलालेख : पूर्वोक्त, पृष्ठ ३६३ इत्यादि ।

४० विजयसिंहदेव का रीवा शिलालेख, क० सं०९६× : पूर्वोक्त, पृष्ठ ३६५ इत्यादि ।

४१ विजयसिंहदेव का कुंभी ताम्रपत्रलेख, क० सं० ९३२ : पूर्वोक्त, पृष्ठ ६४५ इत्यादि ।

४२ विजयसिंहदेव का गोपालपुर शिलालेख : पूर्वोक्त, पृष्ठ ६५२ इत्यादि ।

रतनपुर के कलचुरि राजाओं के उत्कीर्णलेख

१ प्रथम पृथ्वीदेव का रायपुर ताम्रपत्रलेख, क० सं० ८२१ : पूर्वोक्त, पृष्ठ ३९८ इत्यादि ।

२ प्रथम जाजल्लदेव के चार पाली शिलालेख : पूर्वोक्त, पृष्ठ ४१७ इत्यादि ।

३ द्वितीय रत्नदेव का शिवरीनारायण ताम्रपत्रलेख, क० सं० ८७८ : पूर्वोक्त, पृष्ठ ४१९ इत्यादि ।

४ द्वितीय रत्नदेव का सरखों ताम्रपत्रलेख, क० सं० ८८० : पूर्वोक्त, पृष्ठ ४२३ इत्यादि ।

५ द्वितीय रत्नदेव का अकलतरा शिलालेख : पूर्वोक्त, पृष्ठ ४३० इत्यादि ।

६ द्वितीय रत्नदेव का पारगांव ताम्रपत्रलेख, क०सं० ८८५ : पूर्वोक्त, पृष्ठ ६२२ इत्यादि ।

७ द्वितीय पृथ्वीदेव का कुगदा शिलालेख, क०सं० ८९३ : पूर्वोक्त, पृष्ठ ४४६ इत्यादि ।

८ द्वितीय पृथ्वीदेव का राजिम शिलालेख, क०सं० ८९६ : पूर्वोक्त, पृष्ठ ४५० इत्यादि ।

९ द्वितीय पृथ्वीदेव का पारगांव ताम्रपत्रलेख, क० सं० ८९७ : पूर्वोक्त, पृष्ठ ६२६ इत्यादि ।

१० द्वितीय पृथ्वीदेव का कोनी शिलालेख. क०सं० ९०० : पूर्वोक्त, पृष्ठ ४६३ इत्यादि ।

११ द्वितीय पृथ्वीदेव का अमोदा ताम्रपत्रलेख, क०सं० ९०० : पूर्वोक्त, पृष्ठ ४७४ इत्यादि ।

१२ द्वितीय जाजल्लदेव का शिवरीनारायण शिलालेख : क०सं० ९१९ : पूर्वोक्त, पृष्ठ ५१९ इत्यादि ।

१३ तृतीय रत्नदेव का खरोद शिलालेख, क०सं० ९३३ : पूर्वोक्त, पृष्ठ ५३३ इत्यादि ।

१४ प्रतापमल्ल का पेंड्राबंध ताम्रपत्रलेख, क०सं० ९६५ : पूर्वोक्त, पृष्ठ ५४३ इत्यादि ।

१५ वाहर के दो रतनपुर शिलालेख, वि०सं० १५५२ : पूर्वोक्त, पृष्ठ ५५४ इत्यादि ।

रायपुर के कलचुरि राजाओं के उत्कीर्णलेख

१ अमरसिंहदेव का आरंग ताम्रपत्रलेख, वि० सं० १७९२ (फलक अट्ठावन) : इंस्क्रिप्शन्स इन

सी० पी एण्ड बरार, द्वितीय संस्करण, क्रमांक १८१।

नागवंशी राजाओं के उत्कीर्णलेख

१ जगदेकभूषण के समय का बारसुर शिलालेख : इंस्क्रिप्शन्स इन सी० पी० एण्ड बरार, द्वितीय संस्करण, क्रमांक २६६।

२ जगदेकभूषण के समय का पोटिनार शिलालेख : पूर्वोक्त, क्रमांक २७०।

३ जगदेकभूषण के समय का भैरमगढ़ शिलालेख : पूर्वोक्त, क्रमांक २८९।

४ दन्तेवाड़ा शिलालेख, श०सं० ९८४ : पूर्वोक्त, क्रमांक २८३।

५ मासकदेवी का दन्तेवाड़ा शिलालेख : पूर्वोक्त, क्रमांक २८४।

६ मधुरान्तकदेव का राजपुर ताम्रपत्रलेख, श० सं० ९८७ : एपि० इं०, जिल्द नौ, पृष्ठ १७४ इत्यादि।

७ धारण महादेवी का कुरुसपाल शिलालेख, श० सं० ९९१ : पूर्वोक्त, जिल्द दस, पृष्ठ ३१ इत्यादि।

८ सोमेश्वरदेव का कुरुसपाल शिलालेख, श० सं० १०१९ : पूर्वोक्त, जिल्द दस, पृष्ठ ३७–३८।

९ गंग महादेवी का बारसूर शिलालेख, श० सं० १०३० : पूर्वोक्त, जिल्द तीन, पृष्ठ १६४; जिल्द नौ, पृष्ठ १६२।

१० गुण्ड महादेवी का नारायनपाल शिलालेख, श० सं० १०३३ : पूर्वोक्त, जिल्द नौ, पृष्ठ ३११ इत्यादि।

११ सोमेश्वरदेव का कुरुसपाल शिलालेख : पूर्वोक्त, जिल्द दस, पृष्ठ २५ इत्यादि।

१२ नरसिंहदेव के समय का जतनपाल शिलालेख, श० सं० ११४० : पूर्वोक्त, जिल्द दस, पृष्ठ ४० इत्यादि।

१३ नरसिंहदेव के समय का दन्तेवाड़ा स्तंभलेख, श० सं० ११४७ : पूर्वोक्त, जिल्द दस, पृष्ठ ४०।

१४ हरिश्चन्द्रदेव के समय का टेमरा शिलालेख, श० सं० १२४६ : पूर्वोक्त, जिल्द दस, पृष्ठ ३९–४०।

१५ जयसिंहदेव के समय का सुनारपाल शिलालेख : पूर्वोक्त, जिल्द दस, पृष्ठ ३५–३६; जिल्द नौ, पृष्ठ १६३।

१६ मडुवा महल शिलालेख, वि० सं० १४०६ : इंस्क्रिप्शन्स इन सी० पी० एण्ड बरार, द्वितीय-संस्करण, क्रमांक ३०५।

कांकेर के सोमवंशी राजाओं के उत्कीर्णलेख

१ व्याघ्रराज का गुरूर स्तंभलेख : इंडियन एंटिक्वरी १९२६, पृष्ठ ४४।

२ कर्णराज का सिहावा शिलालेख, श० सं० ११९४ : एपि० इं०, जिल्द नौ, पृष्ठ १८२ इत्यादि।

३ पम्पराजदेव का तहनकापार ताम्रपत्रलेख, क० सं० ९६५ : का० इं० इं०, जिल्द चार, पृष्ठ ५९६ इत्यादि।

४ पम्पराजदेव का तहनकापार ताम्रपत्रलेख, क० सं० ९६६ : पूर्वोक्त, पृष्ठ ५९९ इत्यादि।

बस्तर के काकतीय राजाओं के उत्कीर्ण लेख

१ दिक्पालदेव का दन्तेवाड़ा शिलालेख, वि०सं० १७६० : एपि० इं०, जिल्द नौ, पृष्ठ १६५ इत्यादि और जिल्द बारह, पृ० २४२ इत्यादि।

२ दरयावदेव के डोंगर शिलालेख, वि० सं० १८३५ : पूर्वोक्त, जिल्द नौ, पृष्ठ १६६।

३. भैरमदेव का डोंगर शिलालेख, वि० सं० १९२८ : पूर्वोक्त, जिल्द नौ, पृष्ठ १६६।

गोंड राजाओं के उत्कीर्णलेख

१. दलपतशाह का गढ़ा ताम्रपत्रलेख (फलक सत्तावन (ख)) : प्रो० इं० हि० कां १९५९, पृष्ठ २६२-६३।

२ हिरदेशाह का रामनगर शिलालेख, वि० सं० १७२४ : इंस्क्रिप्शन्स इन सी० पी० एण्ड बरार, द्वितीय संस्करण, क्रमांक १२३।

भोंसले राजाओं के समय के उत्कीर्णलेख

१ रतनपुर कर्णार्जुनी मंदिर शिलालेख, वि० सं० १८१६ : पूर्वोक्त, क्रमांक २१५।

परिशिष्ट दो

क्षेत्रीय इतिहास से संबंधित महत्त्वपूर्ण सिक्कों के दफीनों की संक्षिप्त सूची[1]

आहत सिक्के

१ थापेवाड़ा (जिला बालाघाट) में ईस्वी सन् १८९३ में प्राप्त ९२ चांदी के सिक्के। ज० न्यू० सो० इं०, जिल्द उन्नीस, पृष्ठ १०८।

२ तारापुर (रायपुर जिला) में प्राप्त ९ से अधिक चांदी के सिक्के। ज० न्यू० सो० इं०, जिल्द उन्नीस, पृष्ठ १०८।

३ बार या बयर (रायगढ़ जिला) में ईस्वी सन् १९२१ में प्राप्त चांदी के सिक्के। यह दफीना सारंगढ़ के खजाने में जमा किया गया था किन्तु इसमें कितने सिक्के थे और अब वे कहां हैं, यह ज्ञात नहीं है। एपि० इं०, जिल्द सत्ताईस, पृ० ३१९।

४ अकलतरा (बिलासपुर जिला) में ईस्वी सन् १९२५ में प्राप्त २५३ चांदी के सिक्के। इनमें से ८५ सिक्के मापक सिक्के थे और २ उसी तौल के तांबे के सिक्के।

५ करछुला (जबलपुर जिला) में ईस्वी सन् १९०८ में प्राप्त ८० चांदी के, १५ तांबे के, और ३ पीतल के सिक्के।

६ बिलासपुर (जिला) में प्राप्त ९ से अधिक चांदी के सिक्के।

७ तेवर (जबलपुर जिला) में प्राप्त १ चांदी का, ६ तांबे के और २ मिश्रित धातु के सिक्के। ज० न्यू० सो० इं०, जिल्द सोलह, पृ० ५५ इत्यादि।

८ त्रिपुरी (जबलपुर जिला) की खुदाई में ईस्वी सन् १९५२ में प्राप्त १३ तांबे के सिक्के। ज० न्यू० सो० इं०, जिल्द सोलह, पृ० ६६ इत्यादि।

लेख विहीन ढलवां तथा ठप्पे से बनाये सिक्के

१ त्रिपुरी (जबलपुर जिला) की खुदाई में ईस्वी सन् १९५२ में प्राप्त १ तांबे का सिक्का जिसपर एक बाजू हाथी और दूसरे बाजू चैत्य बना है। ज० न्यू० सो० इं०, जिल्द सोलह, पृ० ६९।

२ करनबेल (जबलपुर जिला) में ईस्वी सन् १९५२ में प्राप्त २ से अधिक पीतल के गोल सिक्के। ज० न्यू० सो० इं०, जिल्द सोलह, पृ० ७२।

---

१. विस्तृत जानकारी के लिये देखिये, न्यूमिस्मेटिक नोट्स एण्ड मोनोग्राफ्स क्रमांक ५, इन्वेण्टरी आफ दि होर्डस एण्ड फाइंडस आफ क्वाइन्स एण्ड सील्स फ्राम मध्यप्रदेश (नागमोहम्मदन), न्यूमिस्मैटिक सोसाइटी आफ इण्डिया, वाराणसी, १९५७।

३ जमुनियां (होशंगाबाद जिला) में प्राप्त ३ तांबे के ढलवां सिक्के, १ कांसे का वर्गाकार सिक्का, १ कांसे का गोल ठप्पे से बनाया गया सिक्का और २ तांबे के ठप्पे से बनाये गये सिक्के। ज० न्यू० सो० इं०, जिल्द चौदह, पृष्ठ ५६ से ५८।

स्थानीय और नगर राज्यों के सिक्के

१ जमुनिया (होशंगाबाद जिला) में प्राप्त प्राचीन 'भागिला' नगर-राज्य के ५ तांबे के सिक्के। ज० न्यू० सो० इं०, जिल्द चौदह, पृ० ९ इत्यादि।

२ खिड़िया (होशंगाबाद जिला) में प्राप्त 'त्रिपुरी' नगर-राज्य का १ कांसे का सिक्का ज० न्यू० सो० इं०, जिल्द तेरह, पृ० ४० इत्यादि।

३ त्रिपुरी (जबलपुर जिला) की खुदाई में ईस्वी सन् १६५२ और १९५३ में प्राप्त 'त्रिपुरी' नगर-राज्य के १० तांबे के सिक्के। ज० न्यू० सो० इं०, जिल्द सोलह, पृष्ठ ६८।

४ तेवर (जबलपुर जिला) में प्राप्त 'त्रिपुरी' नगर-राज्य के तांबे के सिक्के जो जबलपुर की हीरालाल आर्कलाजिकल सोसायटी के संग्रह में हैं।

५ एरण (सागर जिला) में प्राप्त तांबे के बहुत से सिक्के जिन्हें मेजर जनरल कनिंघम ने संगृहीत किया था और जिनमें से बहुत से ब्रिटिश म्यूजियम में हैं। उनमें से एक सिक्के पर धर्मपाल नामक राजा का नाम और कुछ दूसरे सिक्कों पर एरण का प्राचीन नाम एरकण्य लिखा है। क्वा० ए० इं०, पृ० ९९-१०२; ब्रि० म्यू० कै० ए० इं०, पृष्ठ १४०-१४४।

६ बालपुर (बिलासपुर जिला) में प्राप्त २० से अधिक तांबे के सिक्के जिन पर एक ओर हाथी और दूसरे तरफ नाग या स्त्री की प्रतिमा है। ज० न्यू० सो० इं०, जिल्द नौ पृष्ठ ३१ इत्यादि।

७ बालाघाट (जिला) और छत्तीसगढ़ विभाग में प्राप्त उपर्युक्त प्रकार के ४७ से अधिक तांबे के सिक्के, जिनमें से ३५ नागपुर संग्रहालय में और १२ रायपुर संग्रहालय में हैं। ज० न्यू० सो० इं०, जिल्द उन्नीस, पृ० ७२-७३।

८ (बालाघाट जिला) में ईस्वी सन् १९५८ में प्राप्त तांबे के सिक्के।

भारतीय यवनों के सिक्के

१ बालाघाट (जिला) में प्राप्त ६ से अधिक तांबे के सिक्के जिनमें से एक मेनाण्डर या मिलिन्द का है।

सातवाहन कालीन सिक्के

१ जमुनियां (होशंगाबाद जिला) में प्राप्त 'श्री सात' का १ तांबे का सिक्का। ज०

न्यू० सो० इं०, जिल्द बारह, पृ० ९४ इत्यादि।

२ तेवर (जबलपुर जिला) में प्राप्त प्रथम सातकर्णि के २ शीशे के सिक्के। ज० न्यू० सो० इं०, जिल्द तेरह, पृ० ३५ इत्यादि।

३ भेड़ाघाट (जबलपुर जिला) में प्राप्त 'श्री सात' का १ कांसे का सिक्का। ज० न्यू० सो० इं०, जिल्द सोलह, पृ० ९५।

४ त्रिपुरी (जबलपुर जिला) की खुदाई में ईस्वी सन् १९५१ से १९५३ तक प्राप्त 'श्री सात' के ३ शीशे के सिक्के। ज० न्यू० सो० इं०, जिल्द सोलह, पृ० ७० और पदटिप्पणी २।

५ तेवर (जबलपुर जिला) में प्राप्त गौतमीपुत्र श्री यज्ञ सातकर्णि का १ चांदी का सिक्का। ज० न्यू० सो० इं०, जिल्द बारह, पृ० १२६ इत्यादि।

६ बालपुर (बिलासपुर जिला) में प्राप्त आपीलक का १ तांबे का सिक्का। न्यू० स०, सैंतालीस, लेख क्रमांक ३४४।

७ त्रिपुरी (जबलपुर जिला) की खुदाई में ईस्वी सन् १९५२ में ९ शीशे के सिक्के प्राप्त हुये थे जिनमें से एक पर तो "···यधन पढ़ा जाता है, अन्य के लेख पढ़े नहीं गये। ज० न्यू० सो० इं०, जिल्द सोलह, पृ० ६९–७०।

कुषाण राजाओं के सिक्के

१ हरदा (होशंगाबाद जिला) में प्राप्त हुविष्क और कनिष्क का १–१ सोने का सिक्का। ज० न्यू० सो० इं०, जिल्द सत्रह, पृ० १०६।

२ केंडा (बिलासपुर जिला) में ईस्वी सन् १९२२ में प्राप्त कनिष्क, हुविष्क आदि के २५ तांबे के सिक्के। ज० न्यू० सो० इं०, जिल्द सत्रह, पृ० १०९।

३ झाझपुरी (बिलासपुर जिला) में प्राप्त कनिष्क और हुविष्क के १५ से अधिक तांबे के सिक्के। ज० न्यू० सो० इं०, जिल्द सत्रह, पृ० १०९।

क्षत्रपों के सिक्के

१ सोनपुर (सिवनी जिला) में ईस्वी सन् १९२५ में प्राप्त प्रथम रुद्रसेन से लेकर स्वामी रुद्रसेन तक अनेक राजाओं के ६७० चांदी के सिक्के। न्यू० स०, सैंतालीस, लेख क्रमांक ३४५।

२ सिवनी (सिवनी जिला) में प्राप्त रुद्रसेन का १ चांदी का सिक्का। ज० न्यू० सो० इं०, जिल्द बारह, पृ० १६७–८।

३ केवलारी (सिवनी जिला) में प्राप्त द्वितीय रुद्रसेन, भर्तृदामा और रुद्रसिंह का १–१ सिक्का। ज० न्यू० सो० इं०, सोलह, पृ० २०७ इत्यादि।

गुप्त सम्राटों और उनके समकालीन राजवंशों के सिक्के

१ हरदा (होशंगाबाद जिला) में प्राप्त द्वितीय चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का १ सोने का सिक्का। ज० न्यू० सो० इं०, सत्रह, पृ० ११०।

२ सकौर (दमोह जिला) में ईस्वी सन् १९०९ में प्राप्त द्वितीय चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के ३ सोने के सिक्के। ज० न्यू० सो० इं०, सत्रह, पृ० ११०, १०३-४

३ गनेशपुर (जबलपुर जिला) में ईस्वी सन् १९१० में प्राप्त १ सोने का सिक्का। ज० न्यू० सो० इं०, जिल्द सत्रह, पृ० ११०।

४ सकौर (दमोह जिला) में ईस्वी सन् १९१४ में प्राप्त समुद्रगुप्त, काचगुप्त, द्वितीय चन्द्रगुप्त और स्कन्दगुप्त के कुल मिलाकर २४ सोने के सिक्के। ज० न्यू० सो० इं०, जिल्द सत्रह, पृ० ११०।

५ खैरताल (रायपुर जिला) में ईस्वी सन् १९४८ में प्राप्त महेन्द्रादित्य के ५४ सोने के सिक्के। ज० न्यू० सो० इं०, जिल्द दस, पृ० १३७ इत्यादि।

६ पितईबंद (रायपुर जिला) में ईस्वी सन् १९५८ में प्राप्त महेन्द्रादित्य और क्रमादित्य के ४९ सोने के सिक्के। 'नई दुनियां' इन्दौर-रायपुर-जबलपुर, दीपावली विशेषांक १९६०

७ सिरपुर (रायपुर जिला) की खुदाई में ईस्वी सन् १९५६ में प्राप्त प्रसन्नमात्र का १ सोने का सिक्का।

८ बालपुर (बिलासपुर जिला) में प्राप्त प्रसन्नमात्र के २ चांदी ? के सिक्के।

९ एडेंगा (बस्तर जिला) में ईस्वी सन् १९३९ में प्राप्त नल राजाओं -वराहराज, भवदत्त और अर्थपति- के ३३ सोने के सिक्के। ज० न्यू० सो० इं०, जिल्द एक, पृ० २९ इत्यादि।

त्रिपुरी और रत्नपुर के कलचुरि राजाओं के सिक्के

१ ईसुरपुर (सागर जिला) में ईस्वी सन् १९११ में प्राप्त गांगेयदेव के ८ सोने के सिक्के। न्यू० स०, सत्रह, लेख क्रमांक १०१।

२ बरेला (जबलपुर जिला) में ईस्वी सन् १९५४ में प्राप्त गांगेयदेव के १२६ सोने के सिक्के। ज० न्यू० सो० इं०, जिल्द अठारह, पृ० ११०-१११।

३ कारीतलाई (जबलपुर जिला) में ईस्वी सन् १९५८ में प्राप्त गांगेयदेव के २ सोने के सिक्के।

४ पूर्व सारंगढ़ राज्य में ईस्वी सन् १८९२ में प्राप्त रत्नपुर के कलचुरि राजाओं के ५६ सोने के सिक्के। प्रो० ए० सो० बं०, १८९३, पृ० ९२।

५ सोनसारी (बिलासपुर जिला) में ईस्वी सन् १६२१ में प्राप्त जाजल्लदेव, रत्नदेव और पृथ्वीदेव, तथा गोविन्दचन्द्र, गांगेयदेव और सोमेश्वर के कुल मिलाकर ६०० सोने के सिक्के। ज० आ० हि० रि० सो०, बारह, भाग ३, पृ० १७७–८; ज० न्यू० सो० इं०, जिल्द तीन, पृ० २७ इत्यादि और जिल्द सत्रह, भाग २, पृ० ५४ इत्यादि।

६ भगोंड़ (बिलासपुर जिला) में ईस्वी सन् १९४० में प्राप्त पृथ्वीदेव के १२ सोने के और ३ तांबे के सिक्के।

७ दलाल सिवनी (रायपुर जिला) में ईस्वी सन् १९४० में प्राप्त जाजल्लदेव, रत्नदेव और पृथ्वीदेव के १३६ सोने के सिक्के।

८ बालपुर (बिलासपुर जिला) में प्राप्त ३ चांदी के सिक्के। ज० न्यू० सो० इं०, जिल्द तीन, पृ० ४१–४२।

९ पूर्व खैरागढ़ राज्य में ईस्वी सन १९३९ में प्राप्त २०० से अधिक तांबे के सिक्के। ज० न्यू० सो० इं०, जिल्द तीन, पृ० २८, पदटिप्पणी ४३।

१० बालपुर (बिलासपुर जिला) में प्राप्त प्रतापमल्ल के १२ तांबे के सिक्के। इं० हि० क्वा०, तीन, मार्च १९२७।

११ धनपुर (बिलासपुर जिला) में ईस्वी सन् १९४५ में प्राप्त ३९०० के लगभग तांबे के सिक्के। ज० न्यू० सो० इं०, अठारह, पृ० १११–१२।

१२ सिरपुर (रायपुर जिला) की खुदाई में ईस्वी सन् १९५६ में प्राप्त १०४ तांबे के सिक्के।

अन्य राजवंशों के सिक्के

१ तेवर (जबलपुर जिला) में प्राप्त चन्देल वीरवर्मा का १ तांबे का सिक्का। ज० न्यू० सो० इं०, सोलह, पृ० २३६।

२ रायपुर (रायपुर जिला) में ईस्वी सन् १९०७ में प्राप्त अनन्तवर्मा चोडगंग के ३२ सोने के सिक्के।

३ बालपुर (बिलासपुर जिला) में प्राप्त ३ चांदी के और १ तांबे का चीनी सिक्का। ज० न्यू० सो० इं०, दस, पृ० १६१।

४ सिरपुर (रायपुर जिला) की खुदाई में ईस्वी सन् १९५६ में प्राप्त एक चीनी सिक्का।

५ मदनमहल (जबलपुर जिला) में ईस्वी सन् १९०८ में प्राप्त संग्रामशाह का सोने का सिक्का। आ० स० इं० ए० रि०, १९१३–१४, पृ० २५३–५५।

६ तामिया (छिंदवाड़ा जिला) में प्राप्त संग्रामशाह के ३ चांदी के सिक्के।

७ खुपारा (सिवनी जिला) में सन् १६२२ में प्राप्त संग्रामशाह के २ तांबे के सिक्के।

८ देवगढ़ (छिंदवाड़ा जिला) में सन् १९१९ में प्राप्त गोंड राजा जाटबा और कोकशाह के ४ तांबे के सिक्के।

९ बिलासपुर (जिला) में प्राप्त रोम का १ सोने का सिक्का।

१० बिलासपुर (जिला) में ईस्वी सन् १९११ में प्राप्त रोम के ३ सोने के सिक्के।

११ चकरबेड़ा (बिलासपुर जिला) में ईस्वी सन् १९४२ में प्राप्त रोम के २ सोने के सिक्के। ज० न्यू० सो० इ०, सात, पृ० ६ इत्यादि।

परिशिष्ट तीन

कुछ महत्त्वपूर्ण लेखों का मूलपाठ और अनुवाद
(जो संग्रहालय में नहीं हैं)

१. अशोक का रूपनाथ का प्रथम लघु शिलालेख
(चित्रफलक त्रेपन)

मूलपाठ

पंक्ति

१ देवानं पिये हेवं आहा सातिलेकानि अढतियानि वय सुमि पाका सबके नो चु बाढि पकते सातिलके चु छवछरे य सुमि हकं सघ उपते

२ बाढि चु पकते पि इमाय कालाय जंबुदिपसि अमिसा देवा हुसु ते दानि मिसा कटा पकमसि हि एस फले नो च ऐसा महतता पापोतवे खुदकेन हि क -

३ पि पकममिनेन सकिये पिपुले पि स्वगे आरोधवे एतिय अठाय च सावने कटे खुदका च उडाला च पकमंतु ति अता पि च जानंतु इयं पकल

४ किति चिरठितिके सियां इय हि अठे वढि वडिसिति विपुल च बडिसिति अपलधियेना दियढिय वडिसत इय च अठे पवतिसु लेखापेत वालत हय च अधि

५ सिलाठुभे सिलाठंभसि लाखापतवयत एतिना च वयजनेना यावतक तुपक अहाले सवर विवसेतवायुति व्युठेना सावने कटे २५६ स -

६ तविवासा त

अनुवाद

देवताओं के प्रिय ऐसा कहते हैं-ढ़ाई बरस से अधिक हुआ कि मैं उपासक हुआ पर मैंने अधिक उद्योग नहीं किया। किन्तु एक बरस से अधिक हुआ जब से मैं संघ में आया हूं तब से मैंने अच्छी तरह उद्योग किया है। इस बीच जंबूद्वीप में जो देवता अमिश्र थे वे मिश्र कर दिये गये हैं। यह उद्योग का फल है। यह (फल) केवल बड़े ही लोग पा सकें ऐसी बात नहीं है क्योंकि छोटे लोग भी उद्योग करें तो महान् स्वर्ग का सुख प्राप्त कर सकते हैं। इसलिये यह शासन लिखा गया कि छोटे और बड़े (सभी) उद्योग करें। मेरे पड़ोसी राजा भी इस शासन

को जानें और मेरा उद्योग चिरस्थित रहे। इस बात का विस्तार होगा और अच्छा विस्तार होगा ; कम से कम डेढ़ गुना विस्तार होगा। यह शासन यहां और दूर के प्रान्तों में पर्वतों की शिलाओं पर लिखा जावे। जहां कहीं शिलास्तंभ हों वहां यह शिलास्तंभ पर भी लिखा जावे। इस शासन के अनुसार जहां तक आप लोगों का अधिकार है वहां आप लोग सर्वत्र इसका प्रचार करें। यह शासन उस समय लिखा जब (मैं) प्रवास कर रहा था और अपने प्रवास के २५६ वें पड़ाव में था।

२. सुतनुका देवदासी का जोगीमड़ा शिलालेख

(चित्रफलक चौवन (क))

मूलपाठ

पंक्ति

१ सुतनुका
२ देवदाशिय
३ सुतनुका नाम देवदाशी
४ तं कामयिथ बालुणसुएये
५ देवदीन नाम लुपदखे

सुतनुका देवदासी के लिये — उसे देवदत्त नामक रूपदक्ष प्रेम करता है।

३. कुमारवरदत्त का गुंजी-ऋषभतीर्थ शिलालेख

(चिफत्रलक चौवन (ख))

मूलपाठ

पंक्ति

१ सिधं णमो भगवतो रं (रं) ओ कुमारवरदतसिरिस संवछरे पं [च] मे ५ हेमंत-पखे च [तु] थ ४ दिवसे [पंचद ❀] से १० ५ भगवतो उसभतिथे अमचस पर्ठात्रय थ [मे] न
२ गोडछस पतुकेण अमभ (च) स मतजुनपाल्तिस पु [ते] न अम [चे] न दंडना-यकेन बलाधिकतेन वासिठिपुतेन बोध [द] तेन [द] तं वससहसायुवधिणिके
३ [व ❀] [म्ह] ना [सं] गोसहसं १००० संवछरे तठे [छठे] ६ गिम्हपखे

छठे ६ दिवसे १० वितियं गोसहस्रं दतं १००० एतस [च] विभावना अमचेन दंडनायकेन दिनि [कन] ति (ति) केन

४ .... न इद [दे] वेन बम्हना [नं] गोहसंस य

अनुवाद

सिद्धम् । भगवान को नमस्कार। राजा श्रीकुमारवरदत्त के पांचवें संवत् में हेमन्त के चौथे पक्ष के पंद्रहवें दिन भगवान् के ऋषभतीर्थ में, पृथ्वी पर धर्म (के समान) अमात्य गोवछ के नाती, अमात्य मातृजनपालित और वासिष्ठी के बेटे अमात्य, दण्डनायक और बलाधिकृत् बोधदत्त ने हजार वर्ष तक आयु बढ़ाने के लिये ब्राह्मणों को एक हजार गायें दान कीं। छठे संवत् में ग्रीष्म के छठे पक्ष के दसवें दिन दुबारा एक हजार गायें दान की। यह देखकर दिनिक के नाती .... अमात्य (और) दण्डनायक इंद्रदेव ने ब्राह्मणों को एक हजार गायें दान में दीं।

४. व्याघ्रराज का मल्लार में प्राप्त ताम्रपत्रलेख : (राज्य) संवत् ४

(चित्रफलक पचपन, छप्पन, सत्तावन (क))

मूलपाठ

पंक्ति प्रथम पत्र

१ स्वस्ति [। ꣍] प्रसन्नपुरादुपवनवनराजिराजितादमरपुर -

२ कीर्तिविजयिन : प्रवरकामिनीनितम्बबिम्बाभिघात -

३ भिन्नाम्भसा च स्रोतस्वत्या निडिलया पवित्रीकृतादम -

४ रार्य्यकुलाम्बरशशिन : सकलकलाकलापनिलय -

५ स्य जिततमसो जननयनोत्सवस्य श्रीजयभट्टारकसू -

६ नो : श्रीप्रवरभट्टारकस्य प्रिथोरिव प्रिथुभुज -

द्वितीय पत्र; प्रथम बाजू

७ युगलबलाञ्जितोर्जितसकलमहीमण्डलमण्डन -

८ यशसो मनोरिव मनुजपतेरनुज : श्रीव्याघ्रराजदेवो

९ वर्त्तमानां (नान्) भविष्यतश्च ब्राह्मणां (णान्) सम्पूज्य राज्ञः सुमात्य -

१० राजपुरुषां (षान्) समाज्ञापयति विदितमस्तु वो यथास्माभि -

११ स्वं पूर्व्वराष्ट्रीयकुन्तुरपद्रकग्रामो मातापित्रो रात्मन –
१२ श्च पुन्या (ण्या) भिवि (वृ) द्धये बह्वृचकाण्याङ्गिरसगोत्रदीक्षितदु –
१३ र्गास्वामिसूनवे दीक्षिताग्निचन्द्रस्वामिने दत्त इत्यु –

द्वितीय पत्र; द्वितीय बाजू

१४ पलम्य भवद्भिरप्यनुमन्तव्य : पालयितव्यश्चेति [। ❀]
१५ बहुभिर्व्वसुधा दत्ता राजभि सगरादिभि यस्य
१६ यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा फलं (लम्) [१ ❀] मा भू –
१७ दफलस (श) ङ्का व : परदत्तेति पार्त्थिवा : स्वदाना –
१८ त्परदानस्य तस्माच्छ्रेयोनुपालनं (नम्) [२ ❀]

तृतीय पत्र

१९ षष्टिवर्षसहस्राणि स्वर्गे मोदति भूमि –
२० द : आच्छेत्ता चानुमन्ता चा (च) तान्येव नरके बसेत् । [३ ❀]
२१ स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेत वसुन्धर (रां) स्ववि -
२२ ष्ठायाङ्कृमिभू (र्भू) त्वा पितृभिस्स [ह] मज्यत इति प्रवद्ध (र्द्धं) -
२३ मानविजयराज्यसंवत् ४ पौष दि २०   ७ ज्येष्ठ सि -
२४ ह्ने (सिंहे) न ताम्रालित ।

मुद्रा

श्रीव्याघ्रराजस्य

अनुवाद

स्वस्ति ! उपवन और वन श्रेणियों की शोभा से देवताओं के नगर की कीर्ति को जीत लेने वाले और सुन्दर स्त्रियों के नितम्बबिम्ब के अभिघात से (जिसके) जल में हलचल होती है (उस) निडिला (नाम की) नदी के द्वारा पवित्र किये जाने वाले प्रसन्नपुर से -

अमरार्यकुल रूपी आकाश के चन्द्रमा, समस्त कलाओं की प्रवृत्तियों के घर, (अज्ञान) अंधकार को जीतने वाले, लोगों की आंखों को भले लगने वाले, श्री जयभट्टारक के बेटे श्री प्रवरभट्टारक के — पृथु के समान बलिष्ठ भुजयुगल के बल से जीती गई पृथ्वी के मण्डल को सुशोभित करने के यश वाले मनु के समान मनुजपति के — लहुरे भाई श्री व्याघ्रराजदेव

वर्तमान और भविष्य में होने वाले ब्राह्मणों को भलीभांति पूज कर राजा के सुमान्य पदाधिकारियों को समाज्ञापित करते हैं —

आप लोगों को विदित हो कि हमने पूर्वराष्ट्र में (स्थित) यह कुन्तुरपद्रक (नाम का) गांव माता पिता और अपने पुण्य की अभिवृद्धि के लिये ऋग्वेदी आंगिरस गोत्रीय दीक्षित दुर्गस्वामी के बेटे दीक्षित अग्निचन्द्र स्वामी को दिया है। यह जान कर आप लोग भी इसे अनुमोदित करें और पालन करें ऐसा।

सगर इत्यादि बहुत से राजाओं द्वारा वसुधा का दान किया गया था (किन्तु) भूमि जब जिसकी होती है तब फल उसी को मिलता है।१। हे राजाओ, आपको यह शंका न हो कि दूसरे की दी हुई (भूमि) होने से फल नहीं मिलेगा (क्योंकि) अपने दान की अपेक्षा दूसरे के दान का अनुपालन उससे भी श्रेय है।२। भूमि देने वाला साठ हजार वर्ष तक स्वर्ग में आनंद करता है (किन्तु) हरण करने वाला और उसका अनुमोदन करने वाला उतने ही (समय तक) नरक में बसते हैं।३। अपनी दी हुई या दूसरे की दी हुई भूमि को जो हरता है (वह) विष्ठा में कीड़ा बनकर पितरों सहित सड़ता है, इसप्रकार —

प्रवर्धमान विजय राज्य संवत् ४ पौष दिन २७। ज्येष्ठसिंह ने ताम्रपत्रों पर लिखा।

मुद्रा
श्री व्याघ्रराजदेव की

५. महानन्नराज का अड्भार में प्राप्त ताम्रपत्रलेख

मूलपाठ

पंक्ति प्रथम पत्र

१ स्वस्ति [। ॐ] श्रि (श्री) पुराव्नेकजन्मान्तराराधितभगवन्नाराय-
२ ण्भट्टारकपादप्रसादासादितनयविनयसत्यत्याग-
३ शौर्य्य [।] त्रिगुणसम्पत्त (स्त) म्यादितप्रथमपृथ्वीपतिप्र [भ] १ वप-
४ रिभाविसम्भावनस्य भावनाभ्यासप्रकाशीभूतनिर्म्म-
५ लज्ञेयशालिनः शशिवद्वंश (वंश) संभूतः स्वभुजपराक्रमो-
६ पार्जितसकलकोसलोत्कलादिमण्डलाधिपत्यप्राप्तमाहा-
७ त्म्यस्य श्रि (श्री) महाशि [व] तीवरराजस्य प्रद्युम्न इव कंटभारेरात्म-
८ ज [स्त] च्चरितानुकरणपरायणः प्राप्तसकल [को] सलाम-

द्वितीय पत्र, प्रथम बाजू

९ ण्डलाधिपत्य: परमवैष्णवो मातापितृपादानुध्यातः श्रि (श्री) म-

१० हानन्नराज [: ❀] कुशलि (ली) ।। श्रष्टद्वारविषये कोन्तिणीकग्रामे ब्रा-

११ ह्मणां (णान्) सम्पूज्य प्रतिवासिनः समाज्ञापयति विदितमस्तु-

१२ वो यथास्माभिरयं ग्राम [ो ❀] यावद्रविशशितारकिरणप्र-

१३ तिहतघोरान्धकारं जगदवतिष्ठते तावद् [प] भोग्यः स-

१४ निधि [: ❀] सोपनिधिरः (र) चाटभटः (ट) प्रावेश्य [: ❀] सर्व्वकरादान-
समेत [: ❀]

१५ सर्व्वपि (पी) डावर्जितो मातापित्त्रोरात्मनश्च पुन्या (ण्या) भिवृ (वृ) द्धयेः (ये) कौ-

१६ ण्डिन्यसगोत्राय वाजसनेयमाघ्य (ध्यं) दिनभागवतब्राह्मण-

द्वितीय पत्र; द्वितीय बाजू

१७ नारायणोपाध्यायाय मातापित्तोरात्मनश्च पुण्याभिवृ (वृ) द्धये

१८ भाद्रपदकृष्णद्वादश्या (श्यां) संक्रान्तौ उदकपुर्व्व (र्व्वं) शासनेन प्र-

१९ तिपादित इत्यवगम्य विधेयैर्भूत्वा समुचितं भोगभाग-

२० मुपनयद्भि [: ❀] सुखं प्रतिवस्तव्य (व्य) मिति ।। भाविनश्च भूमि-

२१ पालानुवि (द्दि) श्येदमभिधि (धी) यते [। ❀] भूमिप्रदा दिवि ललं (ल)-

२२ न्ति पतं (त) न्ति हन्त हृत्वा महिं (हीं) नृपतयो नरके नृशन्सा (शंसाः) ।। (।)

२३ एतद्ध (द्व) य (यं) परिकलय्य चलाञ्च लक्ष्मीमायु (यु) स्तथा कुरुथ-

तृतीय पत्र

२४ यद्भवतामभि (भी) ष्टं (ष्ट) म् । [। १ ❀] अपि च [। ❀] दानात्पालनयो-
स्तावत्फल (लं)

२५ सुग [ि] तदुर्गती [। ❀] को नाम स्वर्गमुत्सृज्य नरकं प्रतिप-

२६ द्यते ।। [२ ❀] व्या (व्या) सगि (गी) ता (तां) श्चात्र श्लोकानुदाहरन्ति ।।
अग्नेरपत्यं-

२७ प्रथमं सुवर्णं भूर्व्वैष्णवी सूर्य्यसुताश्च गावः [। ❀]

अनुवाद

ओम् । स्वस्ति । श्रीपुर से । अनेक जन्मान्तरों में भगवान नारायण के चरणों की आराधना करने के प्रसाद से प्राप्त नय विनय, सत्य, त्याग, शौर्य इत्यादि गुणों से पृथ्वी के प्रथम राजा के प्रभाव को प्राप्त कर लेने वाले, भावना के अभ्यास से निर्मल ज्ञान रूपी चन्द्रमा के प्रकाश वाले, चंद्र वंश में उत्पन्न, (और) अपनी भुजाओं के पराक्रम से सकल कोसल, उत्कल आदि मण्डलों के आधिपत्य से प्राप्त होने वाले माहात्म्य को उपार्जित कर लेने वाले श्री महा-शिव तीवरराज के विष्णु के प्रद्युम्न के समान – उन्हीं के चरित्र का अनुकरण करने में परायण, सकल कोसल मंडल के आधिपत्य को प्राप्त करने वाले, माता पिता के चरणों का ध्यान करने वाले, परम वैष्णव पुत्र श्री महानन्नराज कुशल से हैं । अष्टद्वार विषय में कोन्तिणीक ग्राम के ब्राह्मणों को भलीभांति पूज कर (वहां के) निवासियों को समाज्ञापित करते हैं —

आप लोगों को विदित हो कि हमने यह ग्राम–जब तक सूर्य, चंद्र और तारागण की किरणें जगत् के अंधकार को दूर करती हैं तब तक उपभोग करने के लिये–निधियों और उपनिधियों सहित, चाटों और भटों का प्रवेश निषिद्ध कर, सभी कर और आदान समेत, सभी पीड़ा से वर्जित कर माता–पिता और अपने पुण्य की अभिवृद्धि के लिये कौण्डिन्य गोत्र और वाजसनेय माध्यंदिन शाखा के भागवत ब्राह्मण नारायण उपाध्याय को भाद्रपद (के) कृष्ण (पक्ष की) द्वादशी को संक्रान्ति में उदक पूर्वक शासन से दिया है। ऐसा समझकर विधेय होकर समुचित भोग भाग (इसे) भेंट करते हुये सुख के रहें – ऐसा ।

भूमिदान करने वाले स्वर्ग में आनंद करते हैं और भूमि का हरण करके नृपति नृशंस नरक में पड़ते हैं, इन दोनों बातों का विचार कर और लक्ष्मी तथा आयु को चंचल जान कर आप वही करें जो आपको अभीष्ट हो ।१। और भी । दान और उसका पालन न करने से (क्रमशः) सुगति और दुर्गति होती है, कौन भला स्वर्ग छोड़कर नरक जाना चाहेगा ।२। व्यास के कहे श्लोकों को भी यहां कहते हैं । अग्नि का पहला बेटा सोना है, पृथ्वी विष्णु की पत्नी है और गायें सूर्य की बेटियां हैं । (यह श्लोक अधूरा ही रह गया है ।)

६. गोंड़ राजा दलपतशाह का गढ़ा में प्राप्त ताम्रपत्रलेख

(चित्रफलक सत्तावन (ख))

मूलपाठ

पंक्ति

१ ।। राम ।।

२ श्री बाबा कपुर साहिब

३ सही —
४ ॥ सं १४८७ के बये (वर्षे) नाम कातिक वदि ५ कः (?) ब
५ ॥ दाहे ॥ श्री महाराजाये राजा ॥ श्रीमहारा-
६ ॥ जा श्री राजा दलपतसादेव पटो प्रबंत सास्य
७ ॥ संसी जो ॥ ॥ केनत्तर करो गढ़ा के परगने
८ ॥ के गाऊ कूडा १ कचनारी १ जगात पै रोजा ८
९ ॥ परगनं ८। अधेला घर पाछे सो हमेसा
१० ॥ हमेस पाऐ जा [ए] ऐमं आन तरा नं होहे। श्री गढ़ा
११ ॥ को कोउ राजा होऐ [आ] गावजा [ब] लेऐ तौ बन-
१२ ॥ संकर होऐ और सागव जा कीऊ पैसा कोठी
१३ ॥ लेऐ तो सोवनं माऐ होऐ गाउ मारे को पाप औ-
१४ ॥ र ऐनके बेटा चेला नाती सें लक सो रपतावन
१५ ॥ आवं तो सीरकार सें माफ ताके विदवान सरका-
१६ ॥ र के पांच लीवो अचारसीध गढ़ा बैठ पटो सही

७. कलचुरि राजा अमरसिंह का आरंग में प्राप्त ताम्रपत्रलेख

(चित्रफलक अट्ठावन)

मूलपाठ

पंक्ति प्रथम बाजू

१ ॥ श्री राम १
२ सही
३ स्वस्ति श्रीमहाराजाधिराज-
४ श्री महाराजा श्री राजा अमर-
५ सिंघदेव एतौ ठाकुर नंदू तथा
६ पांसीराइ कहं कबून पाटे लिषा-
७ इ दीन्हे अस जो छांटा बूंदा ग-
८ यारि मई मुअरि ई सब एको ना

९ वेइ ॥ एक विद्यमान देवान कोका–
१० प्रसाद राइ तथा देवान मल्ल-
११ साहि लिये बाबू कासीराम कबूल
१२ पाट सही रायपुर बैठे लिये
१३ कार्तिक सुदि ७ कह सं १७९२
१४ डोंगर पटइल तथा मथुराई प-
१५ टईल तथा तखत सराफ लिः (लि)-
१६ बाइ ले गए अब्ब नंदू धमतरी
१७ उठि गए रहे तब एही कबू-
१८ ल मह आए

द्वितीय बापू

१९ इ कबूल के विद्यमान महंत श्रीः
२० मानदास तथा श्रीमहाराजकुमा-
२१ र ठाकुर श्री उदेसिंघ तथा श्री म-
२२ हाराजकुमार लाला श्री कृपा-
२३ लसिंघ तथा नायक प्रताप
२४ और साखी बाबू गुमानसिंघ
२५ तथा ठाकुर कोदूराइ तथा परिहा-
२६ र प्यारेलाल
२७ दुबे परमाइज लेवाइ आने
२८ सही देवान कोका-
२९ प्रसाद राइ के
३० सही देवान मल्लसाहि
३१ के

परिशिष्ट चार

वंशावलि

१ नल वंश

२ राजर्षितुल्य कुल

३ शरभपुरीय या अमरार्यकुल

१ शरभ
|
२ नरेन्द्र
....
३ प्रसन्नमात्र
४ जयराज–मानमात्र–दुर्गराज
|
५ सुदेवराज, ६ प्रवरराज, ७ व्याघ्रराज

४ पाण्डुवंश

१ उदयन
|
२ इन्द्रबल
|
३ नन्न, ईशानदेव, ..., भवदेव रणकेसरी

३ नन्न
|
४ तीवरदेव, ६ चन्द्रगुप्त

४ तीवरदेव
|
५ नन्न

६ चन्द्रगुप्त
|
७ हर्षगुप्त = वासटा रानी
|
८ महाशिवगुप्त बालार्जुन

५ मेकल का पाण्डुवंश

जयबल
|
वत्सराज
|
नागबल
|
भरतबल (इन्द्रबल) = लोकप्रकाशा रानी

८ सोम वंश
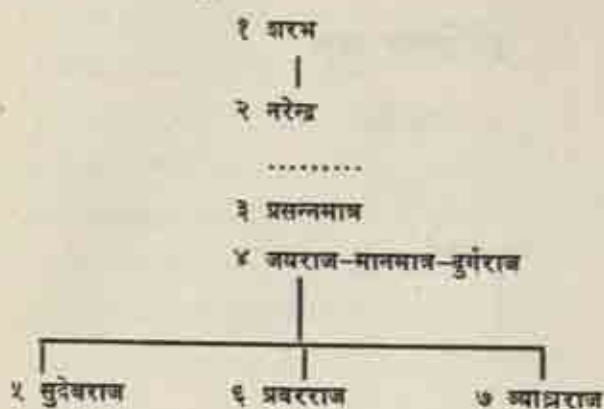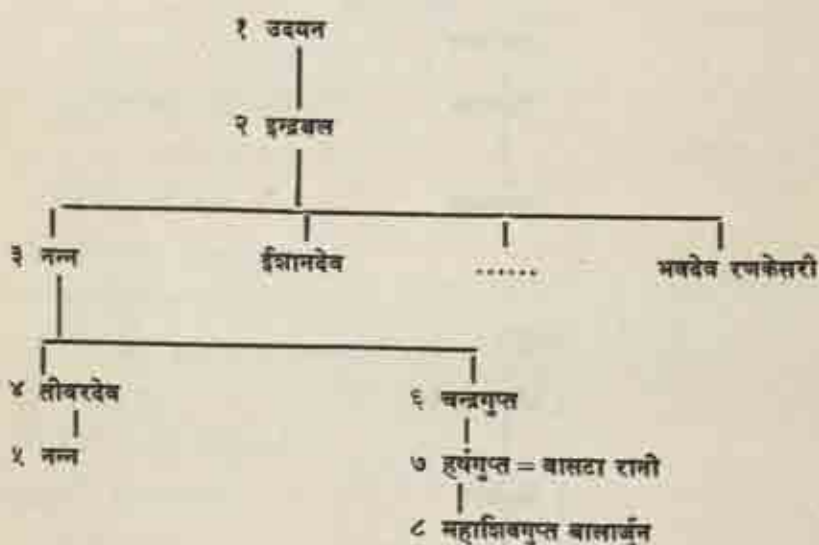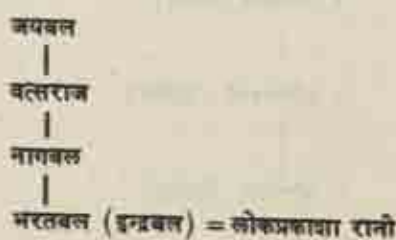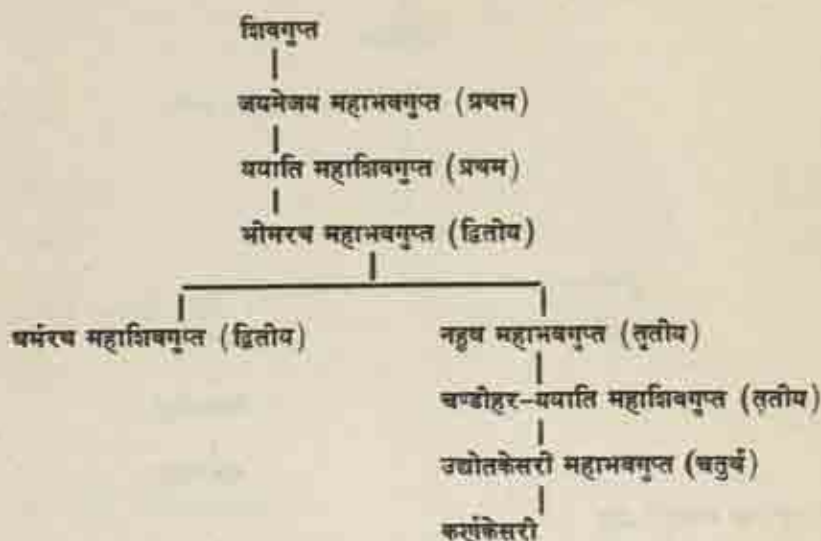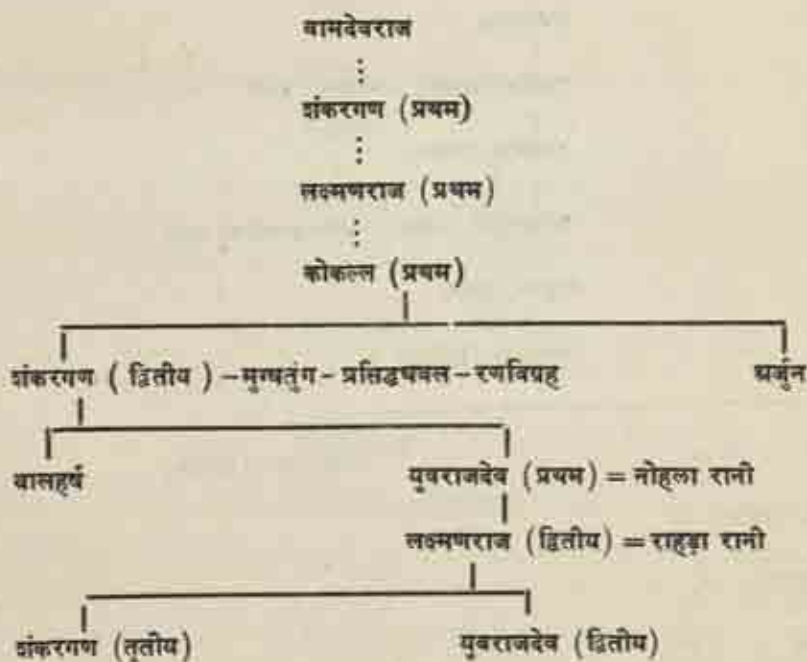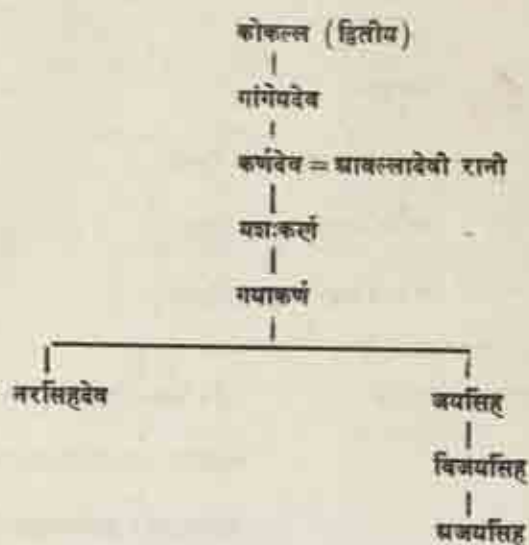
९ त्रिपुरी का कलचुरि वंश

८ रत्नपुर का कलचुरि वंश
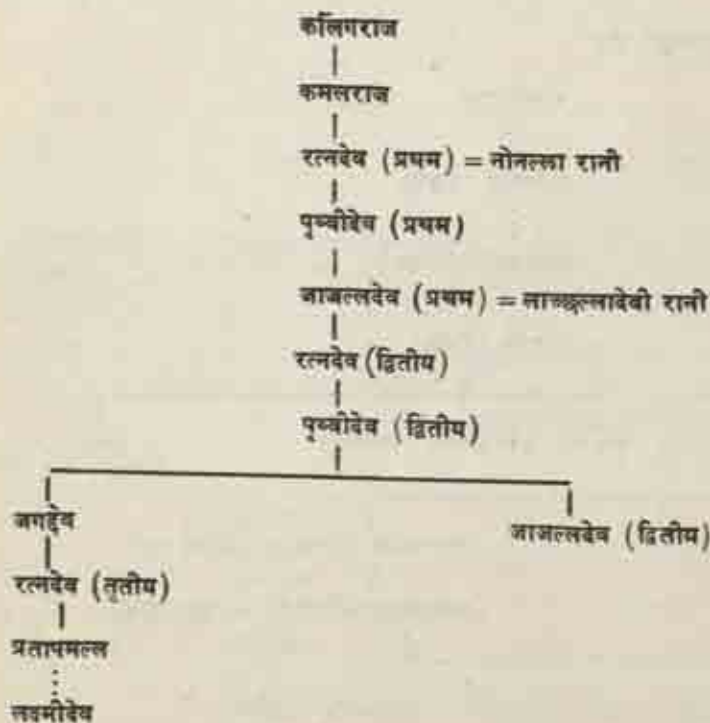
९ रायपुर का कलचुरि वंश

१० बस्तर का छिंदक नागवंश

नृपतिभूषण

⋮

धारावर्ष जगदेकभूषण

⋮

मधुरान्तक

⋮

सोमेश्वर (प्रथम)

|

कन्हर
⋮
राजभूषण सोमेश्वर (द्वितीय)
⋮
जगदेकभूषण नरसिंह
⋮
जयसिंह
⋮
हरिश्चन्द्र

११ कवर्धा का नागवंश

अहिराज
|
राजल्ल
|
धरणीधर
|
महिमदेव
|
शक्तिचन्द्र
|
गोपालदेव
|
नलदेव
|
भुवनपाल
|
कीर्तिपाल
|
जयत्रपाल
|
महीपाल
|
विषमपाल
|
जह्नु.
|
जनपाल
|
यशोराज
|

कन्नडदेव या वल्लभदेव
लक्ष्मीवर्मा
खड्गदेव
भुवनैकमल्ल
अर्जुन
भीम
भोज
लक्ष्मण
रामचन्द्र
अर्जुन

१२ कांकेर का सोमवंश

सिंहराज
व्याघ्रराज
वोपदेव
कृष्ण
जैतराज
सोमचन्द्र
भानुदेव
चन्द्रसेनदेव
सोमराजदेव
पम्पराज

देशना

किरारी में प्राप्त काष्ठस्तंभ-लेख

(क) (ख)

फलक दो

किरारी में प्राप्त काष्ठस्तंभ-लेख

प्रथम पंक्ति

द्वितीय पंक्ति

तृतीय पंक्ति

चतुर्थ पंक्ति

पंचम पंक्ति

फलक तीन

आरंग में प्राप्त ब्राह्मी शिलालेख

फलक चार

नरेन्द्र का कुरुद में प्राप्त ताम्रपत्र-लेख : राज्यवर्ष २४

मुद्रा

नरेन्द्र का कुरुव में प्राप्त ताम्रपत्रलेख : राज्यवर्ष २४

एक

दो (१)

फलक छह

नरेन्द्र का कुरुद में प्राप्त ताम्रपत्रलेख : राज्यवर्ष २४

दो (२)

१२

१४

तीन

१६

१८

२०

जयराज का आरंग में प्राप्त ताम्रपत्र-लेख : राज्यवर्ष ५

मुद्रा

एक

२

४

फलक आठ

जयराज का आरंभ में प्राप्त ताम्रपत्र-लेख : राज्यवर्ष ५

बी (१)

६

८

१०

बी (२)

१२

१४

जयराज का आरंग में प्राप्त ताम्रपत्रलेख : राज्यवर्ष ५

तीन (१)

१६

१८

२०

तीन (२)

२२

२४

सुदेवराज का खरियार में प्राप्त ताम्रपत्र-लेख : राज्यवर्ष २

मुद्रा

एक

२

४

सुदेवराज का खरियार में प्राप्त ताम्रपत्रलेख : राज्यवर्ष २

दो (१)

६

८

१०

दो (२)

१२

१४

फलक बारह

सुदेवराज का खरियार में प्राप्त ताम्रपत्र–लेख : राज्यवर्ष २

तीन (१)

१६

१८

२०

तीन (२)

२२

सुदेवराज का आरंग में प्राप्त ताम्रपत्र-लेख : राज्यवर्ष ८

एक

२

४

दो (१)

६

८

१०

फलक चौदह

सुदेवराज का आरंग में प्राप्त ताम्रपत्रलेख : राज्यवर्ष ८

दो (२)

१२

१४

१६

तीन (१)

१८

२०

२२

सुदेवराज का आरंग में प्राप्त ताम्रपत्र लेख : राज्यवर्ष ८

तीन (२)
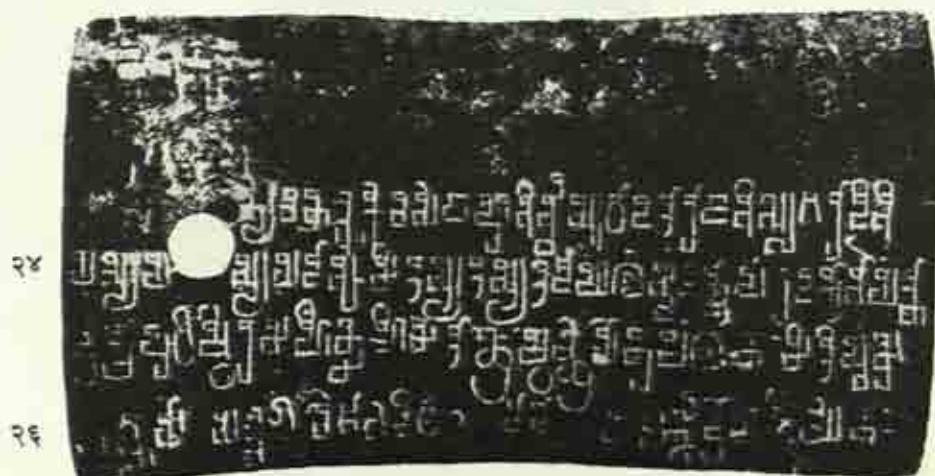
मुद्रा

फलक सोलह

प्रवरराज का मल्लार में प्राप्त ताम्रपत्रलेख : राजवर्ष ३

मुद्रा

एक

२

४

६

प्रवरराज का मल्लार में प्राप्त ताम्रपत्रलेख : राज्यवर्ष ३

दो (१)

८

१०

१२

दो (२)

१४

१६

फलक अठारह

प्रवरराज का मल्लार में प्राप्त ताम्रपत्र लेख : राज्यवर्ष ३

तीन (१)

तीन (२)

भवदेव रणकेसरी का भांदक में प्राप्त शिलालेख

२ ४ ६ ८ १० १२ १४ १६ १८ २०

फलक बीस

महाशिवगुप्त बालार्जुन का सिरपुर लक्ष्मण मंदिर से प्राप्त शिलालेख

फलक इक्कीस

महाशिवगुप्त बालार्जुन का मल्लार में प्राप्त ताम्रपत्रलेख

एक

२

४

६

दो (२)

८

१०

१२

१४

फलक बाईस

महाशिवगुप्त बालार्जुन का मल्लार में प्राप्त ताम्रपत्रलेख

दो (२)

१६

१८

२०

तीन

२२

२४

२६

२८

(क) महाशिवगुप्त बालार्जुन का मल्लार में प्राप्त ताम्रपत्रलेख

मुद्रा

(ख) महाभवगुजनसतय का मे जल्लमा ताम्रपत्रलेख : राज्यवर्ष ८

मुद्रा

फलक चौबीस

महाभवगुप्त जनमेजय का सतल्लमा ताम्रपत्रलेख : राज्यवर्ष ८

एक

दो (२)

महाभवगुप्त जनमेजय का सतल्लमा ताम्रपत्रलेख : राज्यवर्ष ८

दो (२)

तीन

महाभवगुप्त के समय का कुडोपाली ताम्रपत्रलेख

मुद्रा

एक

महाभवगुप्त के समय का कुडोपाली ताम्रपत्रलेख

बो (१)
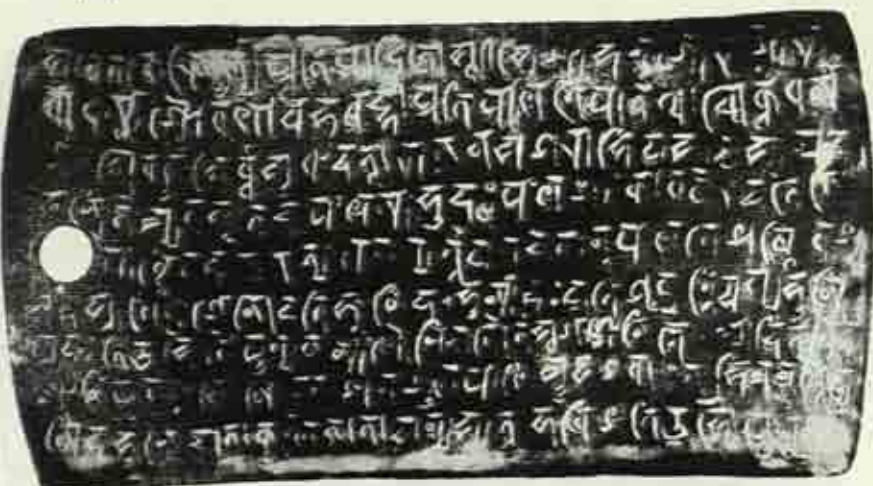
बो (२)

फलक अट्ठाईस

महाभवगुप्त के समय का कुडोपाली ताम्रपत्रलेख

तीन (१)

२८
३०
३२
३४

तीन (२)

३६

फलक उन्तीस

सोमेश्वर का कारीतलाई में प्राप्त शिलालेख

फलक तीस

प्रथम पृथ्वीदेव का अमोदा में प्राप्त ताम्रपत्रलेख : (कलचुरि) संवत् ८३१

एक

२
४
६
८
१०
१२
१४
१६
१८
२०

दो

२२
२४
२६
२८
३०
३२
३४
३६
३८
४०

प्रथम जाजल्लदेव का रतनपुर में प्राप्त शिलालेख : (कलचुरि) संवत् ८६६

फलक बत्तीस

द्वितीय पृथ्वीदेव का कोटगढ़ में प्राप्त शिलालेख

२
४
६
८
१०
१२
१४
१६
१८
२०
२२
२४
२६

द्वितीय पृथ्वीदेव का डंकोनी में प्राप्त ताम्रपत्रलेख (कलचुरि) संवत् ८९०

एक

२
४
६
८
१०
१२

दो

१४
१६
१८
२०
२२
२४
२६

(क) द्वितीय पृथ्वीदेव का डंकोनी में प्राप्त ताम्रपत्रलेख : (कलचुरि) संवत् ८६०

मुद्रा

(ख) द्वितीय पृथ्वीदेव का बिलंगढ़ में प्राप्त ताम्रपत्रलेख : (कलचुरि) संवत् ८९६

मुद्रा

द्वितीय पृथ्वीदेव का बिलेगड़ में प्राप्त ताम्रपत्रलेख : (कलचुरि) संवत् ८९६

एक

२
४
६
८
१०
१२
१४
१६
१८

दो

२०
२२
२४
२६
२८
३०
३२
३४
३६

फलक छत्तीस

द्वितीय पृथ्वीदेव का घोटिया में प्राप्त ताम्रपत्रलेख: (कलचुरी) वर्ष १००० (?) (१९०)

एक

२
४
६
८
१०
१२
१४
१६
१८

दो

२०
२२
२४
२६
२८
३०
३२
३४
३६

(क) द्वितीय पृथ्वीदेव का घोटिया में प्राप्त ताम्रपत्रलेख: (कलचुरि) संवत् १००० (?)(९००)

मुद्रा

(ख) द्वितीय पृथ्वीदेव का आमोदा में प्राप्त ताम्रपत्रलेख: (कलचुरि) संवत् ९०५
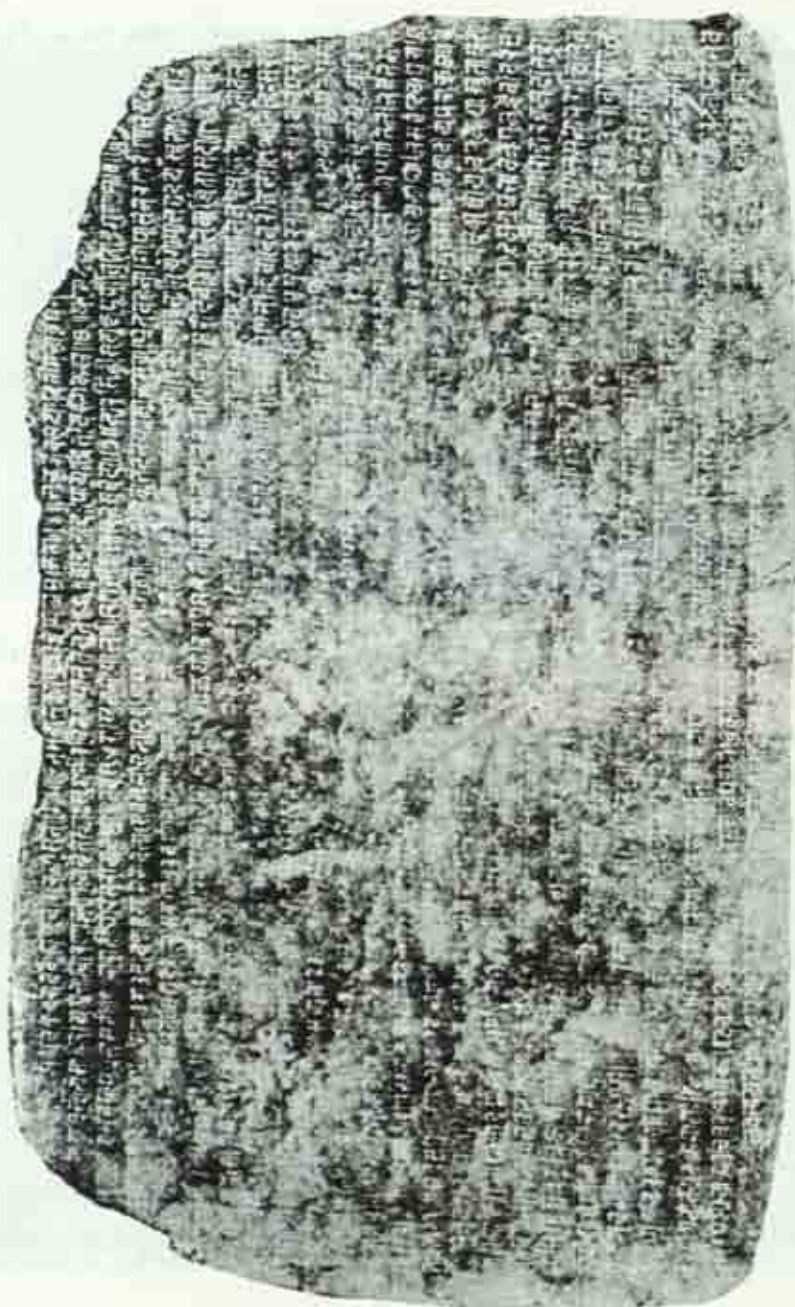
मुद्रा

फलक अड़तीस

गोपालदेव का पुजारीपाली में प्राप्त शिलालेख

द्वितीय पृथ्वीदेव का रतनपुर में प्राप्त शिलालेख : (विक्रम) संवत् १२०७

फलक चालीस

द्वितीय पृथ्वीदेव का अमोदा में प्राप्त ताम्रपत्रलेख : (कलचुरि) संवत् ९०५

एक

दो

द्वितीय जाजल्लदेव का मल्लार में प्राप्त शिलालेख : (कलचुरि) संवत् ९१९

फलक बयालीस

द्वितीय जाजल्लदेव का अमोदा में प्राप्त ताम्रपत्रलेख : (कलचुरि) संवत् [९१९]

एक

२ ४ ६ ८ १० १२ १४ १६ १८

दो

२० २२ २४ २६ २८ ३० ३२ ३४ ३६

प्रतापमल्ल का बिलंगढ़ में प्राप्त ताम्रपत्रलेख : (कलचुरि) संवत् ९६९

एक

२
४
६
८
१०
१२
१४
१६

दो

१८
२०
२२
२४
२६
२८
३०
३२
३४
३६
३८

वाहर का कोसगई में प्राप्त शिलालेख, क्रमांक १
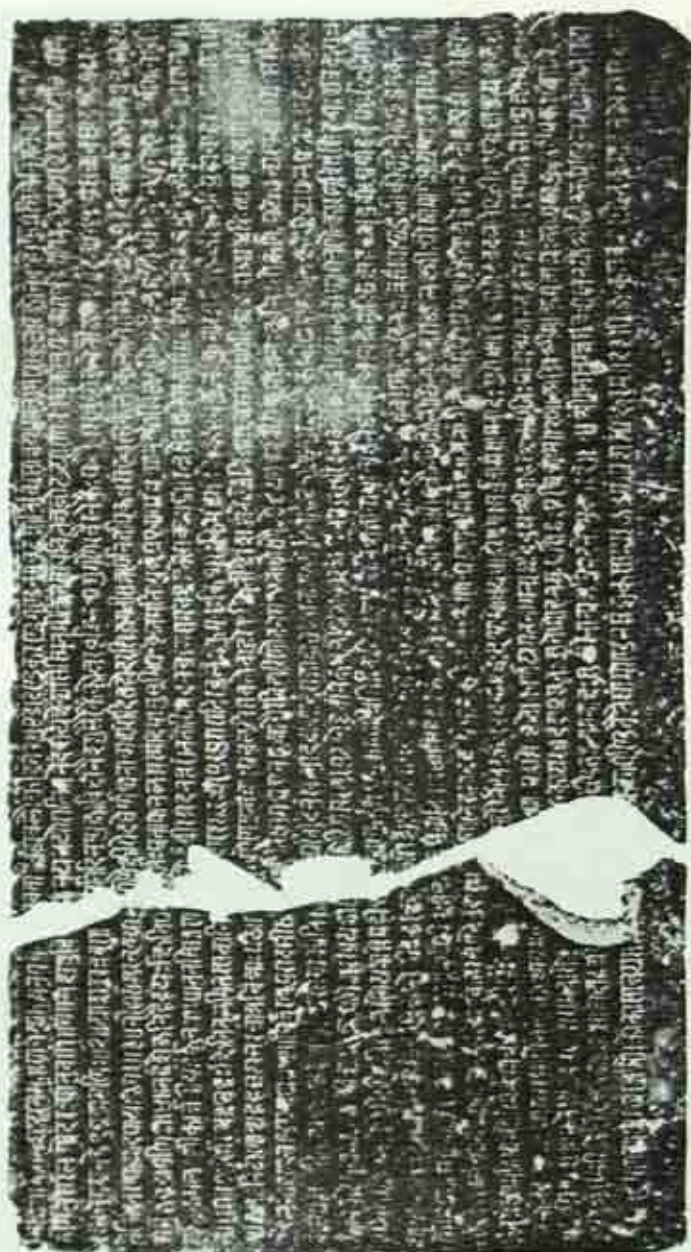
बाहर का कोसगईं में प्राप्त शिलालेख : (विक्रम) संवत् १५७०

फलक छयालीस

ब्रह्मदेव का रायपुर में प्राप्त शिलालेख: (विक्रम) संवत् १४५८

हरि ब्रह्मदेव का खलारी में प्राप्त शिलालेख : (विक्रम) संवत् १४७०

भानुदेव का काँकेर से प्राप्त शिलालेख : (शक) संवत् १२४२

सिरपुर गंधेश्वर मंदिर से प्राप्त शिलालेख

फलक पचास

सिरपुर सुरंग टीले से प्राप्त शिलालेख

फलक इक्यावन

(क) सिरपुर से प्राप्त बुद्धघोष का शिलालेख

(ख) तरेंगा से प्राप्त शिलालेख

फलक बावन

दुर्ग से प्राप्त शिवदेव का शिलालेख

अशोक मौर्य का रूपनाथ शिलालेख
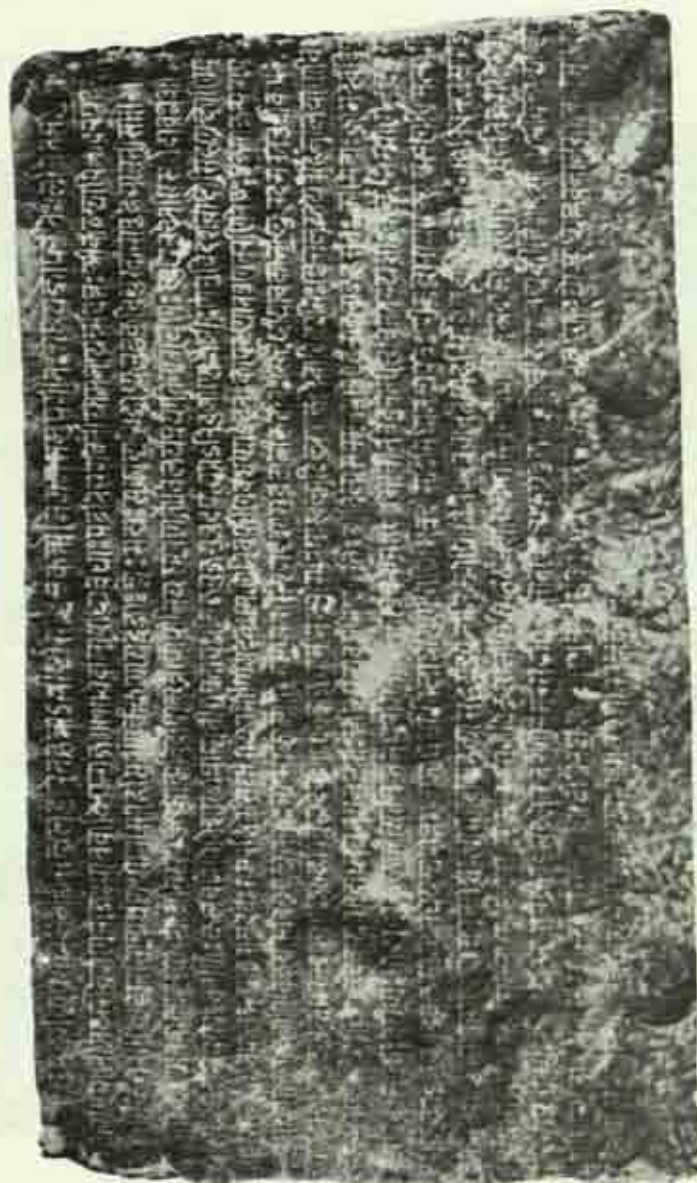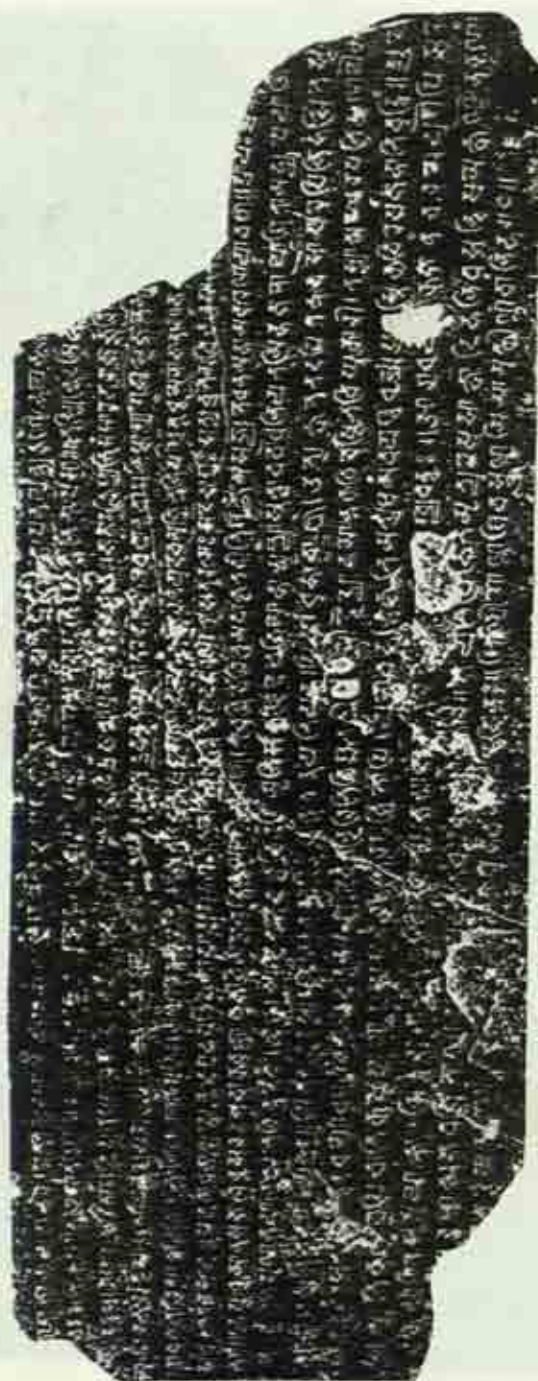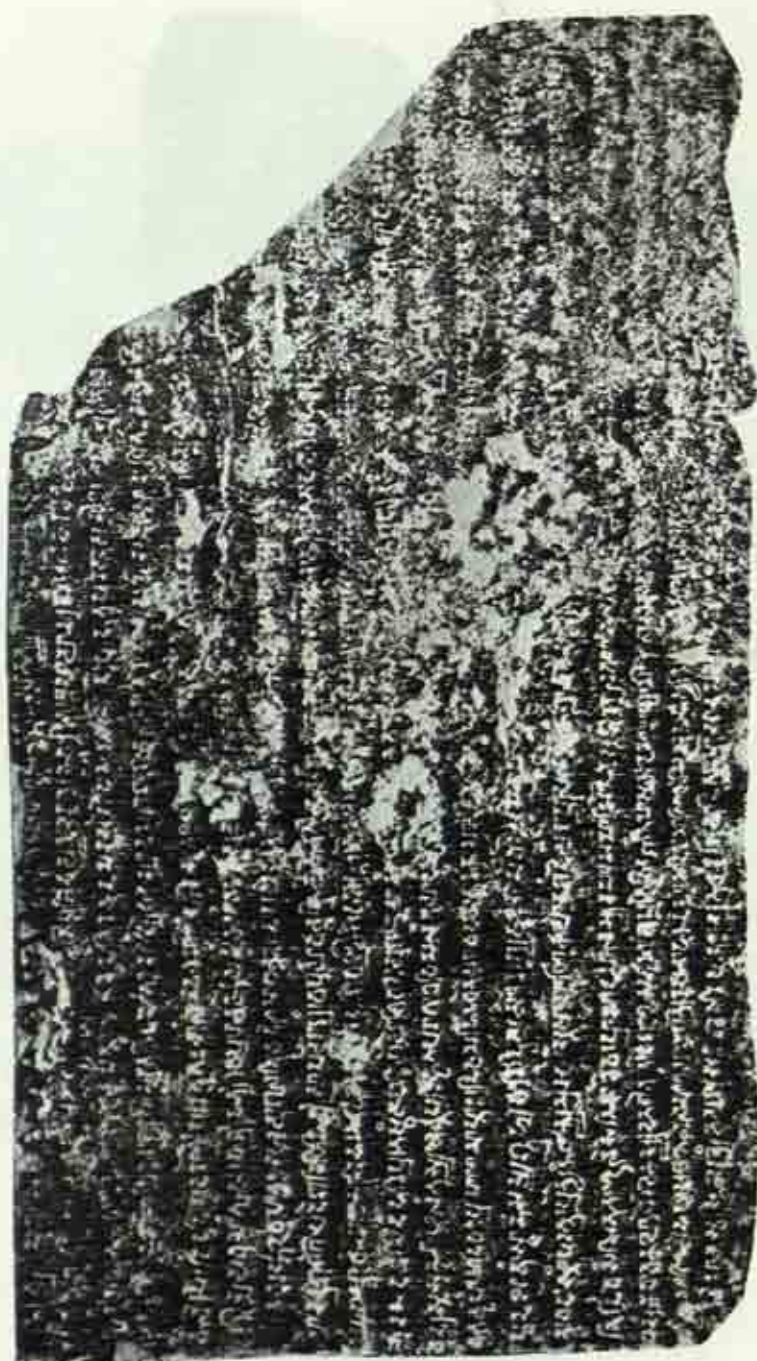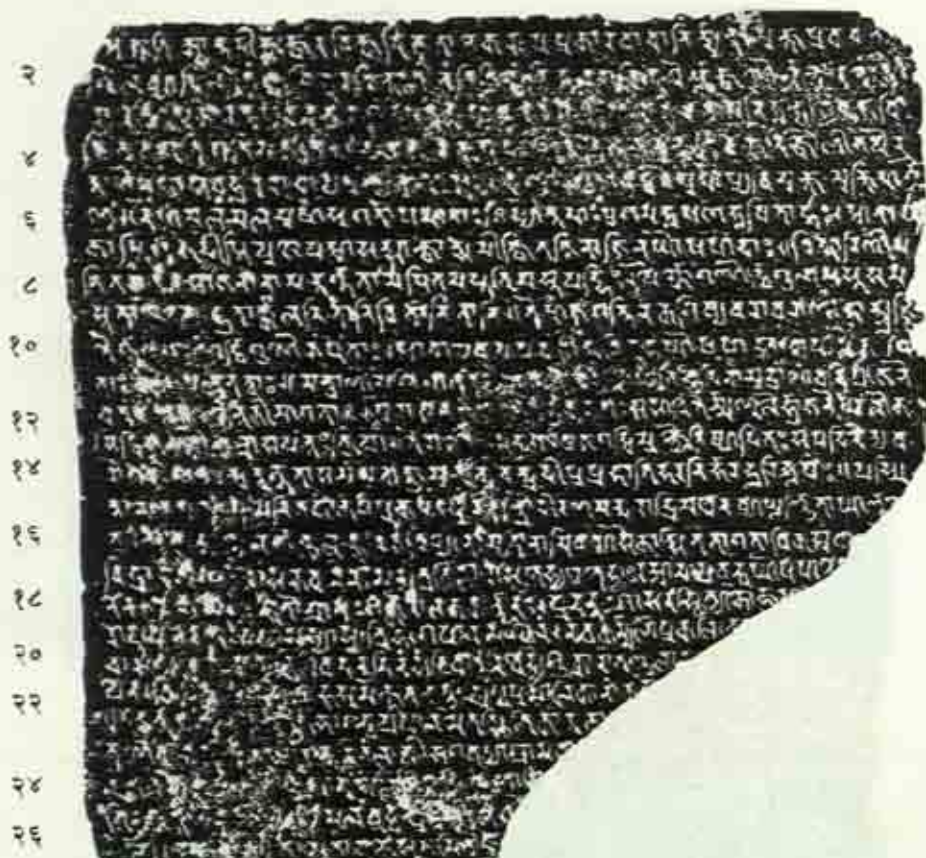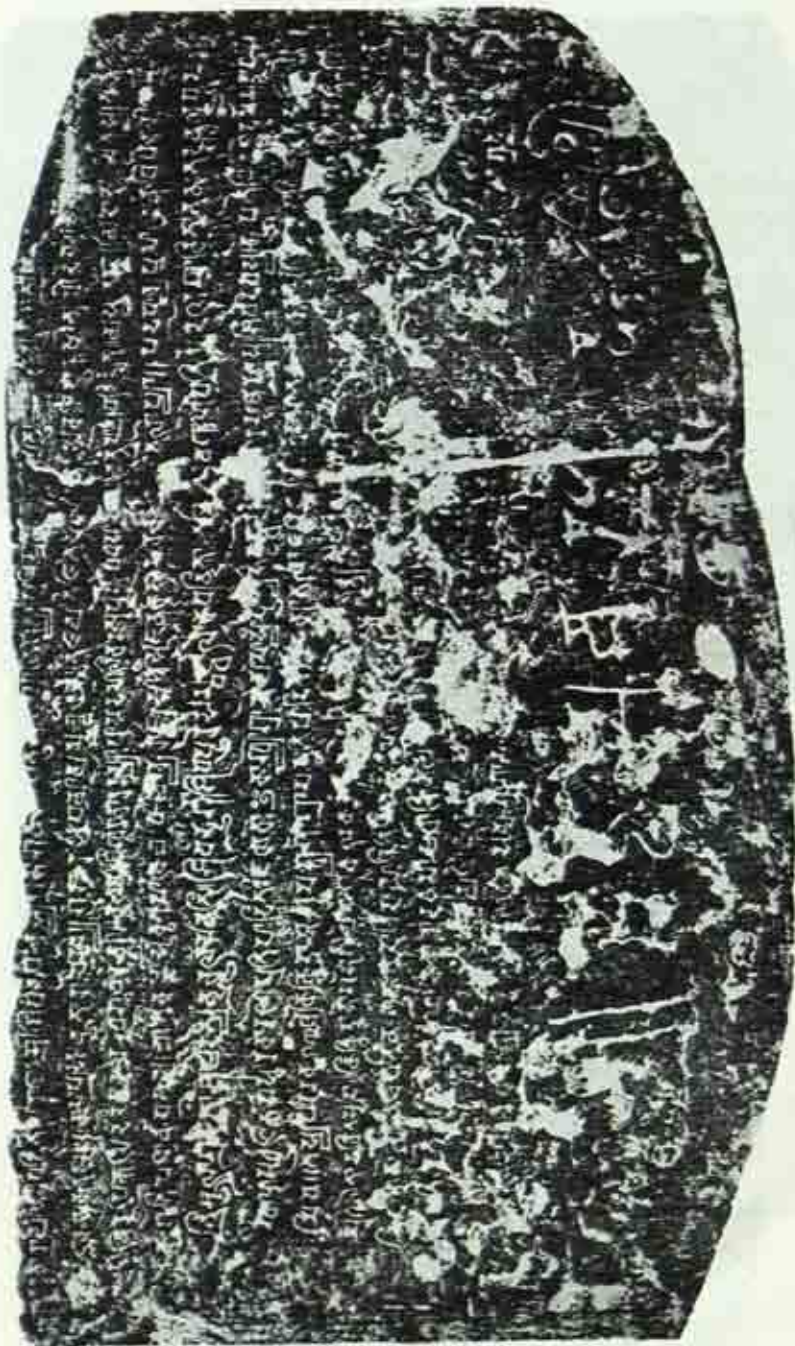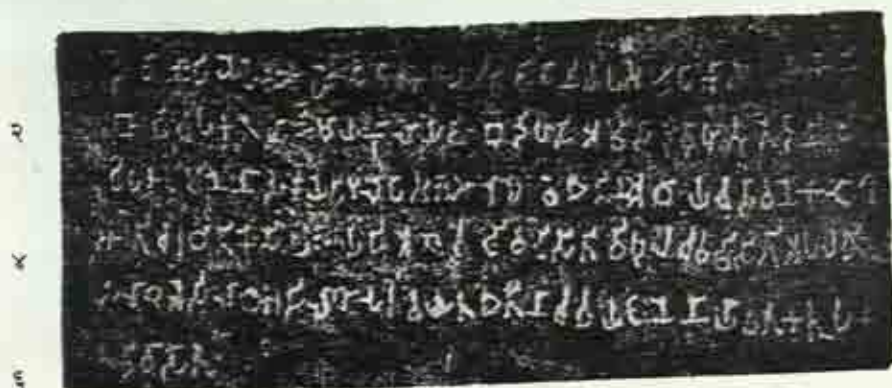
बायें तरफ का भाग

दायें तरफ का भाग
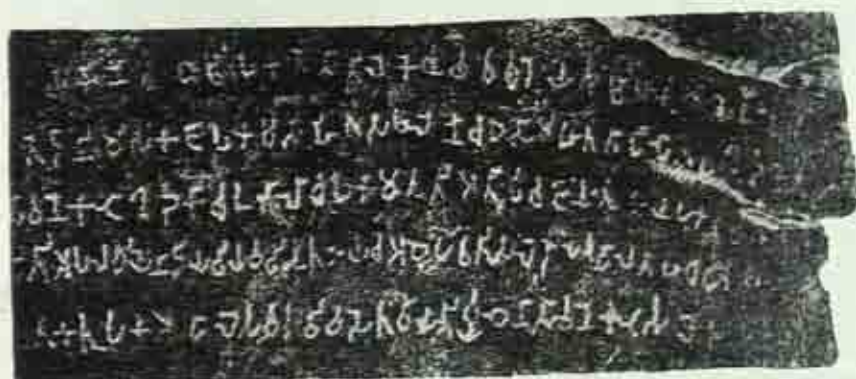
फलक चौवन

(क) सुतनुका का जोगीमड़ा शिलालेख

(ख) कुमारवरदत्त का गुंजी शिलालेख

बायां भाग

दायां भाग

व्याघ्रराज का मल्लार में प्राप्त ताम्रपत्रलेख

एक

दो (१)

फलक छप्पन

व्याघ्रराज का मल्लार में प्राप्त ताम्रपत्रलेख

दो (२)

१४

१६

१८

तीन

२०

२२

२४
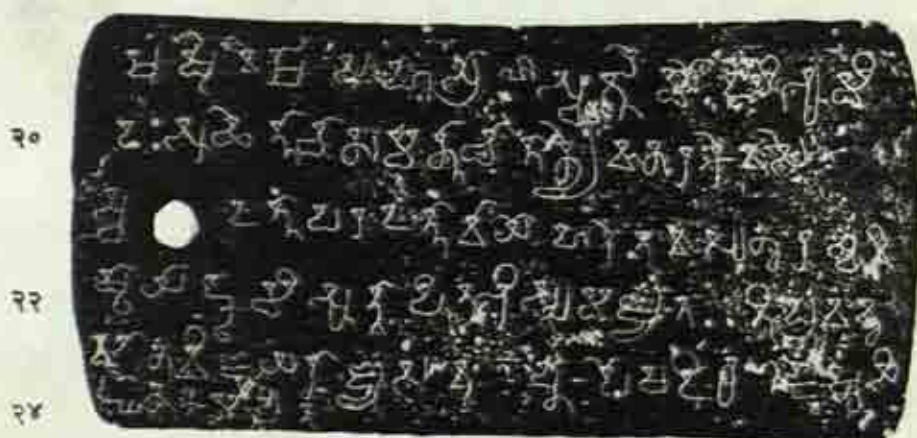
(क) व्याघ्रराज का मल्लार में प्राप्त ताम्रपत्रलेख

मुद्रा

(ख) दलपतशाह का गढ़ा ताम्रपत्रलेख

अमरसिंहदेव का आरंग ताम्रपत्र लेख

प्रथम बाजू

द्वितीय बाजू